फ़रवरी १९४८

मूल्य : सवा दो रुपया

मुद्रक : ज. रा भारती, उदयन प्रेस कान्दीवली, बम्बई

प्रकाशक : एम. बी. राव, जन-प्रकाशन गृह, १९०बी, सैण्डहर्स्ट रोड बम्बई ४

क्रमणिका

भूमिका

मुझसे कई लोगोंने पूछा कि निरालापर पुस्तक लिखनेकी क्या जरूरत है। यहाँपर संक्षेपमें मैं इस प्रश्नका उत्तर देदूँ। यह सभी लोग जानते हैं कि उनका व्यक्तित्व एक उपन्यासके अच्छे-खासे हीरोका-सा है। उसमें काफ़ी वैचित्र्य और नाटकीयता है। इसलिए उनके जीवनपर एक बड़ी रोचक पुस्तक लिखी जा सकती है। लेकिन ऐसी पुस्तक लिखना मेरा उद्देश्य नहीं है और न शायद उसे लिखनेका अभी समय आया है। फिर भी उनके जीवनके एक संक्षिप्त अध्ययनसे हमारे सामाजिक संगठनकी असंगतियाँ, उसकी रूढ़ि प्रियता और उसका खोखलापन बहुत-कुछ समझमें आ जायगा। उनकी चिन्ताजनक परिस्थितिसे अधिकांश पाठक परिचित होंगे। इसका उत्तरदायित्व सबसे पहले हमारी समाज-व्यवस्थापर है। उनका जीवन प्रत्येक सहृदय व्यक्तिके लिए एक चुनौती है कि वह इस सड़ी-गली व्यवस्थाका अंत करके एक नये समाज का निर्माण करे।

यह भी सभी लोग जानते हैं कि छायावादके प्रवर्त्तकोंमें उनका अन्यतम स्थान है। प्रत्येक नये साहित्यिक आंदोलनकी तरह छायावाद का भी जोरोंसे विरोध हुआ। उसकी प्रतिध्वनि अब भी पत्र-पत्रिकाओंमें जब-तब सुनाई पड़ जाती है। विरोधियोंमें अधिकतर वह लोग रहे हैं जो पुराने साहित्यके समर्थक थे और एक पिटी हुई लीक छोड़ कर साहित्यमें नये प्रयोग करना प्राचीनताका अपमान समझते थे। इस विरोधमें निरालाको केन्द्र बनाया गया। उस साहित्यिक आन्दोलन और उस व्यक्तित्वमें अवश्य ही कुछ ऐसी क्षमता होगी जिससे कि इन पुरानपन्थियोंके दलमें खलबली मच गयी और वे नये साहित्यिक प्रयोगोंका

प्राणपनसे विरोध करने लगे। आज यह अत्यन्त आवश्यक है कि हम छायावादी कवियोंके इस पक्षकी ऐतिहासिक दृष्टिसे छान-बीन करें। इस तरहकी समीक्षाके विना हम अपनी परम्पराकी कड़ियाँ न जोड़ सकेंगे और न हमारे नये साहित्यका आन्दोलन सही प्रगति कर सकेगा। इसके साथ यह भी याद रखना चाहिये कि छायावादमें ऐसी असंगतियाँ भी थीं जिनसे उसका मार्ग अवरुद्ध हो गया। उसके कर्दम-मय जलमें कुछ साहित्यिक अब भी तैर कर पार लगनेका वृथा प्रयास कर रहे हैं। यह नहीं कहा जा सकता कि छायावादकी पतनोन्मुख प्रवृत्तियोंसे हिन्दीका नया साहित्य अपनी रक्षा कर पा रहा है। घुनकी तरह वे भीतर ही भीतर साहित्यके वट वृक्षको खाती जा रही हैं। वह वृक्ष इस रोगका निदान किये विना पृथ्वी और वायुसे पूर्ण जीवनी शक्ति नहीं पा सकता। इसलिए छायावादका प्रगतिशील पक्ष और इसके साथ उसकी पतनोन्मुख प्रवृत्तियाँ—इन दोनोंके ही संतुलन और मूल्यांकन की आवश्यकता है।

पिछले दस वर्षोंमें छायावादके अनेक प्रसिद्ध लेखक काल्पनिक साहित्यकी रचनासे मुँह मोड़कर समाजके यथार्थ जीवनकी ओर झुके और साहित्यमें एक नई प्रगतिशील धाराके अगुआ बने—यह बात भी हिन्दीके पाठकोंसे छिपी नहीं है। इन कवियोंमें निराला और पन्तका कार्य मुख्य है। 'सुधा' में 'देवी' और 'चतुरी चमार' लिख कर निरालाजीने अपने गद्यमें साहित्यकी नयी दिशाकी ओर संकेत किया था। कुछ दिन बाद पन्तजीने इलाहाबादसे 'रूपाभ' निकाला था और वह नये साहित्यका मुख-पत्र बन गया था। निराला जी इसमें बराबर लिखते थे और इनके सहयोगसे नये लेखकोंको अपना नया मार्ग पहचाननेमें सहायता मिली। तबसे वह क्रम टूटा नहीं है। गद्य और पद्य दोनोंमें ही वे निरन्तर प्रयोग करते रहे हैं। छायावादसे उत्तर-कालकी इन रचनाओंका मूल्यांकन करना और शेष नये साहित्यमें उसका स्थान निर्धारित करना आवश्यक

है। बहुतसे आलोचक उनके नये प्रयोगोंको वैसे ही हँसकर उड़ा देना चाहते हैं जैसे किसी समय उनके पूर्ववर्ती समालोचकोंने उनकी छायावादी रचनाओंको उड़ाना चाहा था। इसके विपरीत उनके कुछ प्रयोगोंको हम अपना नया साहित्यिक आदर्श मान बैठे, तो भी लाभके बदले हानि ही ज्यादा होगी।

ऊपरकी आवश्यकताओंका ध्यान रखते हुए मैंने यह पुस्तक लिखने की चेष्टा की है। जीवनीवाले भागमें मैंने उन अंशोंपर ज्यादा ज़ोर दिया है जिनका सम्बन्ध उनके साहित्यसे अधिक है। श्री सुमित्रानन्दन पन्तके साथ वे दो युगोंके प्रतिनिधि साहित्यकार हैं। विषम परिस्थितियोंमें उन्होंने साहित्यकी साधना की है। उनका संघर्षमय जीवन हम नये साहित्यिकोंके लिए एक चिरन्तन प्रेरणा है। सन् '३४ से अबतक उनके जीवन-प्रवाह और साहित्य सर्जनको मैं यथेष्ट मनोयोगसे देखता रहा हूँ। बारह वर्ष तक इतने निकट संपर्कमें रहनेके कारण उनपर पूर्ण तटस्थतासे लिखना मेरे लिये प्रायः असम्भव है। फिर भी साहित्यके हितको ध्यानमें रखते हुए मैंने यही प्रयास किया है कि कहीं उनकी अनुचित प्रशंसा न हो और कहीं भी उनके साहित्यकी कमज़ोरियोंपर पर्दा डालनेसे हमारी नई साहित्यिक प्रवृत्तियोंका अनहित न हो। यह कहनेकी जरूरत नहीं कि उनकी रचनाओंका उचित स्थान निर्देश करनेमें मेरा हृदय निःशंक रहा है।

निरालाजीके मित्रोंकी संख्या बहुत बड़ी है। उनमेंसे अधिकांश से निरालाजीके जीवन और साहित्यके बारेमें बहुतसी बातें मालूम हुई हैं। उनके अलग-अलग नाम न लेकर यहाँ मैं एक साथ ही उनके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। उनके साहित्य और व्यक्तित्वके बारेमें सबसे अधिक जानकारी स्वयं निरालाजीसे हुई है। उनके सिवा उनके सम्बन्धियोंसे भी मुझे बहुतसी बातें मालूम हुई हैं। इनमें

निरालाजीकी स्नेहमयी सासुजीका उल्लेख करना आवश्यक है जिनके हृदयमें अपनी युवती कन्याकी स्मृति इस तरह सुरक्षित है मानों उन्होंने उन्हे कल ही विदा किया हो। साहित्य संसारसे दूर विश्वके प्रकाशमें न आनेवाली हमारे गाँवकी वीर नारियोंकी वह प्रतीक हैं। वैधव्यके गाढ़े दिन काटते हुए कविके पुत्र श्री रामकृष्ण और पुत्री स्वर्गीया सरोजका लालन-पालन किया और इस प्रकार कन्याके निधन होनेपर वे कविको जीवनका कठिन भार वहन करनेमें कंधा देती रही। धीरता, शील और सौम्यताकी इस मूर्तिके बिना निरालाजी का जीवन क्या होता, उनकी कठिनाइयाँ कितनी बढ़ जातीं, उनके रचना कार्यमें और कितनी विघ्न-बाधाएँ आ खड़ी होती यह कहना कठिन है। यह तो निर्विवाद है कि द्वेष और विरोधकी ज्वालासे बच कर निरालाजीको डलमऊमें बराबर स्नेहकी शीतल छाया मिली है। इसके लिए निराला-साहित्यका प्रत्येक पाठक उस जननीके प्रति जिसने निरालाको उसके जीवनकी सबसे बड़ी कविता दी, कृतज्ञ रहेगा।

पुस्तक समाप्त करते हुए मुझे समाचार मिला कि इस वीरमाताकी एकमात्र जीवित संतान श्री रामधनी द्विवेदीका दीर्घकालीन रुग्णताके बाद शरीरान्त हुआ। वृद्धावस्थामें अनेक कष्टोंके बाद उन्हें यह पुत्रका बिछोह भी सहना पड़ा। कोई आश्चर्य नही कि निरालाजी एकाएक डलमऊ छोड़कर बाहर निकल गए। मुझे विश्वास है कि यह दुःखिनी माँ और स्वयं निरालाजी इन कठोर प्रहारोंको वैसे ही सहन करेंगे जिस तरह उन्होंने जीवनमें अन्य प्रहारोंको सहा है। जिसने "दुःखका मुँह देखते-देखते उसकी डरावनी सूरतको बारबार चुनौती" देनेकी बात लिखी थी, विपत्तियोंसे टूट नहीं सकता; हम सदैव उससे नयी प्रेरणा, नयी दृढ़ता, और नये उत्साहका साहित्य पानेको आशा कर सकते हैं।

आगरा, अक्टूबर १९४६

१

बैसवाड़ेका जीवन

भरे-पुरे परिवारमें निरालाजीका जन्म हुआ था। माता थीं, पिता थे, चाचा थे, सभी कुछ था। अवधमें अपना गाँव छोड़कर यह परिवार बंगालकी एक रियासतमें जा बसा था। हिन्दुस्तानकी दूसरी रियासतोंकी तरह बंगालकी शस्य-श्यामला भूमिपर महिषादलका भी एक राज्य था। वन, प्रकृति, आम, नारियल, कटहल, बाँसके पेड़, तालाब, नदियाँ, वेला, जुही, हरसिंगार, सब कुछ था; लेकिन जनता भूखी थी। यहींपर सवत् १९५३ की वसंतपंचमीको पण्डित रामसहाय त्रिपाठीके घर बालक सूर्य-कुमारका जन्म हुआ। तीन वर्षकी अवस्थामें बालकके जीवनमें एक कभी न पूरा होनेवाला अभाव छोड़कर माता स्वर्ग चली गईं। कविको "अनगिनत आगए शरणमें जन-जननी" से उस अभावकी पूर्ति करनी पड़ी। पिता पंडित रामसहाय अवधके सीधेसादे किसान थे, जो सिपाही बन गए थे। स्वभावकी रूक्षता पहलेसे कुछ और बढ़ गई थी। यद्यपि अभी उनकी वैसी अवस्था न थी, फिर भी उन्होंने दूसरा विवाह नहीं किया। पत्नीकी मृत्युके उपरान्त वे सत्रह साल तक और जीवित रहे और इन्फ्लुएंज़ासे उनकी अकाल मृत्यु हुई।

यह आशा की जा सकती थी कि पत्नीके अभावमें वे अपना सारा स्नेह अपनी एकमात्र संतानपर उड़ेल देंगे। यह सम्भावना भी थी कि बहुत लाड़-प्यारसे वे अपने प्यारे इकलौते बेटेको बिगाड़ देंगे। परन्तु ऐसे भय या आशंकाका कोई भी कारण न था। एक बार हाजत रफ़ा करनेके बाद बालकने यूरोपवासियोंकी तरह आधुनिक ढंगसे बैंगनके पत्तेसे

कागजका काम लिया। ज्योंही निवृत्त होकर रसोई घरमें जाना चाहता था कि भाभीने रोक लिया और झरोखेसे जो कुछ देखा था, उसे पिताजी से निवेदन कर दिया। पिताजीने गरजकर डाट बताई, लेकिन इतना काफी नहीं था। बालकको टाँग पकड़कर उठा लिया और तालाब तक ले जाकर अपने हाथसे कई बार डुबकियाँ लगवाईं जैसे किसी गन्दी चीज को साफ कर रहे हों। इस तरह बालककी अपवित्रता निवारण करके और अब उसे निकटसे छूने योग्य समझ कर उन्होंने उसे वास्तविक दंड देना शुरू किया।

दूसरी बार बालकने पिताको सुझाया,–तुम्हारे मातहत इतने सिपाही हैं, तुम इस राजाको लूट क्यों नहीं लेते। पिताने सोचा कि यह भी किसी दुश्मनका जाल है जो इस तरह भेद लेना चाहता है। पुत्रसे वह रहस्य जाननेकी चेष्टा करने लगे और चिरंजीव इस सूझके लिए अपनी मौलिक प्रतिभाकी दुहाई देने लगे। परन्तु पिताको विश्वास न हुआ; जब बालक बेसुध हो गया, तभी ताड़न-क्रिया बंद हुई।

तीसरी बार अपने गाँवमें पतुरियाके लड़कोंके हाथसे पानी पीनेके कारण फिर वही दशा हुई। "मारते वक्त पिताजी इतने तन्मय हो जाते थे कि उन्हे भूल जाता था कि दो विवाहके बाद पाये हुए इकलौते पुत्र को मार रहे हैं। मैं भी स्वभाव न बदल पानेके कारण मार खानेका आदी हो गया था। चार-पाँच सालकी उम्रसे अब तक एक ही प्रकार का प्रहार पाते-पाते सहनशील भी हो गया था, और प्रहारकी हद भी मालूम हो गई थी।"

मातृहीन भावुक हृदय बालकपर इस व्यवहारका क्या प्रभाव पड़ा होगा, पाठक सहज ही कल्पना कर सकते हैं। घरके बाहर भी उसका जीवन सुखी नहीं था। तुलसीदासकी रामायण पढ़कर उसने हनुमानकी उपासना करना सीखा था। सरोवरसे लाल कमल लाकर वह उनका

सिंगार करता था। इस वीर भावनाके साथ ऊँच-नीच और छोटे-बड़े के विचारका मेल न खाता था। राज्यमें कायस्थ, ब्राह्मण, कुलीन और अकुलीनका प्रश्न राष्ट्रीय समस्याकी तरह हल न हो पाता था। स्वामी परमानन्दजीके महिषादल पधारनेपर ब्राह्मण और कायस्थ एक ही पाँति में भोजन पाने बैठे। कायस्थोंको गर्व हुआ कि उन्हींकी जातिके संन्यासीका अब इतना आदर हो रहा है। इसपर विप्र वर्गका भी ब्रह्मतेज जागा। एक ब्राह्मणने नवयुवककी ओर इंगित करके अपमान-जनक शब्द कहे। जब स्वामीजी गढ़का मन्दिर देखने गये, तब भी युवक को उनके साथ जानेसे रोका गया। एक ब्राह्मणने बड़े मार्केकी बात कही, "देवता राजाके हैं, किसी प्रजाके नहीं।"

इस तरहकी प्रतिकूल परिस्थितियोंमें भी बालक पितासे पाये हुए उद्धत स्वभावके कारण अपने जीवनके सभी काम निर्भीक भावसे करता रहा। स्कूलकी शिक्षा नवीं कक्षा तक मिली, फिर अनेक प्रतिभाशाली साहित्यकारोंकी तरह उसने स्कूलको नमस्कार किया। खेल-कूदसे उसे काफी दिलचस्पी थी और क्रिकेट और फुटबालका वह अच्छा खिलाड़ी था। सहपाठियोंमें उसके जीवनका अकेलापन बहुत कुछ दूर हो जाता था। संगीतकी भी उसे शिक्षा मिली और 'चोटीकी पकड़' का "बिन्दा कहत करो हमसो न—[illegible]" तभीसे उसके कंठमें बैठा हुआ है। राजा साहबके बड़े हारमोनियमपर युवक कभी-कभी गाता भी था।

सम्पूर्ण बाल्यकाल महिषादलमें नहीं बीता। जब तब वह अपने गाँव भी आया करता था। कानपुर-रायबरेली लाइनपर बीघापुर स्टेशनसे लगभग कोस-भरपर गढ़ाकोला गाँव बसा हुआ है। लोन नदी को पार करनेपर गाँवके कच्चे घर दिखाई पड़ने लगते हैं। और घरों की तरह चौपाल, छप्पर, दहलीज, आँगन, खमसार, अटारीके नक्शे पर पण्डित रामसहायका मकान भी बना हुआ है। अवधका यह भाग

बैस ठाकुरोंकी बस्तीके कारण बैसवाड़ा कहलाता है। ताल, छोटी नदियाँ और नाले, घनी अमराइयाँ यहाँकी शोभा हैं। इसे हम अवध का हृदय कह सकते हैं। अवधीका सबसे मधुर रूप यहीं बोला जाता है। इस भाषामें ओज और कोमलता दोनोंका ही विचित्र सम्मिश्रण है। यहाँके किसान परिश्रमी, ताल्लुकदार सरकारी पिट्ठू, छोटे जमींदार कमर टूटनेपर भी निरंकुशताकी परम्पराको निबाहते जानेवाले, विप्र वर्ग दंभी और निम्न जातियाँ बहुत ही सताई हुई हैं। यहाँके काफी लोग बम्बई और कलकत्तेमें नौकरी करते हैं, परन्तु शिक्षा और व्यवसायमें उन्होंने विशेष उन्नति नहीं की। कुछ दिन पहले हर गाँवमें दो चार परिवार ऐसे निकल आते थे जिनके लोग फौजमें सिपाही, हवलदार या सूबेदार तक होते थे। बड़ी-बड़ी दाढ़ी या गलमुच्छे रखानेवाला पेन्शन-भोगी यह वर्ग अब मिट-सा गया है।

अनेक दृष्टियोंसे पिछड़े होनेपर भी बैसवाड़ेकी भूमिने हिन्दीको अनेक साहित्यिक दिये हैं। पण्डित प्रतापनारायण मिश्र अचलगंजके पास बेत्थर गाँवके निवासी थे। इसीके पास झगड़ूपुरमें कवि शिव-मंगल सिंह 'सुमन' का जन्म हुआ है। पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदीके जन्मस्थान दौलतपुरको सभी लोग जानते हैं। पण्डित नन्ददुलारे बाजपेयी मगड़ायर गाँवके हैं; और इसी तरह हितैषीजी आदि अन्य साहित्यिकोंने भी पुरवा तहसीलके गाँवो में जन्म लिया है। 'सरस्वती' सम्पादक निरालाजी के चरितनायक कुल्लीभाटके लँगोटिया यार रह चुके हैं।

हिन्दीको बैसवाड़ेकी इस देनका यह कारण है कि जन साधारण में अब भी साहित्यकी एक जाग्रत और सजीव परम्परा विद्यमान है। आज भी कोई ऐसा गाँव न होगा जिसमें दो-चार सौ कवित्त याद रखने वाले दो-चार कविता-प्रेमी न निकल आयें। शामको किसी शिवालेपर

कवित्त कहनेवालोंमें होड़ होती है तो सुननेवालोंका मेला लग जाता है। जीवनके हर काममे और बात-बातमें कवियोंकी उक्तियाँ उद्धृत करना यहाँकी बोल चालकी विशेषता है। हल जोतते समय किसान अक्सर कह बैठते हैं, "वित्त कवित्त सबै भूले जब हाथ परी हलकी मुठिया," लेकिन भूलनेपर भी इन वित्तहीन किसानोंके कंठसे ऐसे मौकेपर कभी कभी कवित्तके वे टुकड़े फूटते हैं कि सुन कर एक बार चार्ल्स लैम्ब भी इनकी उद्धरण-चातुरीकी दाद दे देता। गिरधर कवि-रायकी कुण्डलियाँ, तुलसीदासकी रामायण, घाघ भड्डरीकी सूक्तियाँ और सैकड़ों दोहे और छन्द लोगोंकी जबानपर हैं। आल्हाका तो पूछना ही क्या—आल्हा अवधकी अपनी चीज है। कौन ऐसा युवक होगा जिसने सुरती न खाई हो और आल्हा न गाया हो। आल्हा गानेमें समय नष्ट होता देखकर और घरके काम-धन्धे रुकते जानकर बड़े-बूढ़ों ने चेतावनी दी थी कि जो आल्हा गायेगा उसे जूड़ी आयेगी, जो संगति करेगा उसे ताप हो जायगा और जो मूर्ख अपनी चौपालमें सुननेवाले ठलुओंको इकट्ठा करेगा, उसका तो वंश ही नाश हो जायगा। लेकिन अनेक पौराणिक वाक्योंकी तरह जनतापर इस रूलिंगका भी कोई असर नहीं पड़ा।

आल्हासे कुछ ही कम रवाज नौटकीका है। जब-तब नगाड़ेकी कड़-कड़ धुमके साथ आधी रातको टीपपर "मुझको मरनेका खौफो-खतर ही नहीं" जैसे टुकड़े सुनाई पड़ जाते हैं। नौटंकी प्रेमियोंका एक अलग ही वर्ग है। तिर्छी दुपल्ली टोपी, जुलफें तेलसे चुचुवाती हुई, मुँहमें दुहरा, सुरती या पान, एक पैरमें लम्बी धोती और एक पैरमें उठी हुई, बहुत शौकीन हुए तो कानपर बीड़ी या चूनेकी गोली, हाथमें तेलवायी लाठी और पैरोंमें नुकीला जूता या शहरका स्लीपर—यह इनकी धजा है। गाँवके ठलुए छैले और गुन्डे बहुधा इसी वर्गके होते हैं।

शूद्रों और निम्न जातियोंमें सन्त कवियोंका, विशेषकर कबीरकी वाणीका, बड़ा प्रचार है। इस साहित्यपर उनका इतना अधिकार है कि वे किसी भी साहित्य महारथीको उखाड़ सकते हैं। निरालाजी चतुरी को अपने रेखाचित्रमें इस बातका प्रमाणपत्र दे चुके हैं। होलीके दिनो में फाग और सावनमें झूलेके गीत सारी प्रजाकी सम्पत्ति हैं। नारी समुदायने अपने लोकगीतोंकी अलग रक्षा की है! तिथि-त्यौहार जाने दीजिये, साँझको मन्दिरमें जल चढ़ाने जायेंगी तो गायेंगी, पानी भरने जायेंगी तो गायेंगी, चकिया पीसेंगी तो गायेंगी,—मतलब यह कि जहाँ चार स्त्रियाँ इकट्ठा हुईं तो वे या तो एक-दूसरेकी बुराई करेंगी या फिर गीत गायेंगी। काव्य और संगीतके साथ कथाओंके रूपमें एक विशाल गद्य साहित्य भी है जो अभी पुस्तकोंमें लिपिबद्ध होकर मुद्रित नहीं हुआ। शायद ही कोई अभागा बालक हो जो सोनेके पहले दो-चार कथाएं न सुन लेता हो। बड़े-बूढ़ों ने अपनी जान बचानेके लिये यह नियम बना लिया है कि दिनमें कथा न सुनायेंगे। शास्त्रकी दुहाई देकर वे कहते हैं कि जो दिनमें कथा सुनायेगा वह रास्ता भूल जायगा और सुननेवालेका मामा खोजायगा। इसी गद्य साहित्यके अन्तर्गत वे हज़ारों कहावतें और मुहावरे हैं, जिनसे इस जनपदकी भाषा आश्चर्य-जनक रूपसे समृद्ध है। भाषा और साहित्यकी इस लोक-परम्पराके कारण ही निर्धनता और अशिक्षाके बावजूद इस भूमिने आचार्य द्विवेदी और कवि निरालाको उनकी रचनाओंके लिये प्रेरणा दी है।

बालक सूर्यकुमारने पितासे अच्छी काठी पाई थी। चौदह वर्षकी अवस्था में ही कसरत कुश्तीका शौकीन वह एक अच्छा खासा युवक बन गया। बैसवाड़ेमें, देशके बहुतसे अन्य भागोंकी तरह, बचपनमें ब्याह करना एक गौरवकी बात समझी जाती है। अल्प अवस्थामें सूर्यकुमारका भी विवाह हो गया। सासुजीने लड़केको बुलाकर देख लिया, मन बैठा

लिया और बात पक्की करली। परन्तु यह जानकर कि उनकी बिटियाको दूर परदेश जाना पड़ेगा, उन्होंने यह शर्त रक्खी कि छः महीने वह सासरे रहेगी और छः महीने मायके। श्वसुर उन्हें परदेश भी न ले जायँगे।

विवाह वरके योग्य हुआ। स्वर्गीया मनोहरादेवी रूपवती और गुणवती दोनों थीं। रंग कविका-सा था, यानी खुलता गेहुँआ, मुँह कुछ लम्बा-सा, घने लम्बे केश, गानेमें अत्यन्त निपुण, सौ-डेढ़ सौ स्त्रियोंमें धाक जमानेवाली, विवाहके समय साहित्यमें कविसे अधिक योग्य। गौनेसे कविता रोमांस शुरू हुआ। अपनी शिक्षा जारी रखनेके लिये फिर महिषादल आना पड़ा लेकिन "वामा वह पथमें हुई वामसरितोपम,"— शिक्षाका क्रम आगे न चल सका। कुछ दिन तक वह डलमऊ रहे। दूध-बादाममें सासका दिवाला निकालते-निकालते छोड़ा। रूह की मालिश कराई, कुल्लीकी संगति की। गंगाके किनारे एक हाथसे कैथे फेंककर और दूसरेसे लोकते हुए क्रिकेटका शौक पूरा करते थे। वैवाहिक जीवनका सुख अधिक दिन तक नहीं बदा था। श्री मनोहरा देवीने एक पुत्र और एक कन्याको जन्म देकर इन्फ्लुएंजाकी बीमारी में शरीर त्याग किया। उस समय युवक पति महिषादलमें था। पत्नी की मृत्यु मायकेमें, माँकी गोदमें हुई। सब कुछ समाप्त होनेके बाद सूर्यकुमार भी वहाँ आ पहुँचे। इस वज्रपातसे उनका बुरा हाल था। घंटों श्मशानमें बैठे रहते। कहीं कोई चूड़ीका टुकड़ा, हड्डी या राख मिल जाती, तो उसे हृदयसे लगाये घूमा करते। इन्फ्लुएंजा में इतने मनुष्य नष्ट हुए थे कि गंगाके किनारे दिन-रात चिताओंकी जोत कभी मन्द न होती थी। अवधूत टीलेपर बैठा हुआ युवक कवि घंटों तक बहती हुई लाशोंका दृश्य देखा करता।

डलमऊको अगर एक मनहूस जगह कहा जाय तो बेजा न होगा। जीवनसे अधिक यह मृत्युका स्थान है। किसी समय यह व्यापारकी

मराडी था। पृथ्वीराज और जयचन्दके समय इसका राजनीतिक महत्व भी था। भट राजाओंके विशाल किलेके ध्वंसावशेष उसके ऐतिहासिक गौरवके साक्षी हैं। आज भी कतकीके दिनोंमें बड़े-बड़े आम और इमली के बगाइच जन-समूहसे भर जाते हैं। धनुषाकार गंगा नगरको घेरे हुए है। अनेक स्थानोंसे नदीका चौड़ा पाट, दूसरी ओरकी बनराजि और किलेपरसे कोसों तक फैले हुए मैदानोंका दृश्य दिखाई देता है। परन्तु अब नदीपर धनी व्यापारियोंके बजरोंकी भीड़ नहीं होती। व्यवसाय नष्ट होगया है। मकान खराडहर होगये हैं। जगह जगह कच्ची मिट्टी के स्तूप--से बन गए हैं जिनमें जहाँ-तहाँ बिलोंसे प्रवेश करके मनुष्य नामधारी जीव, जीवन व्यापारमें लगे रहते हैं। नगरमें अधिकतर गंगा-पुत्रोंकी वस्ती है। घाटकी जमीदारीमें ज्यादा गुंजायश न होनेसे बहुत से लोग नगर छोड़कर बाहर जा रहे हैं। धर्म-भीरु किसान यात्रियोंसे पैसा झटकना, फुर्सतमें जुआ खेलना, दलबन्दी करके गंगाके किनारे लम्बी-लम्बी लाठियाँ लेकर युद्ध करना,—यह भी यहाँकी संस्कृतिमें शामिल है। वैसे दो-चार विद्वानों, संगीतज्ञों और अन्य गुणी जनोंसे डलमऊ कभी खाली नहीं रहा। प्रथम महायुद्धके बाद इन्फ्लुएंज़ासे जब घरके घर खाली हो रहे थे, तब डलमऊ और उसके श्मशान क्या रहे होंगे, इसकी कल्पना डलमऊ जाकर ही की जा सकती है।

इस महामारीमें कविकी पत्नीकी ही मृत्यु नहीं हुई। पिता, चाचा आदि एकके बाद एक सभी स्वर्ग सिधारे। चार भतीजों और अपनी दो संतानका भार २१ सालके युवकके कन्धोंपर पड़ा। कन्याको, जो अभी सवा सालकी थी, नानीने पाल-पोसकर जीवित रक्खा। नौकरीकी खोज शुरू हुई। महिषादलमें नहीं पटी और उसे छोड़ना पड़ा। कलम की मजदूरीका अभ्यास शुरू होगया। मौलिक रचना, अनुवाद, जो काम मिलता उसे उठा लेते। इस समयकी अनेक प्रारम्भिक रचनाएँ,

कुछ उपन्यास, नाटक आदि नष्ट भी हो गये। द्विवेदीजीसे परिचय हुआ और उन्होंने बाबू शिवप्रसाद गुप्तको एक पत्र लिखा कि ज्ञान मण्डलमें इन्हें कुछ कार्य देदें। प्रयत्न विफल ही रहा। अक्तूबर सन् १९२१ में प्रताप प्रेससे बातचीत चली। मालिक लोग बीस-पच्चीस रुपये देनेको राजी थे। उधर रामकृष्ण मिशनको एक सम्पादककी आवश्यकता थी। उस जगहका विज्ञापन भी निकला। द्विवेदीजीने स्वामी माधवानन्दजीको पत्र लिखा और कानपुरमें मुलाकात होने पर कमसे कम पचास रुपये मासिक वेतनपर इन्हे रख लेनेको कहा। दिसम्बर सन् '२१ में द्विवेदीजीने लिखा, "जान पड़ता है स्वामीजी ने बहाना कर दिया है। पसंद किसी और ही को किया होगा। खैर उनकी इच्छा। इधर बनारस जानेमें भी आपने देर कर डाली।" आगे चलकर निरालाजीने रामकृष्ण मिशनमें काम किया और सालभर तक 'समन्वय' का सम्पादन किया। इसी समय राम चरित मानसपर उन्होंने वे निबन्ध लिखे जिनमें सप्त सोपान आदिकी नई व्याख्या करके तुलसीदासको रहस्यवादी सिद्ध किया है।

सन् १९२३ में बाबू महादेव प्रसाद सेठने 'मतवाला' निकाला। साल भर तक निरालाजी यहाँ रहे। 'मतवाला' की तीसरी संख्यामें पृष्ठ १७ पर एक कविता छपी है, "गये रूप पहचान" और इसीके साथ 'मतवाला' के समपर गढ़ा हुआ 'निराला' नाम भी प्रकाशित हुआ है। अठारहवें अंकमें 'जूहीकी कली' छपी है जिसके साथ पहली बार कविका पूरा नाम पण्डित सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' प्रकाशित हुआ है। उनके जीवनमें बहुत दिनोंके बाद ऐसा सुखद वर्ष आया था। महादेव बाबू बड़ी खातिर करते थे। बहुत दिनोंके बाद अवरुद्ध साहित्यिक प्रतिभाको प्रकाशमें आनेका अवसर मिला था। शामको भाँग छानना, दिन-भर सुरती फाँकना, थियेटर देखना,

साहित्यिकोंसे सरस वार्तालाप करना, मुक्त छन्दमें कविता लिखना, छद्म नामोंसे हिन्दीके आचार्योंकी भाषामें व्याकरण और मुहावरो की भूलें दिखाना, और यों समस्त हिन्दी संसारको चुनौती देना—उनके जीवनका कार्य-क्रम था। उस समय ऐसा लगता था कि मुंशी नवजादिक लाल, बाबू शिवपूजन सहाय, और पंडित सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' एक तरफ और सारी खुदाई एक तरफ़ है। बंगालमें स्वामी विवेकानन्द और रवीन्द्रनाथ ठाकुरका कार्य देखकर हिन्दी-भाषी प्रान्तोंमें साहित्यिक और सामाजिक क्रान्ति करनेके लिये प्रबल आकांक्षा जाग उठी थी परन्तु साधन कम थे और विरोध अधिक था। शीघ्र ही आक्रमणका भाव आत्म-रक्षणकी भावनामें बदल गया।

ग्रहोंकी विशेष कृपा होनेसे निरालाजी साल-दो साल तक ही एक जगह पैर जमाकर रह सकते हैं। साल-भर बाद ही वह 'मतवाला' से अलग होगये और अगले पाँच वर्ष अस्थिरता, आर्थिक चिन्ता, शारीरिक और मानसिक रोगमें बीते। कलकत्तेसे चलते हुए उन्होंने बाबू बालमुकन्द गुप्त, पण्डित लक्ष्मण नारायण गर्दे, पण्डित सकल नारायण शर्मा और पं० जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदीसे अपनी योग्यताके प्रमाणपत्र लिये। चतुर्वेदीजी नई कविता, विशेष रूपसे मुक्त छन्द के प्रबल विरोधी थे। कवि-सम्मेलनोंमें वे इनकी नकल उतारा करते थे। सम्वत् १९८३ में अपने दिये हुए प्रमाणपत्रमें उन्होंने विरोधका जिक्र न करते हुए लिखा था, "आपके निराले ढंगके पद्योंने हिंदी संसार में युगान्तर-सा उपस्थित कर दिया है।" पता नहीं, कहाँतक इन प्रमाण-पत्रोंने आर्थिक प्रश्न हल करनेमें सहायता की।

सन् '२६से '२८ तकका समय उनकी घोर अस्वस्थताका समय भी था। इन वर्षोंमें प्रसादजी, शान्तिप्रिय द्विवेदी, विनोदशंकरजी व्यास, पण्डित कृष्णविहारी मिश्र, प्रेमचन्दजी आदिने इन्हें जो पत्र लिखे हैं, उनमें बराबर

बीमारीकी चर्चा है। कभी बुखार तो कभी पैरमें फोड़ा, तो कभी और कुछ। उस समय आजकी तरहका भारी शरीर नहीं था। 'माधुरी' में छपे हुए उनके पुराने चित्रमें उनकी बहुत कुछ वही हुलिया है जो आजकल पण्डित रामकृष्ण त्रिपाठीकी है। प्रेमचन्दजीने फर्वरी सन् '२८ में अपने पत्रमें लिखा था, "मीयादी बुखार क्या इसीलिए आपकी ताकमें बैठा था कि घरसे निकलें तो धर दबाऊँ। किस्मतने वहाँ भी आपका साथ न छोड़ा। बीमारीने तो आपको दबा डाला होगा। पहलेही कहाँके ऐसे मोटे-ताजे थे।" रोग और आर्थिक कष्टोंसे यह लड़ाई अधिकतर गढ़ाकोलाके उसी कच्चे मकानमें हुई। जब-तब कलकत्ता जाते रहते थे। बाजारके कामसे जो कुछ मिलता, उसमेंसे खाने-खरचनेके बाद यथाशक्ति भतीजोंको भी भेजते थे। उनके पुराने कागज़-पत्रोंमे कुछ मनीआर्डरकी रसीदें हैं जिनसे पता लगता है कि गृहस्थीके प्रति वह नितान्त उदासीन न थे। सन् '२६ मे पण्डित मन्नीलाल शुक्ल, मार्फत रामगोपाल त्रिपाठी, के नाम कलकत्तेसे पचास रुपये भेजे थे। कलकत्तेसे भी वे घरकी छोटी छोटी बातोंके लिए निर्देश किया करते थे। एक उदाहरण काफ़ी होगा। सितम्बर सन् '२७ मे उन्होंने अपने भतीजे श्री केशव प्रसादको लिखा था, "तुमने जो लोगोंके दाम देदिए और अनाज खरीद लिया, सो अच्छा किया। पण्डितजीने बागका चारा २२) में बेच डाला यह भी अच्छा हुआ। देखना, पेड़ न चर जॉय, जो पौधे हैं। रुपया पण्डितजीको हम बहुत जल्द भेजते हैं।..........तुम लोगोंको जड़ावर भेजेंगे।" सन् '२६ में एक पत्रमें उन्होंने बाग बेच डालनेका जिक्र किया है और लिखा है, "खर्चेकी तकलीफ़ हो तो बर्तन बेच डालना। तकलीफ़ न सहना।" शायद इन्ही सब बातोंको सोचकर 'सरोज स्मृति'में उन्होने लिखा था:--

"दुख ही जीवन की कथा रही
क्या कहूँ आज, जो नहीं कही"

इसी समय उन्होंने 'ध्रुव', 'प्रह्लाद', 'राणा प्रताप', 'रवीन्द्र-कविता-कानन', 'हिन्दी-बंगला शिक्षा', 'रामकृष्ण वचनामृत', आदि पुस्तकें लिखीं या अनुवादित कीं। 'हैक वर्क' या बाजारका काम उन्हे बराबर करना पड़ा है, लेकिन प्रकाशकोंकी ठग-विद्याके कारण इसे भी वे जमकर नहीं कर सके। पत्रोंके सम्पादक काम माँगनेपर क्वालीफिकेशन पूछते थे। सन् '२७ में सुधा कार्यालयसे उनके पास एक ऐसा ही पत्र आया था।

चण्डीदासके पदोंका अनुवाद करनेके लिए इसी वर्ष छतरपुर से भी बुलावा आया। उस समय बाबू गुलाबराय महाराज साहबके प्राइवेट सेक्रेटरी थे। उन्होंने लिखा, "लाला शिवपूजन सहायसे ज्ञात हुआ है कि आप बगला भाषा और ब्रजभाषाके अच्छे ज्ञाता हैं और ब्रजभाषामें कविता भी करते हैं। श्रीमहाराज साहबको एक ऐसे ही विद्वानकी आवश्यकता है। वह श्री चण्डीदासके ग्रन्थोंका पद्यानुवाद कराना चाहते हैं।" वहाँ जानेपर इन्हे ज्वर हो आया और सत्रह दिन तक बीमार पड़े रहे। उन्होंने अद्वैत आश्रम अलमोड़ाके अध्यक्ष स्वामी विश्वेश्वरानन्दजीको बंगलामें लिखे हुए अपने पत्रमें काम न मिलनेकी चर्चा की थी। सत्तर रुपये विदाई लेकर घर वापस आगये। रामायणकी टीका करनेका विचार कर रहे थे, लेकिन बाबू शिवपूजन सहायके शब्दोंमें "हिन्दीवालोंकी दशा आप जानते हैं। टीकाके लिए अभी मालदार कोई नहीं सूझता।" आगे चलकर इस तरहकी सटीक रामायणका कुछ अंश गंगा-पुस्तक-मालासे प्रकाशित हुआ था।

अन्यत्र रवीन्द्रनाथ ठाकुरकी रचनाओंका अनुवाद करनेकी बात भी चल रही थी। कौपीराइटके झगड़ेके कारण राय श्रीकृष्णदासको अनुवाद करानेका विचार छोड़ना पड़ा। सन् '२८ के शुरूमें 'माधुरी' के सम्पादकने पूछा कि सम्पादन-विभागमें जगह मिलनेपर क्या वह

सम्पादककी जिम्मेदारियोंको निभा सकेंगे। हिन्दी, अंग्रेजी आदि भाषाओंके बारेमें उनकी योग्यताकी जाँच करते हुए यह भी पूछा गया था, "प्रूफरीडिंगका कैसा अभ्यास है ?" हिन्दीमें प्रूफ़रीडर और सम्पादक, ये दोनो शब्द पर्यायवाची-से हैं। सम्पादकके पत्रके उत्तरमें उन्होंने जो कुछ लिखा हो, अगले महीने 'माधुरी' कार्यालयने लिख भेजा, "इन शर्तोंपर अभी आपको न बुला सकूँगा।"

सन् '२९ से उन्होंने स्थायी रूपसे गंगा-पुस्तक-माला कार्यालयमें काम करना शुरू किया। सुधाके लिए वे सम्पादकीय नोट लिखते थे और उसके सम्पादनका सारा भार संभालते थे। यहींपर 'अप्सरा', 'अलका' उपन्यास और 'लिली' की कहानियाँ लिखीं। उनका अध्ययन-क्रम भी पहलेकी अपेक्षा सुव्यवस्थित हुआ। विश्व-विद्यालयके छात्रोंका एक ऐसा दल भी तैयार हुआ जो इनके साहित्यका समर्थन करता था और अपने साहित्यके लिए इनसे प्रोत्साहन पाता था। अंचल, कुँअर चन्द्रप्रकाश सिंह, रामरतन भटनागर, 'हसरत', दयानन्द गुप्त, आदि उनके निकट सम्पर्कमें आनेवाले तरुण साहित्यिक थे। वैसे दस साल के भीतर निरालाजीका साहित्यिक अकेलापन दूर होचुका था। कलकत्तेके मित्रोंमें श्री शिवपूजन सहाय मुख्य थे। उनकी मैत्रीपर श्रद्धाका गहरा रंग चढ़ा हुआ था। ब्राह्मणोंके प्रति उनकी भक्ति सतयुगकी याद दिलाती है। उनकी सरलता और सौजन्यके पीछे विनोदी स्वभाव और दुनियाकी तीखी पहचान छिपी है। बाल्यकालके बाद कई वर्षों तक वे अपने पत्रोंसे निरालाजीकी बराबर खोज-खबर लेते रहे। कविके प्राथमिक विकासके दिनोंमें शिवपूजन सहायजी उन साहित्यिकोंमें थे, जिन्हे कविके उज्ज्वल भविष्यपर पूर्ण विश्वास था। इस तरहकी आस्था, मैत्री और सद्भावनाकी उस संघर्ष कालमें बड़ी आवश्यकता थी। विनोद-शंकरजी व्यास श्रद्धा और प्रेमके साथ निरालाजीकी खातिर भी खूब

करते थे। भाँग-बूटी छानकर नाव खेते हुए गाना-बजाना भी होता था। इन्हें इस बातकी चिन्ता रहती थी कि ऐसे प्रतिभाशाली व्यक्तिकी शक्ति और समयका दुरुपयोग अनुवाद वगैरह छोटी मोटी बातोंमें खर्च न हो। लेकिन मौलिक रचनाओंसे जीविका चलना कठिन था; दूसरे लेखकोंकी तरह सिर्फ पैसा कमानेके लिए वह मौलिक पुस्तकें लिख भी न सकते थे।

प्रसादजी इनसे स्नेह ही नहीं करते थे, इनकी देखभाल भी करते थे। रुग्णावस्थामें उन्होंने औषधि आदिका प्रबन्ध करनेमें बड़ी सहायता की थी। तभी श्री सुमित्रानन्दन पन्तसे पत्र-व्यवहार शुरू हुआ और एक ही साहित्यिक आन्दोलनमें काम करनेके कारण साक्षात् परिचय न होने पर भी सहज मैत्री सम्बन्ध स्थापित होगया। 'पल्लव' की भूमिकामें आक्षेप करनेके कारण निरालाजीने 'पल्लव' पर एक ध्वंसात्मक लेख लिखा। आगे भी 'भारत' आदि पत्रोंमें वादविवाद चला, परन्तु इससे उनकी मैत्रीमें कभी अन्तर नहीं आया। शायद ही किसी युगके तीन महान् कवियोंमें ऐसा स्नेह सम्बन्ध रहा हो जैसा प्रसाद, निराला और पन्त में था। और शायद ही किन्हीं दो व्यक्तियोंके स्वभावमें इतना अन्तर हो जितना पन्त और निरालाके। फिर भी दोनोंने न जाने कितने दिन घण्टों एक साथ रहकर बिताये हैं। इसका यही कारण है कि वे एक-दूसरेको जितनी अच्छी तरह जानते पहिचानते, और प्यार करते हैं, उतना शायद दूसरा कर ही नहीं सकता।

श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी पन्तजीसे मिलनेके पहले निरालाजीको ऐसे पत्र लिखते थे मानों स्वर्गके पतेसे किसी देवताको लिख रहे हों। आगे चलकर निरालाजीसे बहुतसी बातोंमें मतभेद हुआ और उनकी श्रद्धा भी पन्तजीपर अधिक हुई। जिस समय निरालाजीने लखनऊमें स्थायी रूपसे रहना शुरू किया था, उस समय श्री नन्ददुलारे वाजपेई हिन्दू विश्वविद्यालय बनारसमें अध्ययन कर रहे थे। अपने अध्ययन कालसे वे निराला

जीके समर्थक बन गये। वे निर्भीक और निर्द्वन्द प्रकृतिके व्यक्ति हैं। आँख मूँदकर किसीकी बात मानना उन्होंने सीखा ही न था। अपने पत्रोंमें कविकी अनेक रचनाओंके प्रति शंका ही नहीं प्रकट करते थे, कभी कभी ऐसी सम्मति भी देते थे जो एक श्रद्धालु विद्यार्थीके लिए धृष्टता हो सकती थी। अपने स्वतन्त्र चिन्तनके कारण ही वे कविके अगले विकास में बराबर उसके समर्थक रहे। कुछ समय तक उन्होंने "भारत' का सम्पादन किया जिसमें निरालाजीका 'वर्तमान धर्म' लेख प्रकाशित हुआ। इसे प्रसिद्ध करनेका श्रेय पं० बनारसीदास चतुर्वेदीको है, वर्ना लोग उसे भूल गये होते। कुछ ऐसे साहित्यिक वादविवादोंके कारण वाजपेयीजीको 'भारत' छोड़ना पड़ा।

कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह, रामरतन भटनागर, 'हसरत' दूसरी कोटिके मित्र थे। इनमें चन्द्रप्रकाशजीको निरालाजीपर सबसे ज्यादा श्रद्धा थी। उनके गीतोंपर महाकविकी शैलीकी छाप अब भी बनी हुई है। 'अप्सरा' के बारेमें वादविवाद होनेपर उन्होंने उसमें हिस्सा लिया था। 'हसरत' संक्षिप्त-से आदमी हैं। सड़कपर चलते हुए अगर ऊपरको मुँह उठाकर न देखे, तो कविके शब्द उनके कानों तक पहुँचनेके बदले हवामें विलीन हो जाँय। लखनऊ 'कालिका भण्डार' से इन्होंने अनगिनत रसगुल्ले खाये होंगे, लेकिन परिस्थितियोंके कारण उनकी उर्वर प्रतिभा अभी तक प्रकाशमें नहीं आई। अञ्चलजीसे हिन्दीके पाठक अच्छी तरह परिचित हैं। उस समय यह भी लखनऊ विश्वविद्यालय में पढ़ते थे। हीवेट रोडपर मैजेस्टिक होटलमें इन सब लोगोंका जमघट रहता था। सामनेके मकानमें श्री हर्षवर्धन नैथाणी रहते थे, जिनका जिक्र 'देवी' में आया है। साहित्य और चित्रकलासे इन्हें बड़ा प्रेम था, लेकिन सरकारी नौकरीके चक्करमें साहित्यिक विकास नहीं हुआ। इन सब मित्रोंमें सीतापुरके स्वर्गीय श्री बलभद्र दीक्षित 'पढ़ीस' भी थे। यद्यपि

वह 'हसरत' और अञ्चलसे पहली पीढ़ीके लेखक थे, फिर भी उनका मुख्य रचना-काल इसी समयका है। वे बहुत ही सरल प्रकृति के निरभिमानी और स्नेहशील व्यक्ति थे। 'हिरनी' कहानीकी घटना निरालाजीको उन्हींसे मालूम हुई थी। ग्रामीण भाषामें उच्चकोटिकी रचनाएं करना उन्होंने अभी शुरू किया था।

कुल मिलाकर, कलकत्तेसे अबकी फिज़ाँमें बड़ा अन्तर था। विरोध और अकेलेपनके बदले अब उन्हें सहयोग और समर्थन मिल रहा था। आर्थिक दृष्टिसे वे विशेष सुखी या समृद्ध न थे, फिर भी पहले जैसा कष्ट न था। मैली तहमत, लम्बे रूखे बाल, कुर्ता गलेमें बंधा हुआ, फटी चप्पल या नंगे पैर, इस वेशमें अमीनाबादकी सारी स्थायी जनता उन्हें पहचानती थी। उनके साथ अपनी स्वच्छ वेश-भूषामें कभी पन्तजी चलते थे, तो वह दृश्य देखने योग्य होता था। ऐसा कन्ट्रास्ट अत्यन्त दुर्लभ था।

भार्गव मैजेस्टिक होटल टूटनेपर वह मकान लेकर रहने लगे। ५८ नं० नारियलवाली गलीके दुमंजिले मकानमें वह कई साल तक रहे। कभी रामकृष्णजी और स्वर्गीया सरोज आकर साथ रहती थीं। सरोज के चले जानेपर वे उसमें बहुधा अकेले ही रहे। कलकत्तेके बालकृष्ण प्रेस और गढ़ाकोलाके घरकी तरह इस मकानका भी साहित्यिक महत्व है। 'तुलसीदास', 'प्रभावती', 'गीतिका' के अधिकांश गीतोंकी रचना इसी समयमें हुई। गंगा-पुस्तक-मालाके संचालक श्री दुलारेलाल भार्गवसे उनकी अच्छी ही निभी। निराला जी सम्पादन कार्य ही नहीं करते थे, दुलारेलालजीकी साहित्यिक कार्यवाहीमें भी सहायता करते थे। 'दुलारे दोहावली' की पहली भूमिका उन्होंने लिखी थी और उसके दोहोंके बारेमें भी परामर्श दिया था। 'वीणा' में एक दोहेके अठारह अर्थ करके उन्होंने अपनी समझमें दोहावलीका बड़ा अच्छा समर्थन किया था। उनके प्रिय मित्र चौबेजी ऐसे मौकोंकी ताकमें ही रहते थे; अपनी समझमें उन्होंने भी

इससे खूब फ़ायदा उठाया। गंगा-पुस्तक-मालासे अलग होनेके समय 'गीतिका' प्रेसमें जाचुकी थी। उस समय जितने गीत लिखे गये थे, निरालाजीने उनकी टीका भी की थी। सौदा न पटनेके कारण पुस्तक प्रेससे मँगाली गई और फिर वह लीडर प्रेसमें छपी। लखनऊ छोड़नेपर अधिकतर वे इलाहाबाद ही रहे। साल-भर तक मकान बन्द पड़ा रहा। पिछला किराया उतारनेके लिए नया चढ़ाते रहे। लीडर प्रेससे लौटकर एक मुश्त किरायेकी बड़ी रक़म अदा की। 'गीतिका', 'अनामिका', 'निरुपमा' पुस्तकें लीडर प्रेससे प्रकाशित हुईं।

इसके बाद कुछ दिनके लिए वह फिर लखनऊमें आकर रहने लगे। नारियलवाली गलीसे थोड़ा आगे चलकर भूसामण्डी हाथीखानामें उन्होंने मकान लिया। यह पहले काँग्रेसी मन्त्री-मण्डलका जमाना था। इन्हीं दिनों पं० श्रीनारायण चतुर्वेदीसे भी उनका परिचय हुआ। चतुर्वेदी जी प्राचीन साहित्यके अनन्य प्रेमी हैं। छायावादके प्रति उनकी वैसी सहानुभूति नहीं है। आर्यनगरमें उनके घरपर अक्सर साहित्यिक विवाद हुआ करता था। भूसामण्डीके मकानमें रहते हुए निरालाजीने इन्डियन प्रेसके लिए बंकिम बाबूके उपन्यासोंके अनुवादका काम लिया। दो-तीन उपन्यास अनुवाद करनेके बाद मालूम हुआ कि इन्डियन प्रेसके व्यवस्थापक अनुवादके शब्दोंके हिसाबसे इन्हें काफी रुपया देचुके हैं। निरालाजीके अनुसार यह हिसाब-किताब गलत था और उन्होंने काम बन्द कर दिया।

महायुद्ध छिड़ चुका था जब वे कर्वी गये। वहाँपर बुरी तरह बीमार पड़ गये और उनकी वास्तविक स्थितिसे उनके अधिकांश मित्र अपरिचित ही रहे। इस बीमारीसे करीब सत्तर पौंड वज़न कम हो गया। उस बार स्वास्थ्य गिरनेसे वह फिर अच्छी तरह सम्हल नहीं पाये। दारागंज, प्रयागमें उन्होंने एक छोटा-सा मकान लिया जिसके एक भागमें उसके मकान मालिक भी रहते हैं। इसकी छत इतनी नीची है कि

आदमी उसे हाथ उठाकर छू सकता है। निरालाजीके लिये यह मकान कठघरे जैसा है। इसीमें 'चोटीकी पकड़', 'काले कारनामे', 'नये पत्ते', 'बेला' आदि पुस्तकें उन्होंने लिखीं। प्रातःकाल गंगा नहाते थे और स्वयं भोजन पकाते थे। वर्तन धोना, घर साफ़ करना—जब भी वे उसे साफ करते हों—उनका अपना काम था। इसमें रहते हुए उनकी दशा बराबर चिन्ताजनक रही है। श्रीमती महादेवी वर्माने साहित्यकार संसदके द्वारा और वैसे भी उनकी देख-रेख करनेका प्रयत्न किया। कुछ लोगो की धारणा है कि निरालाजीको जो कुछ रुपया मिलता है, वे सब खा-पी डालते हैं। इसके विपरीत सत्य यह है कि अधिकांश वे दान कर देते हैं। कहीं कोई कवि सम्मेलन हुआ, बुलावा आनेपर बड़े ही व्यावसायिक ढंगसे सौदा पटाया, पेशगी रुपया मँगाकर कपड़े-लत्ते बनवाये जिसमें दरी, चादर, रजाई, तकिया, जूते वगैरह सभी कुछ शामिल हैं। दूसरे कवि-सम्मेलन तक उनके पास जूते छोड़कर शायद और कुछ भी नहीं रह जाता। इसीलिये फिर पेशगी माँगने और पहलेसे अच्छा सौदा पटानेकी ज़रूरत पड़ती है। जिस तरह जवानीमें वह बच्चोंके लिये खर्च भेजते थे, उसी तरह अब भी गृहस्थीकी ओर उनका बराबर ध्यान रहता है। पहली पुत्रवधूका देहान्त होनेपर रामकृष्णजीका उन्होंने दूसरा विवाह किया और इन सब कामोंमे काफ़ी रुपया खर्च किया। अब भी यथा-सम्भव वह उनकी सहायता करते हैं।



२

साहित्यकी पृष्ठभूमि

निरालाजी उन थोड़ेसे साहित्यिकोंमेंसे हैं जो अपनी जीविकाके लिये साहित्यपर ही निर्भर रहते हैं। परन्तु जो साहित्य वे लिखते हैं या लिख सकते हैं, उससे जीविका चल नहीं सकती या उतने बड़े पैमानेपर उसकी सृष्टि नहीं हो सकती। इसलिए अनुवाद वगैराके कामोंमें उन्हें बराबर अपनी शक्ति नष्ट करनी पड़ती है। नये लेखकके लिए अर्थकी समस्या ही एकमात्र समस्या नहीं है। साहित्यिक दुनियामें प्रवेश पाने के लिए भी उसे भगीरथ प्रयत्न करना पड़ता है। जो लोग पहलेसे जगह घेरे हुए हैं, वे नये आदमीको शककी निगाहसे देखते हैं--खास-तौरसे उस आदमीको जो उनका टाट उलटनेपर तुला हुआ हो। नये लेखकोंको यह जानकर शायद कुछ सन्तोष हो कि पत्रिकाओंके विद्वान् सम्पादक उन्हींकी रचनाएँ वापस नहीं करते, 'जुहीकी कली' भी वापस की गई थी। सन् '३५ तकमें एक प्रतिष्ठित पत्रिकाने श्री सुमित्रा नन्दन पन्तके ऊपर निरालाजीका एक बड़ा सुन्दर लेख वापस कर दिया था। वह लेख सदाके लिये नष्ट होगया। इसी तरह पं० महावीर प्रसाद द्विवेदीपर भी उनका एक संस्मरणात्मक लेख विनाशके गर्भमें विलीन होगया। न जाने कितने लेख और कितनी रचनाएँ प्रारम्भिक कालमें नष्ट हुई होंगी। संपादकों द्वारा वापस की हुई रचनाओंका जिक्र करते हुए उन्होंने लिखा है :

"लौटी रचना लेकर उदास,
ताकता हुआ मैं दिशाकाश,

बैठा प्रान्तर में दीर्घ प्रहर,
व्यतीत करता था गुन गुन कर,
सम्पादक के गुण; यथाभ्यास
धास की नोंचता हुआ घास,
अज्ञात फेंकता इधर-उधर
भाव की चढ़ी पूजाओं पर।"

ज्ञान मण्डल काशीमें काम दिलानेके लिये सन् '२१ में आचार्य द्विवेदीजीने कोशिश की थी। इसलिए निरालाजीके साहित्यिक जीवनका आरम्भ सन् '२० से मानना असंगत न होगा। सन्'१६ की 'सरस्वती' में बँगला और हिन्दी व्याकरणपर उनका एक तुलनात्मक लेख प्रकाशित हुआ था जिसका गद्य वैसा ही पुष्ट और मार्जित है जैसा 'मतवाला' कालका। इसमें सन्देह नहीं कि अनुकूल परिस्थिति होनेपर वे सन् '१६ '२० में ही प्रकाशमें आगये होते। परन्तु इसके लिये उन्हे चार साल तक राह देखनी पड़ी। सन् '२३ में 'मतवाला' निकला और उसमें अपने और दूसरे नामोंसे वह कविता, कहानी, लेख, आलोचना आदि सभी कुछ लिखने लगे। 'निराला' नामसे कविताएँ तो लिखते ही थे, श्रीमान् गरगज सिंह वर्मा 'साहित्य-शार्दूल' के नामसे 'चाबुक' लिखते रहे जिसके कुछ लेख इसी नामके संग्रहमें आचुके हैं। 'जनाब आली' के नामसे एक लम्बी कहानी लिखी थी, जिसकी बोलचालकी भाषा और यथार्थवादी वर्णन उनके बादके रेखाचित्रोंकी बानगी देते हैं। एक कहानी जिसका नाम 'क्या देखा' है 'सुकुलकी बीवी' नामके संग्रहमें आगई है।

'मतवाला' के बाद उनकी रचना जहाँ-तहाँ छपने लगीं। कवि सम्मेलनोंमें सभापतिके आसनकी शोभा बढ़ानेके योग्य भी वे समझे जाने लगे। 'सुधा', 'माधुरी' वगैरहसे उन्हे पारिश्रमिक मिलने लगा। फिर भी मौलिक पुस्तकें नहीं निकल रहीं थीं। कलकत्तेसे 'अनामिका' नामसे

उनका पहला कविता-संग्रह प्रकाशित हुआ, जिसमें 'मतवाला' कालकी कुछ ही रचनाएँ आई हैं। ठीक तरहसे उनका पहला कविता-संग्रह सन् '२६ में प्रकाशित हुआ। इस तरह सन् '१६से '२६ तक उन्हें पुस्तक-प्रकाशनके लिये कुल मिलाकर दस साल तक रुकना पड़ा। साहित्य-सेवाका कार्य अव्यवस्थित रूपसे होनेके कारण बहुत-सी रचनाएँ अधूरी रह जाती थी या सिर्फ़ विज्ञापनके प्रकाशमें एक बार चमक कर रह जाती थीं। 'चमेली' का कुछ भाग 'रूपाभ' में निकला था, लेकिन आठ सालके बाद वह अभी तक पूरा नहीं हुआ। 'निरुपमा' के दो अध्याय 'सुधा' में निकले थे, लेकिन वह पूरी हुई इलाहाबादमें 'सुधा' छोड़नेके कई साल बाद। एक उपन्यास 'उच्छृङ्खल' नामसे 'सुधा' में विज्ञापित हुआ था लेकिन उसकी कल्पना उनके मनमें ही रही। एक बार उनसे इतना ज़रूर सुना था कि इसका हीरो प्रचलित नायक-परम्पराके विपरीत बहुतसे कार्य करेगा, जैसे साधारण नायक नायिकाकी मुख छवि देखेगा तो उच्छृङ्खल का ध्यान हमेशा उसकी चोटीपर जायगा। इस विचारसे तो नहीं, लेकिन नामसे फ़ायदा उठाकर, श्री नरोत्तम प्रसाद नागरने इलाहाबादसे 'उच्छृङ्खल' नामका पत्र निकाला था।

किसी जमानेमें 'उषा' नाटिकाके लिये बड़ी-बड़ी तैयारियाँ की गई थीं। निरालाजी अनिरुद्ध बननेवाले थे और उषाके लिये श्री सुमित्रा नन्दन पन्तपर नजर थी। पन्तजीके पार्ट करनेमें सन्देह होनेके कारण बड़ी-बड़ी मूछोंवाले पढ़ीसजी भी उम्मीदवारोंमे थे। उषाके सफल अभिनयके लिये वे अपनी मूछोंका बलिदान करनेके लिये तैयार थे। कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह, श्री रामरतन भटनागर, हसरत, आदि लेखक सैनिक, द्वारपाल आदिके पार्टसे ही सन्तुष्ट थे। लेकिन इस उषा नाटिकाकी रूप-रेखा 'सुधा' के विज्ञापनके पीले पन्नोंमें ही रह गई।

उनकी साहित्य-साधनाके मुख्यतः तीन केन्द्र रहे हैं—कलकत्ता,

लखनऊ और गढ़ाकोला। अपने वातावरणके प्रति उनकी संज्ञा सदैव जाग्रत रहती है। वे उस कोटिके कवि नहीं हैं जो अपनेमें खोजाँय और वातावरणकी उनपर प्रतिक्रिया न हो। बंगालको वह अपनी जन्मभूमि समझते हैं। रोमांटिक कविता और बंगाल उनके लिये पर्यायवाची शब्द हैं। उनका कहना है—"बंगाल मेरी जन्मभूमि है, इसलिये मुझे बहुत प्रेम है। सिटी लाइफ़का जो उपयोग और आनन्द मुझे कलकत्तामें मिला, वह लखनऊ में नहीं। लेकिन लखनऊके चौदह सालमें मेरा साहित्य-सर्जन कलकत्ताके 'परिमल' से अधिक ही महत्व रखता है। पंडित दुलारेलाल भार्गवकी कृपासे लखनऊमें मुझे बहुत तरहकी सहूलियतें रहीं, लेकिन कलकत्ताका मुक्त, निष्कपट वातावरण लखनऊमें नहीं मिला। कुछ साहित्यिक मित्र.........लखनऊसे ही मुझे अपना प्रकाश दिखा सके।" बंगालकी नम जल-वायु, वहाँके नदी-तालाब, उन्हे बहुत पसंद हैं। प्रकृतिके अलावा, शिक्षा और अध्ययनकी दृष्टिसे भी कलकत्ते का वातावरण विचारोत्तेजक है। बँगला भाषा और साहित्यसे प्रेम होने पर भी हिन्दीपर आक्षेप होते, तो वे बंगाली विद्वानोंसे लोहा लेते। विद्या-सागर कालेजमें कविता और भाषण दोनोंसे ही उन्होंने अपनी भाषा और साहित्यकी प्रतिष्ठाकी रक्षा की। अपना अभ्युदय-काल सभीको सुनहरा लगता है। कलकत्तेमें निरालाजीने अपना प्रथम साहित्यिक उत्थान देखा; वहींपर यशके प्रकाशमें उनकी आँखे खुलीं। कलकत्ता जवानीकी उच्छृ-ङ्खलताओंकी क्रीड़ाभूमि रहा। द्वार खोलनेवाली अरुण-पंख तरुण किरणकी स्मृति वहींकी है। इसके विपरीत गढ़ाकोला और लखनऊ उनके संघर्षकी भूमि रहे हैं। लखनऊ और कलकत्ताकी तुलना करते हुए वे कहते हैं—

"स्वास्थ्य लखनऊमें बहुत अच्छा हुआ। परन्तु मैं स्वास्थ्य का दुर्बल कभी भी नहीं था। लखनऊका जो प्रभाव मुझपर पड़ा है,

वह मेरे साहित्यके लिए बहुत बुरा नहीं, पर बहुत अच्छा भी नहीं। क्योंकि मेरी पहलेकी भाषा देखनेपर आसानीसे समझमें आजायगा कि बैसवाड़ी—मेरे घरकी बोली ही—मुझपर गालिब थी। लखनऊके वातावरणसे बैसवाड़ेका वातावरण मुझे बहुत पसन्द है, कविताके लिए कलकत्तेका। लखनऊमें मुझे एक फ़ायदा हुआ। कलकत्तेकी मेरी चढ़ी आँख लखनऊमें झुक गई। मैं समतलपर आगया। यों एकान्त-प्रिय मैं कलकत्तामें भी था, लखनऊमें मुझे आपने देखा ही है।

"बंगालमें पैदा होनेके कारण प्रचुर जलाशयता मुझे बहुत पसन्द है। लखनऊमें इसकी कमी थी, अब भी नमी शहरमें बहुत है। मेरी बँगलाकी नफ़ासत लखनऊकी सीढ़ियोंसे उतरते-उतरते उतरली। मैं समझा, लखनऊकी भाषामें ही कहूँ, 'खार ज़ारे इश्कमें मुश्किल जो है मंजिलमें है।' जबतक मेरी आँख खुली है, मैं कलकत्ताको भूल नहीं सकता। और लखनऊकी श्रेष्ठता मेरी निगाहमें आधुनिक नहीं प्राचीन है।"

लखनऊमें उन्होंने कई बार अपना अध्ययन-क्रम चलानेकी सफल और असफल कोशिश की है। अँग्रेजी भाषा और साहित्यमें पहलेकी अपेक्षा उनकी गति बहुत अच्छी होगई है। यह बात सही है कि आवेश में भी वह अँग्रेजीमें बोलने लगते हैं जो सिर्फ खड़ी बोली जाननेवालों के लिए या अँग्रेजीका साधारण ज्ञान रखनेवालोंको बड़े असमंजसमें डाल देता है। करीब दस सालसे लगातार इस बातकी धमकी देनेपर कि वह अँग्रेजीमें भी लिखना शुरू कर देंगे, हिन्दी भाषियोंके सौभाग्यसे उनकी वह धमकी अभी तक अमलमें नहीं आयी। पढ़नेका तरीका भी उनका अपना है। एक पन्ना पढ़ेंगे तो उसके हाशिये अर्थसे रंग डालेंगे। 'बर्नार्ड शॉके 'गेटिंग् मैरिड' और शेलीके 'अलास्टर' का प्रत्येक पृष्ठ "रंग गई पग-पग धन्य धरा", का उदाहरण बना हुआ है। महिषादलके हाई

स्कूलमें प्राप्त किये हुये अंग्रेजी व्याकरणके अनुपम ज्ञानका उपयोग वह हर अँग्रेजीके अध्यापकपर करते हैं। शेक्सपियरकी सौनेटोंको लेकर वह गाफ़िल खिलाड़ीको पलक मारते चित कर देते हैं। जबसे कुछ बड़े-बड़े कॉंग्रेसी नेताओंसे मुलाक़ात की हैं, या उनसे विशेष सम्पर्क हो गया है, तबसे वह अँग्रेज़ी उच्चारणके पीछे पड़ गये हैं। डिक्शनरियोंमें भी एक ही नहीं, कईसे उनका घनिष्ट परिचय है। बहुत दिन तक वह इनसे तकिये का काम भी लेते रहे हैं। शायद उस भारसे व्यथित होकर उन डिक्श--नरियोंने अपना संचित कोश लुटाना शुरू कर दिया है।

लखनऊकी साहित्यिक कार्यवाहीमें उन्होंने ग्रामीण जीवनसे ही अधिक लाभ उठाया है। 'अप्सरा' में कलकत्तेकी कहानी है, लेकिन 'अलका' और 'निरुपमा' में तो लखनऊ और गढ़ाकोलाका अनुभव जुड़ा हुआ है। इसी तरह उनके रेखाचित्रों और कहानियोंमें अधिकांशका सम्बन्ध या तो जिला उन्नावके गाँवोंसे है या लखनऊसे। 'चतुरी चमार, कुल्ली भाट, 'बिल्लेसुर बकरिहा' और अपनी इधरकी रचनाओंमें निराला जी ग्रामीण जीवनके नये चित्रकारके रूपमें उपस्थित हुए हैं। किसी समय रवीन्द्रनाथकी कविता और स्वामी विवेकानन्दकी दर्शन सम्बन्धी रचनाओंने उनके रोमांटिक कविको जगाया था। सन् '३३ के आस--पास गोर्कीके अध्ययन और प्रगतिवादके नये आन्दोलनने उनके ग्रामीण जीवनके अनुभवको साहित्य सर्जनके लिए एक अमूल्य निधि बना दिया। यह अनुभव अधिकतर उन्होंने गढ़ाकोलामें रहकर प्राप्त किया था। उसी कच्चे मकानमें रहकर उन्होंने चतुरीके लड़केको हिन्दी पढ़ाई थी, उसीमें रहकर उन्होंने चार--पाँच साल तक भयानक रोगोंसे लोहा लिया था। यहींपर उन्होंने 'पल्लव' की विस्तृत आलोचना लिखी थी। गढ़ाकोला एक गढ़ बन गया जिसमें परास्त होने पर उन्हें शरण लेनी पड़ती थी। यह कहना कठिन है कि यदि निरालाजी

का समस्त जीवन महिषादल और कलकत्तेमें ही बीता होता तो आज उनका साहित्यिक रूप क्या होता। यदि वह 'परिमल' के रोमांसकी भूमि छोड़कर यथार्थ जीवनके ठोस धरातलपर आसके हैं तो इसका श्रेय उस टूटे-फूटे गढ़ाकोलाको ही है।

निरालाजीका सामाजिक जीवन शहरमें केन्द्रित नही है। उसकी शाखा-प्रशाखाएं दूर-दूर तक लखनऊ, उन्नाव और रायबरेलीमें फैली हुई हैं। समाजमें जिस रूढ़िवादसे उन्हें मोर्चा लेना पड़ा है, उसका हृदय भी यही गाँव है। शहरके व्यवसाइयों, छोटे-मोटे दूकानदारों, विद्यार्थियो, शिक्षकों आदिको वह इतनी अच्छी तरह नही जानते, जितनी अच्छी तरह वह छोटे-बड़े जमींदारों, पण्डा-पण्डितों, गङ्गापुत्रों, कचहरीके कीड़ो, खेतिहर किसानों और शूद्रोंको जानते हैं। शहरमें पैर न जमा सकनेके कारण वह गाँवमें अपनी रक्षा करनेके भावसे जा टिकते हैं, और गाँवके जीवनसे पैर जमाकर लड़नेके लिए नया उत्साह, अनुभव और नयी प्रेरणा पाते हैं।

उनकी इधरकी रचनाओंका सम्बन्ध इलाहाबादसे रहा है। काव्य में उनके नये प्रयोग यहीं हुए हैं। यहाँका साहित्यिक वायुमण्डल उनके अधिक अनुकूल नहीं रहा। यहाँपर उन्होने साहित्यमें एक नई दरबारी परम्पराके दर्शन किये जहाँ बीसवीं सदीके साहित्यिक नवाब अपने मुसाहबोंको इकठ्ठा करके उन्हें अपनी साहित्यिक अभिरुचिका परिचय दिया करते हैं। इन दरबारोंमें सताये हुए लेखक, लेखक बननेके उम्मीदवार, ठग प्रकाशक और उनके दलाल मान-सम्मानको भावना जूतोंके साथ बाहर उतारकर अन्नदाता नवाबोंके पाँव पलोटते हैं। ये साहित्य-प्रभु हिन्दीके सम्पूर्ण नवीन साहित्यिक विकासको अपनी हिस्टीरियाकी हँसीमें उड़ा देना चाहते हैं। समाजके नैतिक कर्णधार अश्लीलताके नाम मात्रसे मूर्छा खानेवाले साहित्यकार, नायिका-भेदकी शुद्ध साहित्यिक परम्पराके

उत्तराधिकारी ऐसे गहरे पैठते हैं कि रसराज कान-मुँह--नाकसे उनके प्राणों तक पहुँच जाता है। निरालाजीपर इस वातावरणका अच्छा प्रभाव नहीं पड़ा।

इसके सिवा युद्ध छिड़नेके बाद दिनपर दिन आर्थिक संकट बढ़ता ही गया। जीवनकी छोटी-मोटी समस्याएँ सुलझनेके बदले और जटिल होती गईं। इतने छोटे मकानमें जिसे दरबा कह सकते हैं, इसके पहले शायद ही कभी रहना पड़ा हो।-इसके साथ कवीमें भयानक बीमारी और उसके बाद भी स्वास्थ्यका न सुधरना उनकी साहित्यिक प्रगतिमें बाधक रहे हैं। पिछले दो-तीन वर्षोंमें उनपर और दूसरे छाया-वादी कवियोंपर भद्दे ढंगसे आक्षेप किये गये। यह सब होते हुए भी युद्ध काल और उसके बाद जितनी संख्यामें और जितनी अच्छी रचनाएँ वे कर सकें हैं, उतनी और उस कोटिकी रचनाएँ अन्य कवियोंमें दुर्लभ हैं। हो सकता है कि अपने समाज और साहित्यकी माँगको देखते हुए ये रचनाएँ काफी न हों।

एक आकर्षक व्यक्तित्व

इस युगके सभी साहित्य-प्रेमी जानते हैं कि निरालाका व्यक्तित्व उनके साहित्यसे कम रोचक और आकर्षक नही है। व्यक्तित्वकी सूक्ष्म तलवारकेलिए उन्हें म्यान भी ऐसा अच्छा मिला है कि बहुतसे लोग उसी को देखते रह जाते हैं। युक्त प्रान्तके निवासियोंमें वह असाधारण रूपसे लम्बे हैं। गोमतीके किनारे फुटबालका मैच खतम होनेपर भीड़में उन्हे ढूँढ़नेमें दिक्कत नहीं होती थी; उस विशाल मुण्ड-समुदायमें उनका सिर ऊपर उठा हुआ दिखाई देता था। कोई भी फ़ील्डके किसी भी कोने से देख सकता था कि कविवर मत्त-गयन्द-गतिसे इस प्रवाहमें बहते-ठेलते हुए बढ़ रहे हैं। दूसरे प्रान्तके लोगोंको देखते हुए भी वे यू० पी० की नाक रखनेके लिये काफ़ी हैं। बहुत कम पंजाबी और पठान उनके डीलडौलका मुकाबला कर सकते हैं। लखनऊके रायल सिनेमामें बैठे हुए एक पठानको यह यकीन दिलाना मुश्किल था कि वह आदमी इसी मुल्कका है और पश्तो नहीं बोल सकता।

लड़कपनमें उन्हे कुश्ती-कसरतका शौक था, इस बातको उनको जानने पहिचाननेवाले ही नहीं, उनके साहित्यसे थोड़ा-बहुत परिचय रखने वाले लोग भी जानते हैं। डलमऊमें दूध-बादाम पीकर उन सस्ते सतयुग के दिनोंमें भी उन्होंने दो सौ रुपयेका बिल सासुजीसे गवहींके नेगमें वसूल किया। महिषादल और गढ़ाकोलामें कलकतिया धोती और पम्प शूके बावजूद वह दंगलोंमें हिस्सा लेते रहे। हिन्दी छन्दोंकी अपेक्षा

उन्हे कुश्तीके दाँव कही ज्यादा याद हैं। धोबीपाटा, कलाजंग, सखी, बहल्ली, घिस्सा, कुली, वगैरह,वगैरह रियाज़के साथ बरजबान हैं। थियरी और प्रैक्टिकल दोनोंमें ही वह फर्स्ट क्लास पाचुके हैं। अगर कोई श्रद्धालु श्रोता मिल गया तो गामा और रवीन्द्रनाथकी कलापर घण्टोंतक उनकी तुलनात्मक विवेचना चला करती है। उनसे कुश्तीकी चर्चा करना खतरेसे खाली भी नहीं है। थियरीके साथ वह जब प्रैक्टिकल समझाने लगते हैं, तब विद्यार्थी सावधान न हुआ तो पक्के फ़र्शपर उसे ऐसी शिक्षा मिल सकती है कि वह उसे जिन्दगी भर याद रक्खे।

मैंने उन्हें कुश्ती लड़ते कभी नहीं देखा। सन् '३० '३१ में खोपड़ी घुटाये हुये सबदलबाग़से, जहाँ आजकल सुन्दर बाग़की भव्य इमारतें हैं, होकर लाल कुऐंकी तरफ कुश्ती लड़ने जाया करते थे। तब मेरा साहित्यसे बहुत थोड़ा सम्बन्ध था और साहित्यकारोंसे तो बिल्कुल ही नहीं। इसलिए मैंने तब यह न सोचा था कि इनके साथ जाकर कुश्ती देखना आगे काम देगा। उनसे मेरी पहली मुलाकात सन् '३४ में हुई। श्रीराम रोडपर मेरे नामाराशी श्री रामविलास पाण्डेयकी पुस्तकोंकी दूकान थी। लखनऊके साहित्यिकोंका यह अड्डा भी था। निरालाजी अक्सर यहाँ तमाखू खाने आया करते थे। मेरे पास 'परिमल' नहीं था, यद्यपि कवितायें पढ़ चुका था। उन्होंने मेरे हाथसे पुस्तक लेकर पन्ने पलटते हुए कहा—"शायद ये बादकी रचनाएँ आपको पसन्द न हों।" उनका लक्ष्य मुक्त छन्दकी रचनाओंकी ओर था। मैंने कहा—"इन्हींकी वजहसे तो मैं किताब खरीद रहा हूँ। वैसे तो कविताएँ पढ़ चुका हूँ।" फिर उन्होंने अपने उपन्यासोंके बारेमें पूछा। मैंने कहा—"मैंने उन्हे पढ़ा है लेकिन पढ़कर खुशी नहीं हुई। ऐसा लगता है, कोई नौसिखिया लेखक अपने व्यक्तिगत अनुभव लिख रहा है।" मैंने सिर्फ 'अप्सरा' उपन्यास पढ़ा था, उसीके आधारपर यह राय दी थी। बात उनको उतनी

ही बुरी लगी जितनी मुक्त छन्दके बारेमें मेरी राय अच्छी लगी होगी। फिर भी उन्होंने ज़ाहिर नहीं होने दिया। तमाखूकी पीक थूकनेके बहाने अपना भाव छिपा लिया। मुझसे वादा किया कि अपने सब उपन्यास खरीद कर मुझे पढ़नेको देंगे। वैसा ही उन्होंने किया भी। प्रकाशकसे मिलनेवाली सभी प्रतियाँ मित्रोंको भेंट हो चुकी थीं। मैं सोचता था, इनके बराबर किताबें लिखनेपर कोई भी आदमी उन्हें अलमारीमें सजाकर अपने बड़प्पनके खयालसे खुश होता। उनका घर हिन्दी, बङ्गलाकी किताबों और अखबारोंसे भले ही भरापूरा हो, उसमें उनकी अपनी किताबें नहीं थीं। वे अपनी पुस्तकें इतनी उदारतासे बाँटते हैं कि घरमें कोई प्रति रह नहीं सकती। जब मैं उनके साथ रहता था, वे मुझे भेंट की हुई पुस्तकें भी दूसरोंको भेंट कर दिया करते थे। कभी-कभी मेरे लिए नई प्रतियाँ खरीद लाते थे, कभी भूल जाते थे। वैसे उन्हें अपनी पुस्तकोंकी संख्या ही नहीं, पृष्ठ संख्या तकका ध्यान रहता है। गुणात्मक सृजनसे ही सन्तोष नहीं होता, वे उसके परिमाणका भी ध्यान रखते हैं।

'अप्सरा' को मैंने फिर पढ़ा। उन्होंने पुस्तक मुझे भेंट की थी, इसका मुझपर काफ़ी असर था, फिर भी अपनी राय देनेमें मुरौवत करना तब भी न सीखा था। दो लम्बे कागजोंपर मैंने संक्षेपमें अपनी आलोचना लिखी। सुननेपर कई बातें उन्होंने स्वीकार कीं, कईका प्रतिवाद किया। आगे चलकर उनकी प्रकृतिका जो परिचय मिला, उसे देखते हुए उनके अत्यन्त धीर और शिष्ट व्यवहारपर आश्चर्य होता है। उन दिनों 'देशदूत' के वर्तमान सम्पादक श्री ज्योति प्रसाद मिश्र 'निर्मल' 'अभ्युदय' में निरालाजीकी कविता और उनके व्यक्तित्व पर बड़े भद्दे ढंगसे आक्षेप कर रहे थे। वे सब लेख मैंने पढ़े और हिंदी के वादविवादकी परम्परासे परिचय प्राप्त किया। उन दिनों ऐसा मालूम होता था कि कहीं 'निर्मलजी' लखनऊ आगये तो बीच अमीनाबादमें वह

दंगल देखनेको मिलेगा कि श्रद्धा और सादिक सभी की कुश्तियाँ हेच मालूम होंगी। किसीके ज़रिये इलाहाबाद यह सन्देश भी पहुँचाया कि उस शुभ घड़ीके लिये उन्होंने चमरौधा भिगोकर रख छोड़ा है। 'निर्मल' जीने अपने लेखमें इस सूचनाको स्वीकार किया और इस बातपर हर्ष प्रकट किया कि नंगे पाँव चलनेके बाद कविवरको चमरौधा तो नसीब हुआ। कुछ दिन बाद निर्मलजी लखनऊ पधारे। कालेजसे लौटनेपर देखा कि केला और सन्तरोंसे उनका सत्कार किया जा रहा है।

उन दिनों निरालाजीका स्वास्थ्य काफ़ी अच्छा था। पैरमें सायटिका की शिकायत करनेपर भी काफ़ी घूम लेते थे। इस तरह घूमते हुए या पार्कमें बैठकर वह सैकड़ों ही कविताएँ सुना डालते थे। रवीन्द्रनाथकी कविताएँ तो उन्हे ढेरों याद थी। छोटी कविताएँ ही नहीं 'सूरदासेर प्रार्थना' जैसी रचनाएँ सुनाते हुए भी शायद ही कहीं एकाध कड़ी भूलते हों। पुस्तकसे कविता पढ़ते हुए वह पूर्ण तल्लीन हो जाते थे, भाव-पूर्ण स्थलोंपर उन्हें कण्ठावरोध होआता था और सारा शरीर पत्ते-जैसा काँप उठता था।

अवधके किसान कहा करते हैं कि खोदनेसे पानी निकलता है और घोखनेसे विद्या आती है। निरालाजी अंग्रेजी ही नही, संस्कृत, बँगला, हिन्दी और उर्दूकी जिन रचनाओंको घोखना शुरू करते हैं, उनसे पानी निकाल कर ही छोड़ते हैं। 'कुमारसम्भव' पढ़ते थे तो श्लोकोंको कापीमें उतार लेते थे। कोई भी संस्कृत जाननेवाला मित्र या साहित्य-प्रेमी मिलता तो उन्हींकी चर्चा करते। इसी तरह 'मेघदूत' का भी उन्होंने अध्ययन किया था। आगे चलकर उर्दू ग़ज़लोंकी भी उन्होंने यही गति की।

साहित्यके साथ उन्हे संगीतसे भी प्रेम है। कुछ पक्के गाने उन्होंने लड़कपनमें सीखे थे जो अभी तक उनके साथ हैं। 'गीतिका' की भूमिका में उन्होंने प्राचीन संगीत पद्धतिका तीव्र विरोध किया है परन्तु कुछ अपने

ही गीत जैसे "नयनोंके डोरे लाल गुलाल भरे खेली होली" वह पुरानी तर्जपर ही गाते हैं। उनका विशेष विरोध भातखण्डे पद्धतिसे है। श्रीराम कृष्ण त्रिपाठीकी शिक्षा इसी पद्धतिके अनुसार मैरिस म्यूजिक कालेजमें हुई है। उनको भर्ती हुए दो ही साल हुए थे, कि गुरुभक्ति अधिक उद्दण्ड हो उठी थी। अक्सर इस बातपर बहस होती कि चण्डीदास फ़िल्मके गाने अच्छे हैं या इनके स्कूलमें सिखाई जानेवाली बन्दिशें। निरालाजी कहते—'तजके सब संसार' के लोचकी ज़रा नकल करके तो दिखाओ। रामकृष्णजी नकल तो कर लेते लेकिन लोच न आ पाता। विजयी पिताकी हँसीसे खीझकर वह चुनौती देते—ज़रा कोमल निषाद या कड़ी मध्यम तो लगाकर दिखाइये। लेकिन कवि इस झाँसेमें कभी न आते।

महादेव बाबूसे उन्होंने उर्दूकी काफी गजलें सुनी थीं। तभीसे उन्हें ग़ज़लें गानेका भी शौक है। बंगालमें रहकर बँगला गीत गाना भी उनके लिये स्वाभाविक था। टैगोरकी 'जामिनी ना जेते', 'सकल गरब दूरि करि दिबो', 'अहा जागि पोहाल विभावरी,' आदि गीत उन्हे बहुत प्रिय हैं। यह तो नहीं कहा जा सकता कि उनकी अदायगी टैगोर स्कूलकी है, परंतु अपने ढंगसे वे उन्हें गाते हैं और वह बहुत सुन्दर ढंग होता है। यह संगीत चर्चा तब होती है जब उनके हाथमें हारमोनियम आजाता है। कभी कभी वह गाते-गाते इतने तन्मय होजाते हैं कि उँगलियाँ द्रुत वेगसे ही नहीं चलाते बल्कि उनका प्रहार इतना सबल होजाता है मानो वह तबले के बोल भी हारमोनियमसे ही निकालकर मानेंगे। उस समय उन्हे यह ध्यान नही रहता कि इस क्रियासे हार्मोनियमकी क्या दशा होगी। इससे भी ज्यादा मग्न वह ताल देनेमें होते हैं। छन्द-शास्त्रमें नित्य नये प्रयोग करनेवाले कविको तालसे भी दिलचस्पी हो, इसमें आश्चर्य ही क्या। वह भावावेशमें उठ-उठ बैठते हैं और सम आनेपर गायकके इतने नज़दीक हाथ लेजाकर चुटकी बजाते हैं कि अपरिचित हो तो बेचारा गाना ही भूल

जाय। मुख-मुद्रा ऐसी होजाती है कि श्रोताओंको धैर्य धारण करना कठिन होजाता है। मेरे धैर्यकी सबसे कठिन परीक्षा उस बार हुई जब श्री भगवती चरण वर्मा 'हम दीवानोंकी क्या हस्ती' सुना रहे थे। निरालाजी भी एकदम मस्त होकर पैरको ढोलक बनाकर ताल देरहे थे। पहले-पहल वर्माजीके मुँहसे कविता सुननेका सौभाग्य मिला था। मैंने कमरेसे बाहर निकल जानेमें ही खैर समझी।

निरालाजीके गानेकी एक विशेषता यह है कि उसमें शब्दोंके स्वर-सौन्दर्यको पूर्ण प्रसार मिलता है। विशेष रूपसे उनके अपने नये गीतोंमें इस तरहका स्वर-सौन्दर्य प्रचुर मात्रामें हैं। भातखण्डे स्कूलके गायक उनके गीतोंको स्वरबद्ध करते हुए बहुधा इस सौन्दर्यकी रक्षा नहीं कर पाते। उनके गीतोंमें ऐसा स्वाभाविक स्वर-प्रवाह है कि वह रूढ़िवादी गायकके बन्धन स्वीकार नहीं करता।

गानेकी अपेक्षा लिखनेमें उनकी तल्लीनता और भी बढ़ जाती है। वह जो कुछ लिखते हैं, बड़े ही मानसिक और शारीरिक परिश्रमके साथ, भावोंके समान अक्षरोंको भी सँवारते हुए। किसीको पोस्टकार्ड लिखना होता है तो भावोंको शब्द-रूप देते-देते तीन-चार कार्ड बिगाड़ देना कोई असाधारण बात नहीं है। कविता लिखनेका परिश्रम उनके मुँहपर साफ़ झलक उठता है। नारियलवाली गलीमें 'तुलसीदास' लिखते हुए मैंने उन्हे देखा है। आठ-नौ बजे तक ह्वीवैट रोडके पैरागौन रैस्टराँसे चाय पीकर वह लौट आते थे। नीचेके कमरेमें तीन-चार घण्टों तक वह 'मोगल दल बलके जलदयान' से युद्ध किया करते थे। बारह-एक बजे अपने प्रयासके फलस्वरूप एक दो पन्ने लिये हुए जब ऊपर आते थे, तब मालूम होता था, कोई मजदूर छः घंटे भट्ठीके पास तपकर बाहर आया है। उनके चेहरेपर एक खिंचाव-सा होता था और आँखोंमें थकानके साथ सन्तोषकी झलक भी। साहित्य-रचना उनके लिये सचमुच एक

तपस्या है और नरेन्द्र शर्माकी ये पंक्तियाँ उनपर भी लागू होती हैं—

'वह हिन्दी का लेखक था
खून सुखाकर लिखता था।'

उनपर दुरूहताका दोष लगाया जाता है, लेकिन इसका कारण जल्दबाज़ी नहीं है। खाना पकाने, सोने और लिखनेमें वह कभी जल्दी नहीं करते। रचनाको अलंकृत करनेकी चाह और व्यंजनामें वक्रता लानेकी उत्कंठा कभी कभी उन्हें दुरूह बना देती है। पद्य ही नहीं गद्यकी भी पाण्डुलिपि तैयार करनेमें वह ढेरके ढेर पन्ने खराब कर डालते हैं। गंगा पुस्तक-मालासे काम छोड़कर जब वह इलाहाबाद जारहे थे, तब लिखे अधलिखे पूरे अधूरे तिहाई चौथाई सैकड़ों पन्ने उनके कमरेमें बिखरे हुए थे। इस शंकासे कि इन पन्नोंका उपयोग उनकी कलाका प्राथमिक अपरिपक्व रूप दिखानेके लिये न किया जाय, उन्होंने उन सबको नष्ट कर दिया।

रोमांटिक कवि अपनी एकान्त-प्रियताके लिये प्रसिद्ध है। निरालाजी स्वय अकेले घूमने और चिन्तनमें डूबे रहनेके काफ़ी आदी हैं। फिर भी संगत, सभा समाजसे जितना प्रेम उन्हें है उतना शायद ही किसी दूसरे कविको हो। अधिकतर शहरमें मकान लेकर वह अकेले रहते रहे हैं, लेकिन चाय पीने और साहित्य-चर्चा करनेके लिये वह दूर-दूरसे मित्रोंको पकड़ लाते थे।

पाक-शास्त्रमें वह अपनेको साहित्य शास्त्रके समान ही आचार्य मानते हैं। दस-पाँच मित्रोंको इकट्ठा करके खिलानेमें उन्हे उतना ही आनन्द आता है जितना उन्हें कविता सुनानेमें। ऐसा भी होता है कि भूनते हुए खाद्य पदार्थ जल गया तो सोंधा कहकर उसे गले लगाते हैं। भोजन बहुत अच्छा बननेपर मित्रगण तारीफ करते हुए इतना उड़ा जाते हैं कि कविके पल्ले यों ही कुछ थोड़ा-सा पड़ पाता है।

आम और खरबूज़ोंकी उन्हे खास पहचान है। सफ़ेदेकी ढेरीके आसपास वह ऐसे मँडराते हैं जैसे कमलपर भौंरा,—खास तौरसे तब जब गाँठमें पैसे कम हों। एक बार अमीनाबादमें मलिककी दूकानके सामने एक ढेरीवालेको दिखाकर कहा, 'इससे जाकर पूछो कि इतने में न देगा।' मैंने पूछा—'आप क्यों नहीं जाते?' उन्होंने जवाब दिया—"मैं उससे कई बार कह चुका हूँ और अब तक वह मुझे पहचान गया है।" वह ढेरी हम लोगोंको वदी न थी।

निरालाजीके लिए यह जरूरी नहीं है कि मिलने-बोलनेके लिए बड़े साहित्यकार ही हों। स्कूल कालेज जानेवाले लड़कोंसे भी वह बड़े स्नेहसे मिलते हैं। वास्तवमें वह बड़े-छोटेका ख्याल बहुत कम करते हैं। गाँव के किसानों और चमारोंसे वह बड़े अपनपौसे मिलते हैं। संस्कृतके पुराने पण्डित उन्हें अपने घरका ही समझते हैं जब तक कि अभ्यास-वश वह कभी-कभी अंग्रेजी नहीं बोल जाते। साहित्यसे अनभिज्ञ लोगों से मिलते हुए वह बहुधा इस बातका ध्यान रखते हैं कि वह उनके स्तर से ऊँचे न उठ जाँय। उनके हर काममें वह बड़े उत्साहसे शामिल होते हैं। एकबार के० सी० डे० लेन, सुन्दरबाग़, लखनऊमें, मछलियों में मगरमच्छकी तरह, छोटे लड़कोंमें कबड्डी भी खेले थे।

कविता पाठ और भाषणमें भी कुछ विशेषताएँ ध्यान देने योग्य हैं। दुरूहता, अस्पष्टता आदिके आक्षेप होनेपर भी वह अपनी कविता लेकर जनताके सामने आनेकी ताब रखते हैं। मुक्त छन्दका विरोध होनेपर न जाने कितनी सभाओंमें उसे सुनाकर उन्होंने विरोध शान्त किया। मुक्त छन्दकी रचनाओंकी नाटकीयता, स्वरका उत्थान-पतन और उसके सहज प्रवाह द्वारा भाव-प्रदर्शन करना उनके पाठकी विशेषताएँ हैं। चाहे 'जुहीकी कली' के समान सौन्दर्य-प्रधान रचना हो, चाहे 'समरमें अमर कर प्राण' जैसी वीर रस पूर्ण कविता हो, वह अपने

उदार और मन्द स्वरोंसे भाव सौन्दर्यको समान रूपसे प्रगट कर सकते हैं। गायनके समान कविता पाठमें भी उनकी सफलताका कारण स्वर का सहज रूपमें पूर्ण प्रसार है।

" समर में अमर कर प्राण
गान गाये महा सिन्धु से "

इन पंक्तियोंको पढ़ते हुए 'प्राण' और 'गान' के आवर्तको वे स्वरको खींच कर प्रकट करते हैं। उनकी कविता अनुप्रास और शब्द-सौन्दर्यसे पूर्ण होती है। उसका आनन्द पढ़नेपर ही आता है, मनमें गुनगुनाने से अशरीरी भाव-सौन्दर्य ही पल्ले पड़ता है। जब वह मञ्चपर "कम्पित जंगम नीड़ विहंगम से न व्यथा पाने वाले" कहते हुए बादलको सम्बोधित करते हैं तो उनका स्वर ही क्रान्तिका भाव-चित्र बन जाता है।

छन्द-बद्ध रचनाओंमें भी स्वर-प्रवाहमें यथेष्ट वैचित्र्य रहता है। वह तुकान्त छन्दोंकी पंक्तियोंकी सीमा लाँघते हुए भाषाकी स्वाभाविक यति-गतिके अनुसार पढ़ते हैं। उदाहरणके लिए 'सरोज स्मृति' का पाठ करते हुए जहाँ विराम लगा होता है, वहीं रुकते हैं, चाहे विराम पंक्तिके बीचमें हो चाहे अन्तमें। 'रामकी शक्ति पूजा'—जैसी रचनामें दीर्घ पँक्तियाँ लहरोंकी तरह पछाड़ खाती हुई गिरती हैं। उनचास पवनों का चलना, समुद्रकी लहरोंका आकाश छूना, अन्धकारका जलकी तरह बहना, रावणका अट्टहास, राक्षसों और वानरोंके पद-चापसे पृथ्वीका हिलना, आदि आदि क्रियाएँ पाठ द्वारा अच्छी तरह व्यक्त होती हैं। 'रामकी शक्ति पूजा' उनकी सबसे ओजपूर्ण रचना है, और वैसे ही पूर्ण तल्लीनतासे वह उसे सुनाते भी हैं। मञ्चपर खड़े हुए ऊँचा हाथ उठाकर "चमकती दूर हों ताराएँ ज्यों कहीं पार" का भाव वही प्रदर्शित कर सकते हैं। वैसे ही 'हो श्वसित पवन उच्छ्वास पिता पक्षसे तुमुल' का भाव दर्शाते हुए उनके केश-गुच्छ झटका खाती हुई गर्दनके आसपास

असाधारण रूपसे चञ्चल हो उठते हैं। 'तुलसीदास' में दो छोटी पंक्तियों के बाद एक दीर्घ पंक्ति आती है और इस तरहके दो टुकड़ोंसे एक बन्द बनता है। इसके प्रवाहमें अधिक समरसता है, मानों बाज पक्षी धीर गतिसे बादलोंके ऊपर उड़ान भरता हुआ मीलों तक यों ही उड़ता चला जाय और उसके पङ्ख थके नहीं। 'बादल राग' वाली कविताओं में विप्लव सम्बन्धी उनकी प्रसिद्ध रचनामें ओज और करुणाका विचित्र सम्मिश्रण है। उसमें बादलका गर्जन और चातककी पुकार दोनों हैं। "तुझे बुलाता कृषक अधीर" कहते हुए उनका स्वर व्यथित हो उठता है और "ऐ जीवनके पारावार" में भविष्यके प्रति उनका संयत आत्म-विश्वास प्रकट होता है। इसी तरह ग़जलोंमें दर्द और 'कुकुरमुत्ता' जैसी रचनाओंमें वस्तुओंका वर्णन करते हुए शब्द संगठन बड़ा प्रभावोत्पादक होता है। उनपर 'बादल राग' की ये पंक्तियाँ अच्छी तरह लागू होती हैं—

"मुक्त ! तुम्हारे मुक्त कण्ठमें
स्वरारोह अवरोह विधान,
मधुर मन्द्र, उठ पुनः पुनः ध्वनि
छा लेती है गगन, श्याम कानन
सुरभित उद्यान"

कविता-पाठकी स्वाभाविकता उनकी बातचीतमें भी होती है। वे अपनी धारा-प्रवाह बैसवाड़ीके लिये प्रसिद्ध हैं। यद्यपि वे बंगालको अपनी मातृभूमि कहते हैं, परन्तु जो भाषा जाने-अनजाने उनके मुखसे निकल पड़ती है वह बैसवाड़ी है। यही एक भाषा है जिसे वह चौबीस घण्टोंमें सबसे ज्यादा बोलते हैं और जिसके आधारपर उन्होंने अपने सबसे अकृत्रिम गद्यकी रचना की है। महिषादलमें भी उनके घरकी बोली अवधी ही थी। यह कहा जाता है कि अपनी प्रारम्भिक छायावादी रचनाओंमें

निरालाजी बँगलाकी भूमिपर हैं और अपने सरल पुष्ट गद्यमें अवधीकी भूमिपर।

उनकी-बातचीतको ज्यों-की-त्यों उद्धृत करना अत्यन्त कठिन है। गोर्कीने तॉल्स्तायके बारेमें लिखा था कि उनकी बातचीतमें कभी कभी ऐसी ग्रामीणता आजाती है जो शिष्ट नागरिक व्यवहारके प्रतिकूल है लेकिन जो तॉल्स्तायकी बातचीतमें बिल्कुल नहीं अखरती। यही बात निरालाजीके लिये भी कही जा सकती है। किसी गम्भीर वाद-विवादमें वह अचानक इस ग्रामीणताका पुट दे सकते हैं और तब उनका तर्क अकाट्य होजाता है।

उनकी तर्क-प्रणालीमें हमेशा तर्क ही की प्रधानता नहीं होती। एक बार कालिदास और रवीन्द्रनाथकी तुलना करते हुए वह कालि-दासके दोष दिखाने लगे। शकुन्तला नाटकसे उस स्थलका हवाला दिया जहाँ पहली मुलाकातके बाद शकुन्तला दुष्यन्तसे विदा होती है। कालिदासने उपमा दी है, यष्टिके समान उसका शरीर तो आगे बढ़ता था परन्तु पताकाके समान उसका मन पीछेकी ओर उड़रहा था। निराला जीने कालिदासके अज्ञानकी चर्चा करते हुए कहा कि यष्टि आगे चलेगी तो पताका उसके आगे कैसे उड़ेगी? यह तो अत्यन्त अस्वाभाविक क्रिया है। लगभग आध घण्टेकी बहसके बाद वह यह माननेके लिये तैयार हुए कि कालिदासके श्लोकमें पताका पीछेको भी उड़ सकती है लेकिन इस शर्त पर—"तुम्हारा मतलब सही हो सकता है लेकिन हम जो कह रहे हैं वह भी बिल्कुल ग़लत नहीं है।"

एकाध बार उनके बंगाली मित्रोंसे भी उनकी बहस सुनी है। उस समय हिन्दीके समर्थनमें उनकी दलीलें सुनकर यह नहीं मालूम होता कि वह बँगलाको कभी अपनी मातृभाषा भी कहते होंगे। उनके तर्कके चक्र पर बड़े-बड़े लेखक धुनी हुई रूईकी तरह इधर--उधर उड़ते हुए दिखाई

देते हैं। इसी तरह कभी हिन्दीपर कोप होता है तो सुननेवालेको ऐसा लगता है कि हिन्दी-भाषी होनेसे बढ़कर और कोई दूसरी लज्जाकी बात नही हो सकती। इस तरहके एकांगीपनके बावजूद यह कहा जा सकता है कि बँगला साहित्यसे उन्हे स्थायी प्रेम है और हिन्दीकी गौरवपूर्ण परम्पराकी रक्षा करते हुए वे सदा इस बातके लिये प्रयत्नशील रहते हैं कि हिन्दी और हिन्दी-भाषी जनताकी उत्तरोत्तर उन्नति हो। नये लेखकों को वह बराबर प्रोत्साहन देते हैं। मील दो मील चलकर उनकी रचनाएँ सुनना और उनका मन बढ़ाना उनके लिये अपनी प्रतिष्ठाके प्रतिकूल नहीं होता। उनके सम्पर्कमें आनेवाला शायद ही कोई युवक साहित्यिक होगा जिसने उनसे प्रेरणा और उत्साह न पाया हो। मेरी पीढ़ीके कई ऐसे लेखक हैं जिन्होंने उनसे हिन्दी लिखना सीखा है। हिन्दीके बहुतसे अशुद्ध प्रयोगोंका ज्ञान मुझे पहले पहल उन्हींसे हुआ। बँगला साहित्यकी विशेष जानकारी भी उन्हींके सम्पर्कसे हुई। एक जगह उन्होंने अपनेको विलासका कवि कहा है और इसमें सन्देह नहीं कि ऐश्वर्य और विलास के प्रति उनका प्रबल आकर्षण है। वह हर चीज़ ग्रैन्ड स्टाइलमें करना चाहते हैं। मालिश हो तो रूहसे, दूध-बादाम पिया जाय तो महीनेमें दो सौ रुपयेका और फटे हाल रहा जाय तो वह भी 'रोटी' फिल्मके अभिनेताओंकी तरह एक आनबानके साथ। चादरपर दवात लुढ़क गई है लेकिन आप तहमत लगाये अमीनाबादमें घूमते चले जारहे हैं। बाल रखाते हैं तो कन्धोंको छूते हुए और बनवाते हैं तो छुरेसे मुड़ा कर ही दम लेते हैं। अलबत्ता उन्हे इस बातका बड़ा ध्यान रहता है कि सभा-समाज में जाँय तो कोई उनके वेशकी ओर उँगली न उठाये। शायद वे समझते हैं कि जब तक वे सभा-समाजमें नहीं जाते, तबतक उन्हे ज़्यादा लोग नही देखते। भीड़भाड़ वाले शहरमें भी उन्हे प्राइवेसी मालूम होती है। उन्हे यह ध्यान नही रहता कि उनका रूप, आकार और वेशभूषा हर हालतमें देखने वालोंका ध्यान आकर्षित करती है। कुछ दिनसे उन्होंने

तहमतको तिलाञ्जलि देकर या उसीको बीचसे मोड़कर घुटनों तककी लुंगी अपनायी है।

जब सभा समाजमें जाते हैं, विशेष रूपसे जब उन्हें कवि सम्मेलनका सभापतित्व करना होता है, तब वह अपने नखशिखका बड़ा ध्यान रखते हैं। दस साल पहले वह ऐसा अवसर आनेपर धोबीको अर्जेंट कपड़े दिया करते थे, लेकिन अब उनकी भूषा इस योग्य नहीं होती कि अर्जेंट धुलाई के बाद वह उनका साथ दे सके। अब धोबीके बदले उन्हें बजाज़ और दर्जीकी शरण जाना पड़ता है। एक श्रद्धालु मित्रने उन्हें अपने यहाँ कवि सम्मेलनका निमन्त्रण देते हुए अनेक बार अपनी श्रद्धाका उल्लेख करते हुए उनसे निराश न करनेकी प्रार्थना की और पहुँचनेपर उनकी सेवामें पत्रम् पुष्पम् भेंट करनेका वचन दिया। पत्र दिखाते हुए निरालाजी ने कहा, "इनकी श्रद्धाको लेकर चाटें? बिना ऐडवांसके कपड़े कैसे बनेंगे?"

नारियलवाली गलीका मकान जब कभी झाड़ा बुहारा जाता था तो मुझे तुरन्त सन्देह होता था कि आज कहीं कवि सम्मेलन होने वाला है। फर्शपर बिखरी हुई किताबें अलमारियोंमें पहुँच जाती थीं। ढेरों अखबार जो पतझड़के पत्तोंकी तरह फैले होते थे, किसी कोनेमें या अलमारीके ऊपर तरतीबसे रख दिये जाते थे। दरवाज़ेके पास तमाखूकी पीकके दाग धुँधले पड़ जाते थे। उस दिन कविवर सन्दल सोपसे स्नान करते। यत्नसे बनवाये हुए दाढ़ी और गाल सन्दलके स्पर्शसे चमक उठते। विधिपूर्वक तैयार किया हुआ भोजन पाकर गद्देके अभावमें फ़र्शपर रज़ाई बिछाकर गहरी निद्रामें निमग्न होजाते। चार पाँच बजे अर्जेण्ट धुलाये कपड़े निकालकर कान्तिमान शरीरकी शोभा बढ़ाते। अतरकी शीशी बालोंमें लुढ़का लेते यद्यपि इस क्रियासे एक बार उन्हें छींकें आने लगी थीं और माथेमें दर्द भी होने लगा था। इस सब तैयारीके

बाद वे कविताके ध्यानमें खोजाते। मानी बात है कि मंचपर उनका रंग खूब जमता।

फिर भी जिस बेखुदीमें वह घरपर या किसी मित्रके यहाँ कविता सुनाने या गाने लगते हैं, वह रंग कुछ दूसरा ही होता है। एक दिन भोजनके बादकी नींदसे उठकर वह "नयनोंके डोरे लाल गुलाल भरे खेली होली" गाने लगे। मैं ऊपरके कमरेमे सो रहा था या तन्द्रामें था। स्वर सुनकर उठ बैठा और बिना उनके जाने हुए नज़दीक आकर गीत सुनने लगा। वह इतने बेसुध होकर गारहे थे कि बिना रियाज़के भी उनके स्वर छन्दके शब्दोंकी तरह सच्चे लग रहे थे। उनकी मुरकी और कन देखकर मैं यह समझा कि कोई पुरानी चीज़ गारहे हैं। गीत समाप्त होनेपर मैंने प्रशंसाके स्वरमें पूछा—"आप किसकी होली गारहे थे?" एक क्षण तक वे बिना उत्तर दिये हुए मेरी तरफ देखते रहे मानो मुझसे कोई भारी अपराध हुआ हो। फिर स्वरको यथेष्ट मुलायम करके बोले —"हमारी है, और किसकी होगी?" इसी तरह एक बार कवि श्री शिवमंगल सिंह 'सुमन' के यहाँ उन्होंने बंगलाके गीत गाये थे। डाइनिंग रूममें भोजन करके 'सुमन' के छोटे बच्चे अरुणसे खेलते हुए "अहा जागि पोहाल विभावरी' आदि अपने प्रिय बंगलाके गीत गाने लगे। स्वरको बढ़ानेकी ज़रूरत न थी क्योंकि श्रोता तीन-चार ही थे। जब वह धीमी आवाज़में गाते हैं, तब स्वरपर नियंत्रण खूब रहता है।

अकेले रहनेके कारण बीमारीमें तीमारदार भी कोई नहीं रहता और वह ग़ालिबकी पंक्तियाँ गुनगुनाते ही नहीं, उन्हें जीवनमें चरितार्थ भी करते हैं। एकबार लखनऊमें देखा कि अन्धाधुन्ध बुखार चढ़ा है, घरमें कोई पानी देनेवाला भी नहीं है। मैंने कहा–'दवा लादूँ और यहाँ रहकर आपकी देखभाल करता रहूँ।' उन्होंने ऐसे ढंगसे सिर हिलाया कि ज्यादा

इसरार करना नामुमकिन होगया। गढ़ाकोलामें वे भयानक रूपसे बीमार पड़े थे और मगड़ायंरके लोग बताते हैं कि उस समय भी वह अपने तीमारदार खुद ही थे। उससे भी खराब बीमारी उन्होंने कर्वीमें पाई जब सत्तर पौण्ड वज़न कम होगया था। मैंने उन्हें निरोग होनेपर इलाहाबादमें देखा था। खोपड़ी घुटाये हुए धुंधली रोशनीमें वह एक कुल्हड़में रबड़ी खा रहे थे। मैंने उन्हें दरवाजेसे देखा लेकिन पहचान नहीं पाया और एक आदमीसे पूछने लगा—'निरालाजीका कमरा कौनसा है?' तब तक उन्होंने आवाज देकर भीतर बुलाया। उनका शरीर कृश होगया था, आँखें भीतरको धँस गई थीं और कमर कुछ झुकी हुई-सी मालूम पड़ती थी। तबसे अब तक उन्होंने बहुत कुछ स्वास्थ्य लाभ कर लिया है, फिर भी सन् '३४ की हालत तक फिर भी नहीं पहुँच पाये।

निरालाजीके व्यक्तित्वमें निर्भीकता और उद्दण्डता कूट-कूट कर भरी है। श्मशान और नगरमें वह पूर्ण स्वच्छन्दतासे विचरते हैं। डलमऊमें अवधूत टीला उनका ठीहा है। महिषादलमें भी वह मसानमें घूमने जाया करते थे। 'जुहीकी कली' का सुहाग उन्होंने यहीपर देखा था। बरसातकी अँधेरी रातमें खेतों और मैदानोंको पार करतेहुए उन्हें जरा भी भय नहीं होता। उनकी निर्भीकता दुःसाहसकी सीमा तक पहुँची हुई है। इसका असर इनकी बातचीत पर भी है। वे बनावटी शिष्टाचारको तोड़ते हुए निर्द्वन्द्व भावसे बातें करते हैं, सुननेवाला क्या सोचे और समझेगा, इसकी उन्हें पर्वाह नहीं रहती। जब उन्होंने महात्मा गाँधीसे कहा था—मैं हिन्दी साहित्य सम्मेलनके सभापति महात्मा गाँधीसे मिलने आया हूँ, राजनीतिक नेतासे नहीं,—तब भी उनका यही भाव था। फ़ैजाबादके प्रान्तीय सम्मेलनमें कुछ राजनीतिक नेताओंके हिन्दी साहित्यपर आक्षेप करनेपर वहीं खड़े होकर उन्होंने

जवाब दिया। नेताओंके भक्तोंने बैठ जाओ, बैठ जाओ; कहकर उन्हे चुप करनेका विफल प्रयास किया। पंडित जवाहरलाल नेहरूसे रेलकी मुलाकात, पंडित गोविन्दवल्लभ पन्तसे लखनऊ और दूसरी जगहोंकी भेटके पीछे हिन्दीके समर्थनका भाव काम करता रहा है। जो भी मनुष्य साहित्यको उचित स्थान नहीं देता उसे ललकारनेमें वह कभी आगा पीछा नहीं करते। इस सम्बन्धमें एक रोचक घटनाका वर्णन सुना था। लखनऊमें एक हिन्दी-हितैषी राजा साहब आये थे। उनके यहाँ कई हिन्दी साहित्यिक पलते हैं, इसलिए वह अपनेको हिन्दी साहित्यका मर्मज्ञ और बहुत कुछ समझते हैं। मैंने सुना है कि एक आध कवि ऐसे भी हैं जो रस-संचारके लिए उपकरण भी जुटाते हैं। हिन्दी लेखकोंपर राजा साहबकी कैसी दृष्टि पड़ती होगी, इसका अन्दाजा लगाया जा सकता है। लखनऊके एक प्रकाशक-सम्पादक-साहित्यिकने उनके सम्मानमें चाय आदिका प्रबन्ध किया। लेखक भी बुलाये गये। जब राजा साहब तशरीफ़ लाये तो सब लोग उठकर खड़े होगये और लोगों का कहना था कि निराला इतना अशिष्ट था कि उठकर खड़ा भी नहीं हुआ। एक वयोवृद्ध साहित्यिक सबका परिचय कराने लगे—गरीब परवर, यह फ़लाने हैं, यह फ़लाने। इसी गरीब परवरकी धुनमें वह निरालाजी तक पहुँचे और अपना सम्बोधन दुहराया ही था कि कविवर खड़े होगये और राजा साहबको मुख़ातिब करके कहा—"हम वह हैं, हम वह हैं जिनके बाप-दादोंकी पालकी तुम्हारे बाप-दादा उठाया करते थे।' राजा साहबकी दृष्टिसे तुरन्त ही अवज्ञाका भाव ग़ायब होगया।

५

सांस्कृतिक जागरण और परिमल

निरालाजीका जन्म ऐसे परिवारमें हुआ था जहाँ महावीरजीके प्रति असीम श्रद्धा थी, तो पतुरियाके लड़कोंके यहाँ पानी पीनेपर ज़बर्दस्त मार भी पड़ती थी। हम कह सकते हैं कि उनके परिवारपर द्विवेदीयुगकी संस्कृतिकी गहरी छाप थी। उनके घरके लोग राम और कृष्णके उपासक, सामाजिक बन्धनोंको मानने वाले और किसी तरहके भी विद्रोहसे कोसों दूर रहने वाले लोग थे। इस तरहके वातावरणकी वास्तविक देन 'साकेत' और 'यशोधरा' हैं, न कि 'परिमल' और 'अनामिका'। लेकिन निराला जीका सम्बन्ध एकमात्र घरेलू वातावरणसे न था। उन्हे शहरकी हवा भी लग चुकी थी, जिसमें विद्रोह और उच्छृङ्खलता दोनोंके ही कीटाणु विद्यमान थे। बैसवाड़ेकी आल्हा-नौटंकी संस्कृतिके अलावा युवावस्थामें उनका सम्पर्क बंगालकी दो महान सांस्कृतिक धाराओंसे हुआ। एक तो श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुरके नेतृत्वमें बगालकी नवीन सांस्कृतिक जागरण और दूसरा स्वामी विवेकानन्दका स्थापित किया हुआ श्रीरामकृष्ण मिशन। इन दोनोंका उनपर स्थायी प्रभाव पड़ा है। और इसमें सन्देह नहीं कि अपने साहित्यिक जीवनके आरम्भकालमें उन्हे पहले इन्हींसे प्रेरणा मिली।

सन् '२० तक श्री रवीन्द्रनाथ बंगालमें ही नहीं, समूचे भारतमें महाकवि और विश्वकविके रूपमें प्रसिद्ध हो चुके थे। बंगला कविताको पुरानी रूढ़ियोंके दलदलसे निकालकर उन्होंने प्रगतिकी समतल भूमिपर

ला खड़ा किया था। अंग्रेजीके गीत साहित्यके समपर उन्होंने बंगलामें नये छंदोंकी रचनाकी। उसे एक नई गीतात्मकता दी। समूची पौराणिक संस्कृतिको उन्होंने अपने काव्यका विषय बनाया, उपनिषदोंसे लेकर मुसलमान सतोंकी बानी तकको उन्होंने नया प दिया। वे एक महान् सांस्कृतिक जागरणके अग्रदूत थे जिसकी किरणे बंगालकी सीमाओंको पारकरके दूर-दूर के प्रांतोंतक फैल गई थीं।

उस समय भी कुछ ऐसे लोग थे जो रवीन्द्रनाथकी रचनाओंको शेली आदि रोमान्टिक कवियोंकी नकल कहकर मुँह बिदकाते थे। इसी तरह आगे चलकर छायावादी साहित्यके आलोचकोंने भी उसे बँगलाकी नकल कहकर उसकी खिल्ली उड़ानी चाही। वे इस बातको भूल गये कि ये दोनों आन्दोलन राष्ट्रीय जागरणके दो रूप हैं। वंग-भंगके आन्दोलनका रवीन्द्रनाथपर गहरा असर पड़ा। नए राष्ट्रीय गौरवकी भावना उनकी कवितामें कूट-कूटकर भरी है। आगे चलकर उन्होंने स्वदेशी आन्दोलन में भी सक्रिय भाग लिया। चर्खेको लेकर गाधीसे उनका विवाद चला लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि वे राष्ट्रीयताके विरोधी थे। इस विवादमें छायावादी कवियोंने भी हिस्सा लिया; और निरालाजीने इस विषयपर एक लम्बा लेख लिखा जिसमें उन्होंने अपने आदर्श कविकी यथेष्ठ भत्स्र्ना की। वह उस समय भी गांधीवादके समर्थक नहीं थे; फिर भी नए राष्ट्रीय आन्दोलनका वह समर्थन करते थे और चाहते थे कि सभी साहित्यकार उसे आगे बढ़ानेमें सहायक हों। राजनीतिके सिवा रविबाबूने बहुतसे सामाजिक सुधार भी किए थे और ब्राह्म-समाजके जरिये उन्होंने उस कामको पूरा किया था जिसे राजा राममोहन रायने शुरू किया था। निरलाजी पर उनकी इस बहुमुखी प्रतिभा और कार्य-प्रणालीका बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा।

स्वामी विवेकानन्दका प्रभाव रविबाबूसे कम व्यापक नहीं है।

निरालाजीने सदा यही समझा है कि मनुष्योंमें संन्यासी ही सबसे बड़ा है। इस बातको सभी लोग जानते हैं कि स्वामी विवेकानन्दका आन्दोलन संन्यासियोंका वैराग्य मात्र न था। उसमें राजनीतिक दासता और सामाजिक रूढ़ियोंको चुनौती भी थी। अपनेको दीन और निकृष्ट समझने वाले पठित मध्य-वर्गको विवेकानन्दने गर्व करनेके लिए वेदान्तका दर्शन दिया। अमरीकामें दिये हुए व्याख्यान जितना हिन्दुस्तानमें पढ़े गए उतना उस देशमें नहीं। विश्व धर्म-सम्मेलनमें विवेकानन्दकी वाणी पद-दलित भारतकी अप्रतिहत और अपराजिता वाणीके रूपमें सुनाई दी। रामकृष्ण मिशनने बाढ़-पीड़ितोंकी सहायताके लिये सार्वजनिक रूपसे सेवा मार्गका प्रदर्शन किया। 'सेवा प्रारम्भ' नामकी कवितामें निरालाजीने उसके इस रूपकी चर्चा की है।

लेकिन इसके सिवा उसका एक आध्यात्मिक रूप भी है जो संसारको नश्वर और मिथ्या मानता है, जो वैज्ञानिक आविष्कारोंका विरोधी है, जो संन्यासियोंके चमत्कारी कार्योंमें आस्था उत्पन्न करता है,— उसका प्रभाव भी निरालाजीपर पड़ा है। 'स्वामी शारदानन्द जी महाराज और मैं' नामके लेखमें उन्होंने इस तरहके चमत्कारोंका वर्णन किया है। स्वामी जी उन्हें साक्षात् हनुमान मालूम होते थे। उन्होंने गलेपर अपनी उँगलियोंसे कुछ लिख दिया और इन्हें ऐसा लगा कि भीतर ही भीतर वे अक्षर जल उठे हैं। स्वप्नमें नील समुद्रकी लहरोंपर शयन करती हुई महाशक्तिके भी दर्शन हुए। 'भक्त और भगवान्' कहानीमें उन्होंने एक संन्यासीका जिक्र किया है जिन्हें भक्त रामायण पढ़कर सुनाता है। यह संन्यासी स्वामी प्रेमानन्द जी हैं जिनपर 'अणिमा' में स्वतंत्र रूपसे एक कविता आई है। भक्त स्वयं निराला जी हैं। माँगमें सिन्दूर लगाकर अञ्जनादेवीका रूप धारण करनेवाली उनकी स्वर्गीया पत्नी श्री मनोहरा देवी हैं। पर्वत और गदा लिये हुए महावीरकी मूर्तिमें भारतके मानचित्रकी

कल्पना करना निरालाजीकी अनोखी सूझ है। इस कहानीमें रामकृष्ण मिशन और निरालाजीके घरकी संस्कृतियाँ मिल कर एक होगई हैं। भक्त स्वामी प्रेमानन्दका भी उपासक है और हनुमानजीका भी। स्वामीजी हनुमानजीके ही अवतार मालूम होते हैं। स्वामी शारदानन्दजी जिन्हे 'प्रबन्ध पद्म'—भक्तके कमलोंकी तरह—समर्पित है, हनुमानजीके अवतार बताये गये हैं। तरुण भक्तके बदले प्रौढ़ भक्त अपने कमल-रूपी निबन्ध संन्यासी हनुमानके चरणोंमे समर्पित करता है।

मिशनके साधुओंके साथ बहुत दिनों तक उनका घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। बाग बाज़ार कलकत्तेके 'उद्‌बोधन' कार्यालयमें मिशनके साधुओंके साथ रहते हुए उन्होने सन् '२२ में स्वामी शारदानन्दजीके दर्शन किये थे। 'उद्‌बोधन' मिशनका मुखपत्र था। आगे चलकर उसके दूसरे पत्र 'समन्वय' का निरालाजीने सम्पादन भी किया। वह रामकृष्ण मिशनके कितना निकट थे, इसका पता इसीसे चलता है कि मिशनके साधुओंने उन्हे अपने पत्रका सम्पादक बना दिया था। 'समन्वय' के कार्यकर्ताओंके साथ वह बालकृष्ण प्रेसमें रहते थे। 'मतवाला' और 'समन्वय' में कई कोसका अन्तर है लेकिन बालकृष्ण प्रेससे ही 'समन्वय' के बाद 'मतवाला' भी निकला और तब उसके सम्पादक-मण्डलमें 'समन्वय' के भूतपूर्व सम्पादक श्री सूर्यकांत त्रिपाठी भी सम्मिलित थे। निराला जी मिशनको अपनी चीज़ समझते रहे हैं और लखनऊमें उसकी कार्यवाहीमें वह बराबर भाग लेते थे। पत्र-पत्रिकायें पुस्तकें आदि वे उसके पुस्तकालयको दे देते थे और उत्सवों आदिमें साधारण कार्यकर्ताकी भाँति शामिल होते थे। यह जरूर है कि इस तरहके उत्सवोंमें सभापतित्वके लिए जब बहुत बड़े-बड़े आदमियोंकी तलाश होती थी, तब वे कहा करते थे कि मिशन तभी कुछ काम कर सकेगा जब कसिया मेहतर उसका सभापति होगा।

रामकृष्ण मिशनने 'परिमल' के कविको अद्वैतवाद दिया। उसने उन्हे यह भी सिखाया कि मानव मात्रकी सेवा वेदान्तके प्रतिकूल नहीं है। निरालाजीके अन्दर एक अंतर्द्वन्दका जन्म हुआ; यदि संसार और मनुष्य मिथ्या हैं तो इनकी सेवामें व्यर्थ समय क्यों लगाया जाय ? इस मानसिक संघर्षका चित्र उनकी 'अधिवास' कवितामें मिलता है। वह पूछते हैं कि अधिवास कहाँ है ? मानो संन्यासी उत्तर देता है कि अधिवास वही है जहाँ गतिका अन्त हो जाता है। कवि फिर पूछता है कि जबतक उसके हृदयमें करुणा है, क्या तब तक गतिका अन्त हो सकता है ? दुखी मानवको देखते ही उसके हृदयकी वेदना उमड़ आती है और वह उसे गलेसे लगा लेता है। वह मानता है कि वह मायामें फँसा हुआ है और उसकी गति रुक नहीं सकती। फिर भी उसे दुःख नहीं होता। वह गतिहीन अधिवासको नमस्कार करता है और पुकार कर कहता है—

" छूटता है यद्यपि अधिवास
किन्तु फिर भी न मुझे त्रास "

'परिमल' में इस तरहकी बहुत सी रचनायें हैं जिनमें अद्वैतवादको चुनौती सी दी गई है। 'भिक्षुक', 'दीन' आदि रचनाओंमें उसी करुणा को उभारा गया है जो क्रमशः विकसित होती हुई एक क्रान्तिकारी सहानुभूतिके रूपमें बदल गई है। इसी कालकी रचना 'जीवन चिरकालिक क्रन्दन' है जो 'अनामिका' संग्रहमें आई है। जीवनकी कटुता और प्रखर वेदना यहाँपर गीत बन गयी है। हिन्दी कवितामें ऐसा उत्कट आत्मनिवेदन 'विनयपत्रिका' के बाद पहली बार सुनाई पड़ा था। अद्वैतवाद और संन्याससे प्रेम होते हुए भी निरालाजीकी रचनाओंमें उनके व्यक्तित्वकी चर्चा भी काफी रहती है। अपने जीवनके दुःखको माया कहकर वह नहीं टाल देते, वरन् उससे बहुत ही प्रभावपूर्ण पंक्तियाँ वह निर्माण करते हैं। कहते हैं—

"मेरा अन्तर वज्र कठोर
देना जी भरसक झकझोर,
मेरे दुखकी गहन अंधतम
निशि न कभी हो भोर;
क्या होगी इतनी उज्ज्वलता-
इतना वन्दन—अभिनन्दन ?
जीवन चिर-कालिक क्रन्दन !"

कहाँ रहस्यवादीकी उल्लासपूर्ण कल्पना कि चराचरमें सच्चिदानन्द-का प्रकाश व्याप्त है, और कहाँ दुखकी इस काली रातकी कल्पना जिसका विहान कभी होगा ही नहीं ! वह अद्वैतवादी नहीं है जो अपने अन्तरको वज्र-कठोर कहकर समाजके आगे ताल ठोकता है। वह समाजके और सैकड़ों लोगों जैसा संघर्षमें जूझनेवाला सिपाही है जो अपना दिल बढ़ाने-के लिए दुश्मनको इस तरह ललकारता है।

'परिमल' की बहुतसी पंक्तियाँ पाठकोंको याद आयेंगी जहाँ इसी तरहकी वेदनाकी अभिव्यक्ति हुई है। कहीं वह चाहते हैं कि थके हुए पथिककी तरह कुछ क्षणको वह कहीं विश्राम करलें और "जीवन प्रातके लघु पात-सा रह जाय चुप निर्द्वन्द।" कभी सोचते हैं कि "तुम्हारे प्रेम-अञ्चलमें" एक दिन यह रोना थम जायगा। फिर कहते हैं, सूर्यास्त हो रहा है; दिन, पल, मास विषकी अग्नि उगल रहे हैं और असफल जीवन जलता चला जारहा है। सूरदासका रूपक लेते हुए "जा दिन तेरे तन तरुवरके सबै पात झर जैहे" वे कहते हैं कि अग्निसे झुलसी हुई डालियों से पल्लव प्राण गुप्त होनेको ही हैं। 'परिमल' के बादकी रचनाओंमें यह वेदनाका स्वर और भी स्पष्ट होता गया है। अभी तो यौवनकी उमंगमें कवि चुनौती भी देता है और समझता है कि नदीकी प्रबल धाराके सामने जिस तरह हाथी नहीं टिकते, उसी तरह उसके प्रयासके आगे

विघ्न बाधायें भी टिक न पायेंगी।

'परिमल' का कवि प्रेम और सौन्दर्यका कवि है। उसे स्वर्गीया प्रिया की याद आती है। लेकिन वह वेदनाका कवि होकर नहीं रह जाता। वह देखता है कि कली अपने लावण्यसे समूचे वनको लुभा लेती है और भ्रमरका गीत उसकी गन्धसे मिलकर एक हो जाता है। एक दूसरी कवितामें वह कहते हैं—

"देख पुष्पद्वार
परिमल मधु लुब्ध मधुप करता गुञ्जार"

उनके 'परिमल' संग्रहकी सार्थकता इस पंक्तिके 'परिमल' शब्दसे प्रकट होती है। वह स्वयम् वासना और सौन्दर्यके द्वारपर गुञ्जार करते हुए कवि हैं। कितनी ही रचनाओंमें सोती हुई प्रियाको जगाने या उसके कक्षका द्वार खुलवानेका भाव आया है। "प्रिय मुद्रित दृग खोलो" वह गाते हैं क्योंकि वासना प्रेयसी जीवनके उपवनमें विहार करनेके लिए बार-बार उनका आह्वान कर रही है। उनकी प्रसिद्ध रचना "जागो फिर एक बार" में आकाशके तारे भी जगानेमें मदद कर रहे थे, लेकिन द्वार तब तक न खुला जब तक अरुण पङ्ख तरुण किरण ही वहाँ न पहुँची। सौन्दर्य सम्बन्धी कविताओंमें इस रचनाका अन्यतम स्थान है। एक लघु चित्रसे सन्तुष्ट न हो वे सौन्दर्यके लघु और विराट् चित्रोंकी कड़ियाँ जोड़ते चले गये हैं; उनके रहस्यात्मक संकेतोंसे ऐसा लगता है कि इस शृंखला में समूचा विश्व ही बँधा हुआ है। सूर्यास्त होनेपर आकाशमें चाँदनी देखकर यामिनीगधा जगती है और चकोर चन्द्रमाको चावसे जोहने लगता है। फिर सवेरा होनेपर पपीहोंका पिउ-पिउ रव सुनाई देता है। विरह-विदग्धा वधू बीती बातें याद करके मन-मिलनकी रातोंपर वैसे ही आँसू बहाती है जैसे कलियोंसे ओसकी बूँदें ढुलक जाती हैं। प्रिया आह्वान करती है कि हवामें खुशबूकी तरह दोनोंकी बुद्धि और मन एक

हो जॉय। सूर्योदय देखकर कविकण्ठमें सरस्वती जागी। इसी प्रकार दिन रात बीतते गये और प्रकृति-पट बदलते रहे, हजारों वर्ष बीत गये और कविकी प्रिया पुकारती रही, 'जागो फिर एकबार'।

यह वही मानव सुलभ वाणी है जो युगों-युगोंसे स्त्री और पुरुष दोनों के ही कण्ठोंमें सुनाई देती रही है। इसे कभी हम वासना कहते हैं कभी प्रेम, लेकिन न यह माया है न मिथ्या। निरालाजीकी कला इस बातमें है कि इस मानव सुलभ व्यापारकी परिणति उन्होंने उस आनन्दमें की है. जिसे ब्रह्मानन्द सहोदर कहा जा सकता है। उनकी सौन्दर्य सम्बन्धी कविताओंके अन्तमें सदा यह संकेत रहता है कि इस तृप्तिसे बढ़कर और कुछ नहीं। इसका एक सुन्दर निदर्शन 'गीतिका' में है 'स्पर्शसे लाज लगी'—इस गीतका अन्त इस प्रकार होता है—

'मधुर स्नेह के मेह प्रखरतर
बरस गये रस निर्झर झर झर
उगा अमर अंकुर उर भीतर
संसृति--भीति भगी।'

'जुहीकी कली' में "नम्र मुखी हँसी, खिली खेल रंग प्यारे संग।"—में भी यही परिणतिका भाव है।

मुक्तछन्दमें होते हुए भी 'जुहीकी कलीने' सबसे ज़्यादा ख्याति पाई। यह कविकी प्राथमिक रचनाओंमेंसे है, यद्यपि यह विश्वास करना तो कठिन है कि यही उनकी सबसे पहली रचना रही होगी। 'मतवाला' के शुरूके अंकोंमे जिस तरहकी कवितायें निकली हैं उन्हे देखकर सहसा विश्वास नहीं होता कि ऐसी पुष्ट और पूर्ण कविता उन्होंने एकाएक लिख डाली होगी। 'मतवाला' के कई अङ्क निकलनेके बाद 'जुहीकी कली' के दर्शन होते हैं—अठारहवी सख्यामें, और इसीके साथ पहली बार कविके

नाम और उपनाम एक साथ प्रकाशित हुए हैं : पण्डित सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'। इस कविताको कितनी बार सँवारा गया होगा इसका अनुमान इसीसे हो सकता है कि 'मतवाला' में अभी दीर्घ अकारान्त 'जूही' है, और 'वंकिम विशाल नेत्रों' के बदले अपने अलग अन्दाजमें 'वाँके विशाल नेत्र' हैं। शिवपूजन सहायजीने इसे अपने 'आदर्श' नामके पत्रमें भी प्रकाशित किया था। मुझे मालूम नहीं, उसमें क्या पाठ था? इस कविताके बारेमें यह भी मशहूर है कि आचार्य द्विवेदीजीने इसे 'सरस्वती' से लौटा दिया था। 'सरोज-स्मृति' में जिन लौटी रचनाओंको लेकर घास नोचनेका ज़िक्र है, उनमें अवश्य ही 'जुहीकी कली' का प्रमुख स्थान रहा होगा।

लखनऊ रेडियोसे अपना पहला गद्य-लेख विस्तार करते हुए उन्होंने उन परिस्थितियोंका वर्णन किया था, जिनमें यह कविता लिखी गई थी। उसका शीर्षक था 'मेरी पहली रचना'। महिषादलमें अपने अभ्यासके अनुसार आधी रातको वह श्मशान-भ्रमण कररहे थे। आसमानमें चाँदनी खिली हुई थी और स्थानको अत्यन्त अनुकूल जानकर कविके हृदयमें प्रेमके सञ्चारी-व्यभिचारी भाव उदय हो रहे थे। उन्हे गढ़ाकोला और डलमऊकी याद आई होगी, तभी जुहीकी घनी महकने उनके दिल और दिमाग़को तर कर दिया। 'कवितामें मरघटकी पृष्ठभूमिका अभाव है; उसके बदले जुहीकी कली और मलयानिलके प्रेमकी कहानी है। एकान्त वनमें लताके पत्र-पर्यंकपर प्रियतमका स्वप्न देखती हुई कोमल तनकी तरुणी जुहीकी कली सो रही है। चित्रको साङ्गोपाङ्ग बनानेके लिए पत्रका पलँग भी मौजूद है। प्रियाका संग छोड़ कर मलयानिल परदेस करने गया था। चाँदनीकी धुली हुई आधी रात देखकर मिलन की मधुर बातोंकी सुध आई। कान्ताका कंपित कमनीय गात याद आते ही सर-सरिता, गिरि-कानन पार करता हुआ मलयानिल क्रीड़ास्थलमें पहुँच

गया। छः सात सौ मीलका सफ़र उसने बातकी बातमें पारकर डाला। ऐसा मालूम होता है कि तूफ़ान मेल रेलकी पटरियोंपर न चलकर रॉकेट बन कर पटना और हज़ारीबाग़के ऊपर होती हुई महिषादल पहुँच गयी। जुहीकी कली सो रही थी, उसने बड़े ही शिष्ट भावसे जगानेकी कोशिश की, लेकिन न तो वह जागी न असमय ही सो जानेके लिए क्षमा माँगी। वह निद्रालस बंकिम विशाल नेत्र मूँदे रही, किंवा जवानीके अल्हड़पन में नींदका अभिनय कर रही थी, कौन कहे! मलयानिलने शिष्टताको उठाकर ताकपर रख दिया और उसे झकझोर कर अपने पत्रके पलँगपर उठाकर बैठा दिया। अपनी चकित चितवन चारों ओर डाल कर उसने तुरंत ही देख लिया—अगर इतना झकझोरनेपर भी वह असलियत न समझ पाई हो तो—कि मलयानिल फिर आ पहुँचा है। फिर—

" हेर प्यारेको सेज पास
नम्रमुखी हँसी-खिली
खेल रंग प्यारे संग."

इस रचनामें नवयुवक कविका एक मनोरम सौन्दर्य स्वप्न अंकित है। इस तरहका भुलावा जीवनमें अनेक बार नही होता। बुद्धि रोमांसके चरणों-में बारबार यों आत्मसमर्पण नहीं करती। 'जुहीकी कली' को कविने अमरत्व प्रदान किया है। जिसकी आयु दिनोंमें गिनी जा सकती है उसे वर्ष भर तक पत्रांकमें रखनेपर भी तरुणी रूपमें कल्पित किया गया है। इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं। संसारके अस्थायी प्रेम और सौन्दर्यसे ऊबे हुए रोमांटिक कवि ऐसे अमर प्रतीकोंकी कल्पना करते हैं। अंग्रेज कवि कीट्सकी 'नाइटिंगेल' वर्षोंसे ही नही, शताब्दियोंसे अपना वेदना-मधुर गीत गाती रही है। मध्यकालके राजा और विदूषक ही नही, ईसामसीह के पहले मोआबकी रमणी 'रूप' और कल्पनालोककी अप्सरायें उसके गीत को सुनकर सान्त्वना प्राप्त कर चुकी हैं। इसी प्रकार कीट्सकी दूसरी कवि-

तायें प्राचीन यूनानकी कलाकृति सुन्दर चित्रोंवाला वह पात्र—ग्रीशन अर्न—सदियोंसे मानवमात्रको धीरज बँधाता रहा है और भविष्यमें भी बँधाता रहेगा। वैसी ही सुन्दर कल्पना कवि निरालाने 'जुही की कली' में की है। दुर्भाग्यसे इस तरहकी कल्पना टिकाऊ नही होती और क्रूर यथार्थ एक झटकेसे इस मधुर स्वप्नको भंग कर देता है। कीट्सने 'नाइटिंगेल' वाली कवितामें लिखा था—कल्पनाकी परी उसे यों धोखा नहीं दे सकती। 'जुहीकी कली' पर नियतिने यह व्यंग किया कि महिषादलके श्मशानके बदले डलमऊमें गंगाके किनारे कविको अवधूत टीलेके दर्शन कराये और स्नेह-स्वप्न-मग्न तरुणीके बदले उसकी राख और कुछ अस्थियाँ ही उसे मिल पाईं!

'परिमल' में जुहीकी कलीके बाद दूसरी कविता है 'जागृतिमें सुप्ति थी। इसमें भी एक सौन्दर्य-चित्र अंकित है लेकिन यह कई वर्षोंके बाद की एक नई दुनियाका चित्र है। यहाँपर निर्दोष जुहीकी कलीके बदले वह नागरी प्रिया है जिसके मौन अधरोंपर सुरापानके चिन्ह विद्यमान हैं। वासन्ती निशाके बदले यहाँ प्रभातकी लालिमा है जिसमें उसकी लाजमयी चेतना विलीन हो जाती है। कवि अपने पिछले स्वप्न भूल रहा है और जीवन-यापन करनेके लिए नये स्वप्नोंकी सृष्टि कर रहा है। वासन्ती निशाके बाद कविके जीवनमें यह एक नवीन अरुणोदय हुआ और अब वह अपनी रचनाओंमें चाँदनी रातके स्वप्नोंके बदले नवप्रभातके रंग भरने लगा।

सौन्दर्य सम्बन्धी रचनाओंके सिलसिलेमें 'पंचवटी' प्रसंगका भी उल्लेख कर देना उचित होगा जिसमें शूर्पनखाका बहुत ही भव्य चित्र अंकित है। जो लोग छायावादको स्थूलके प्रति सूक्ष्मका विद्रोह कहते हैं, वे इस अत्यन्त मांसल चित्रको भी देखें। शूर्पनखा, और किसीपर भरोसा न करके, स्वयं अपनी प्रशसा करती है। देवताओं और दानवोंने मिल-

कर समुद्रसे चौदह रत्न निकाले थे। निगलाजीने 'समन्दर' मानों पहलेसे ही रघुपति सहाय 'फ़िराक़' का खयाल करके लिखा था, या मुमकिन है, वह शूर्पनखाकी बोलीकी नक़ल कर रहे हों। इस समन्दरसे रम्भा और रमा नामकी दो अप्सरायें भी निकली थीं। कुछ लोग उन्हें सुन्दर भी समझते हैं लेकिन शूर्पनखाको जान पड़ता है कि सृष्टि-भरकी सुन्दरताको खींच-कर बूढ़े शिल्पी विधाताने उसीके अंगोंमें भर दिया है। परन्तु अब प्रकृति भी उसकी सौन्दर्य राशि देखकर लज्जासे सिर झुका लेती है। वनकी लतायें वायुके झकोरेसे हिलती हैं, मानों अंचलमें मुँह छिपाती हैं। आकाश-के तारोंको प्रतिबिम्बित करनेवाली गोदावरी बड़ी सुन्दर लगती है लेकिन उसके अपने लहराते जलद श्याम केश जाल जिनके बीच-बीचमें पुष्प गूँथे गये हैं, अद्वितीय हैं। उसकी भवें देख कर कविकी कल्पना भी बालिकाकी तरह चकित खड़ी रह जाती है। क्यों न रह जाय जब वहाँसे वशीकरण, मारण, उच्चाटनके तीव्र शर छूटा करते हैं। उसकी नासा मीन मदनको फाँसनेकी बंसी हैं। योजनगंध पुष्प जैसा प्यारा मुखमण्डल दूर-दूरसे भौंरोंको खींच लाता है और—

"देख यह कपोत कण्ठ
बाहुबल्ली कर सरोज
उन्नत उरोज पीन—क्षीण कटि—
नितम्ब भार—चरण सुकुमार—
गति मन्द मन्द,
छूट जाता धैर्य ऋषि मुनियों का,
देवों भोगियों की तो बात ही निराली है।"

कविवर रवीन्द्रनाथकी 'विजयिनी' की तरह उसके चरणोंपर भी बड़े-बड़े विजयी अपना सम्मान मान अर्पित कर देते हैं। लेकिन इन विजितोंपर अवज्ञाकी दृष्टि डाल कर सुन्दरी शूर्पनखा अपना विश्वविजयी चन्द्रानन

फेर लेती है। 'परिमल' के बादकी रचनाओंमें ऐसे विलासपूर्ण चित्र कम मिलते हैं। सौन्दर्यसे अधिक प्रेमकी परिणति कविका ध्यान आकर्षित करती है। परन्तु प्रेमकी परिणति कीट्सकी तरह विलासके सभी उद्दीपन चाहती है। इसके अपूर्व चित्र 'अप्सरा' और 'प्रभावती' उपन्यासोंमें अंकित किये गये हैं।

'परिमल' की विशेषता यह है कि उसमें प्रकृतिके ऐसे अनोखे चित्र आये हैं जो हिन्दी कवितामें बिलकुल नये थे। छः सात कवितायें तो वर्षा और बादलोंपर इसी संग्रहमें हैं और 'गीतिका' और 'अनामिका' और इधरके नये संग्रह 'नये पत्ते' और 'बेला' को लें तो बादलोंपर उनकी रचनाओंका एक अच्छा खासा संग्रह बन सकता है। उन्होंने बंगाल और अवध, दोनो ही जगहोंकी बरसात देखी है। शायद कोई भी हिन्दी कवि मूसलाधार पानीमें इतना न नहाया होगा। बाहर घूमते हुए बारिश आगई तो उन्हें घर लौटनेकी कभी जल्दी नही होती; बादल घिरे हों तो भी दोस्तोंको यह समझाते हुए कि पानी बरसनेकी ज़रा भी शंका नही, वे उनके साथ घूमने चल देते हैं। वर्षाका यथार्थ वर्णन ही उन्होंने नहीं किया, अनेक प्रतीकोंके रूपमें उन्होने बादलका उपयोग किया है। 'अलि घिर आये घन पावसके' यह गीत ब्रजभाषाके शृंगारी गीतोंकी याद दिलाता है। बादलकी बूँदें स्मर शरके समान हैं और धरतीके हृदयको बेध देती है,—इस कल्पनाको उन्होंने अन्य रचनाओंमें भी दुहराया है। 'झूम-झूम मृदु गरज गरज घनघोर' में दूसरा ही राग है। नद और दल-दलके वर्णनसे स्पष्ट है कि यह वर्षा बंगालकी है। इस गीतको पढ़कर रवीन्द्रनाथके गीत, 'आजि गरजे गगने गगने गरजे गगने' की याद आ जाती है। बादल रागकी दूसरी कवितामें नजरुल इस्लामके 'विद्रोही' की तरह विप्लवका नव जलधर है तो कलीकी श्री बिखेर कर उसे पीड़ित करने वाला उद्दण्ड नायक भी है। तीसरी कवितामें बादलके लिये अनोखी

उपमायें दी गई हैं। वह समुद्रका आँसू है, धरतीके खिन्न दिवसका दाह है, सूर्यका चुना हुआ फूल है, अर्जुनकी तरह वह स्वर्गका द्वार खोलने जाता है।

चौथी कवितामें बादलको आकाशका चंचल शिशु कहा गया है। लेकिन उसे खेलनेके लिये अन्धकारका आँगन ही मिला है। फिर भी किरण तूलिकायें उसके मुँहपर नये-नये वर्ण अङ्कित कर देती हैं। अधरमें विद्यमान रहनेवाला बादल धरती और आकाश दोनोंके ही गीत गाता है। संसार उसके गीतोंको नहीं सुनना चाहता फिर भी उसके कानोंमें पहाड़ी झरनेकी तरह वह अपना राग भरता ही जाता है। पाँचवीं कवितामें उसे फिर बालकका रूप दिया गया है जो किरणका हाथ पकड़ कर आसमानपर चढ़ जाता है। यह कुसुमके समान कोमल है और पत्थरके समान कठोर भी है। आकाशके नक्षत्र उसकी वन्दना करते हैं। उसे देखकर कविके कण्ठसे नये राग फूट उठते हैं।

बादल रागकी छठी कविता कविकी एक अत्यन्त लोकप्रिय रचना है और अपनी क्रान्तिकारी व्यंजना और उदात्त स्वर सौन्दर्यमें वह बेजोड़ है। समीरके सागरपर बादल ऐसे तैरता है जैसे अस्थिर सुखपर दुखकी छाया तैर रही हो। ग्रीष्मसे विदग्ध ससारके हृदयपर विप्लवका प्रतीक यही बादल है। वह एक नावकी तरह है जिसमें युद्धकी आकांक्षायें भरी हैं और उसके भेरी गर्जनसे पृथ्वीके हृदयमें सोते हुए अंकुर फूट निकलते हैं। उसकी मूसलाधार वर्षासे धरती सिहर उठती है और वज्र हुङ्कार सुनकर संसार हृदय थाम लेता है। किसी बड़े कवि-सम्मेलनमें मंचपरसे कविके स्वरमें यह वज्र हुङ्कार सुनते ही बनती है। श्रोतागण सचमुच ही हृदय थाम कर रह जाते हैं। बादलका प्रहार बड़े-बड़े पहाड़ोंपर होता है और उनपर बिजली गिरा कर वह उन्हे क्षत विक्षत कर देता है। लेकिन छोटे पौधे हाथ हिलाकर उसे बुलाते हैं। उसकी विनाश लीलासे उन्हे भय नहीं

होता क्योंकि 'विप्लव रवसे छोटे ही हैं शोभा पाते।' कवि याद दिलाता है कि बादलका जीवनदान अट्टालिका और आतंक भवनके लिए नहीं होता। वह जल लांछित, पदमर्दित पंकमें नये कमल खिलाता है—

" क्षुद्र प्रफुल्ल जलज से
सदा छलकता नीर,
रोग शोक में भी हँसता है
शैशव का सुकुमार शरीर।"

जिनका कोष खाली होगया है, उनकी मानसिक शान्ति भंग होगई है। विप्लवका यह भैरव नाद सुनकर अंगना अंगसे लिपटे हुए भी वे अपने सिंहासनपर काँप उठते हैं, लेकिन किसान अपनी निर्बल बाँह उठाकर उसका आह्वान करता है। सन् '२३ में ही निरालाने वर्ग संघर्षकी ओर संकेत करते हुए यह अद्वितीय चित्र अङ्कित किया था—

'रुद्ध कोष' है क्षुब्ध तोष,
अंगना-अंग से लिपटे भी
आतङ्क अङ्क पर काँप रहे हैं
धनी, वज्र-गर्जन से बादल!
त्रस्त नयन-मुख ढाँप रहे हैं।
जीर्ण बाहु, है शीर्ण शरीर,
तुझे बुलाता कृषक अधीर,
ऐ विप्लवके वीर!
चूस लिया है उसका सार,
हाड़ मात्र ही हैं आधार,
ऐ जीवन के पारावार।'

श्रीमती महादेवी वर्मा 'आधुनिक कवि सीरीज' वाले संग्रहकी भूमिका-में छायावादी युगकी सामाजिक और राष्ट्रीय कविताओंके बारेमें लिखती

हैं—"राष्ट्रीय भावनाको लेकर लिखे गये जय-पराजयके गान स्थूल धरातलपर स्थित सूक्ष्म अनुभूतियोंमे जो मार्मिकता ला सके हैं वह किसीऔर युगके राष्ट्रगीत दे सकेंगे या नहीं इसमें सन्देह है। सामाजिक आधारपर वह 'इष्टदेवके मन्दिरकी पूजा-सी' में तपः पूत वैधव्यका जो चित्र है वह अपनी दिव्य लौकिकतामें अकेला है।" उनका इशारा निरालाजीकी प्रसिद्ध कविता 'विधवा' की ओर है। छायावादी उपमाओंके बावजूद निरालाजीकी सामाजिक सहानुभूति स्पष्ट है। उन्होंने उसे दीपशिखा, कालताण्डवकी स्मृति रेखा, वृक्षसे छूटी हुई लता आदि कहा है। 'व्यथा की भूली हुई कथा' में एक यथार्थवादी कविका सच्चा स्वर बोल उठता है। इस तरहकी सामाजिक कवितायें 'परिमल' में काफ़ी हैं। 'बहू' कवितामें भी उन्होंने सुन्दर उपमायें बाँधी हैं। उसे सौन्दर्य सरोवरकी तरग और किसी विटपके आश्रयमें खिली हुई किसलय कोमल लता कहा है। किसी किसी उपमामें व्यञ्जनाकी सरलता देखते ही बनती है—

'मोतियों की मानो है लड़ी
विजय के वीर हृदय पर पड़ी।'

इस तरहकी प्राथमिक कविताओंमें नारीकी पर-निर्भरताको आदर्श रूपमें चित्रित किया गया है। आगेकी कविताओंमें यह भाव बदल गया है। इन कविताओंमें एक बात यह भी देखनेकी है कि उर्दूके शब्दोंका ही नहीं, प्रतीकोंका भी उन्होंने बड़ी निर्भीकतासे प्रयोग किया है। जैसे, इस पंक्तिमें—'जलती अन्धकारमय जीवनकी वह एक शमा है।' बहूके लिए शमाका प्रयोग निरालाजीकी मौलिक प्रतिभा ही कर सकती थी।

कलेजेके दो टूक करनेवाला भिक्षुक हिन्दीमें अपना सानी नहीं रखता। अपनी कोमल भावुकतामें वह बरबस पाठककी सहानुभूति खींच लेता है। उसका लकुटिया टेक कर चलना, फटी पुरानी झोलीका मुँह फैलाना, साथके बच्चोंका पेट मलना और हाथ फैलाना, और कुछ न

मिलनेपर आँसुओंके घूँट पीकर रह जाना ऐसे चित्र हैं जिनसे सभी पाठक परिचित हैं। कविने उनकी साधारणताको ही अपनी प्रतिभासे चमत्कारी बना दिया है। दलित कुसुम धूलमें नज़र गड़ाये रहता है और सभी पथिकोंके सामने करुणाकी झोली फैलाये रहता है। जिस लतामें वह खिला था वह आँधीसे टूट गई है 'तबसे यह नौबत आई है।' किसीने भी उसे देवी-देवताओंपर नहीं चढ़ाया। उसे जर्जर देखकर पुजारियोंने ज़मीन पर फेंक दिया। शायद यह अच्छा ही हुआ क्योंकि इन पुजारियोंका यह हाल था कि 'ढके हृदयमें स्वार्थ लगाये ऊपर चन्दन,' ये नदीश नन्दिनीका अभिनन्दन करने जाते थे। फूलका सम्बन्ध इससे श्रेष्ठ मानव व्यापारसे रहा है। जब दो प्रेमी मिले थे तब उन्होंने इसी फूलसे प्रीतिकी अर्चना की थी।

'रस्में अदा हुई थीं मुझसे—
मैं ही था उनका आचार्य—
कोमल कर था मिला कमल कर से जब
सिद्ध हुआ मुझसे उनका कार्य।'

यहाँपर कविने स्पष्ट रूपसे देवताओंकी आराधनासे मनुष्यके प्रेम सम्बन्धको उच्चतर स्थान दिया है।

'कण' नामकी कवितामें भी इसी तरहकी प्रतीक-व्यंजना दलितोंके प्रति सहानुभूति उत्पन्न करती है। आकाश देखते हुए कणको न जाने कितने दिन बीत गये हैं।

'पड़े हुए सहते हो अत्याचार
पद पद पर सदियों के पद प्रहार।'

इस सहनशीलताके साथ उसके अनन्त प्रेमकी झलक दिखाकर उन्होंने कवितामें रहस्यवादका पुट दे दिया है। रज होनेपर भी विरज: (निराकार) के लिये वह सब कुछ सहनेको तैयार है। विप्लवी बादलका

विद्रोह यहाँ नहीं, जहाँ भी रहस्यवादकी पुट होगी, वहाँ यह विद्रोह दबा होगा। कवि विप्लवका राग भूल कर सहनशीलता और अनन्तमें लय होने का उपदेश देने लगता है। जिन कविताओंको रहस्यवादी कहा जाता है उनपर एक सरसरी निगाह डालनेसे भी यह स्पष्ट हो जायगा कि वे छायावादी युगका सबसे कमज़ोर पहलू है।

उनकी प्रसिद्ध कविता 'भर देते हो' में इष्टदेव करुणाकी किरणोंसे कविके क्षुब्ध हृदयको पुलकित कर देते हैं। वह अन्तरमें आकर व्यथा-भार कम कर जाते हैं। अपने वज्र कठोर अन्तरकी बात भूल कर कवि अन्धकारके रोदनकी बातें करने लगता है। फूलोंसे ढुलकते हुए ओस बिन्दुओंके समान उसके कपोलोंपर आँसूकी बूँदे ढुलकती हैं। इष्टदेव किरणोंसे आँसू पोंछ लेते हैं और उसके दुखी जीवनमें नये प्रभातका प्रकाश भर देते हैं। जीवन चिरकालिक क्रन्दनकी तुलनामें यह व्यापार कितना अवास्तविक और काल्पनिक मालूम होता है। भक्त अपने कुसुम कपोलोंपर 'लोल शिशिर-कण' की मधुर कल्पनापर मुग्ध है।

'हमें जाना है जगके पार' इस गीतमें छायावादकी पलायनवादी प्रवृत्ति दिखाई देती है। कौन ऐसा रोमांटिक कवि है जिसने कल्पनाके पर लगाकर एक दूरके सुनहरे संसारमें उड़ जानेकी न सोची हो? वहाँ नैनोंसे नैन मिले रहते हैं, अन्धकारका नाम नहीं, प्रकाशके सहस्रों रूप खिले रहते हैं और रसकी तो गंगा-जमुना बहा करती है। यथार्थकी दुनियामें तो कामनाके कुसुमोंमें कीड़ा लग जाता है और अगर प्रेमके महलकी ईंटसे ईंट न बजी तो उसका पलस्तर तो उखड़ ही जाता है। परन्तु उस सुनहरे संसारमें क्षुब्ध अधरोंको दूसरे अधरोंका हास मिलता है और रूठे हुए हृदय हृदयका हार बन जाते हैं। आँखोंमें हमेशा सवेरा रहता है, अंगों में चाँदनी लिपटी रहती है, और 'मन्द ही बहती सदा बयार'। इस दुनियाँ में प्रेम मिलता भी है तो उसमें मान होता है और ज्ञानकी ओर बढ़नेमें

मोहका सामना करना पड़ता है। हमें तो ऐसा ज्ञान चाहिये जहाँ मोहका सामना न करना पड़े। अगर मोहको ही ज्ञानका रूप दे दिया जाय तो यह सब झमेला मिट जाता है।

'प्रपातके प्रति' कवितामें श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुरके 'निर्झरके स्वप्न-भंग' की झलक दिखाई देती है। बँगला कविता बड़े पैमानेपर लिखी गई है और चित्रों और रूपकोंका उसमें ताँता बाँध दिया गया है। निरालाजीने अपना ध्यान एक-छोटेसे चित्रपर ही केन्द्रित किया है और उनके रूपक और उपमायें मौलिक संकेत लिये हुए हैं। विप्लवी बादलकी तरह यह प्रपात भी अन्धकारसे खेलता है। आकाशके बदले यहाँ वनका अंधकार है। कवि पूछता है कि यह बालकका विचार है या बुद्धका साम्य-व्यवहार है जो वह हर्ष और विषादमें अन्तर नहीं देखता। बुद्धि और चेतनाका विकास जड़ प्रकृति से ही हुआ है। गतिशील प्रपात पत्थरोंसे उत्पन्न हुआ है। उसका पिता पर्वत है और उसके दूत उसकी राह रोकते हैं। प्रपात उनसे टकराता है लेकिन जब उन्हे पहचान लेता है तो उसके होठोंसे मीठी मुस्कान फूट पड़ती है। वह आगे बढ़ चलता है परन्तु जड़ पत्थरके भीतर भी वह अपनी तान भर देता है। इस तरहकी शङ्का कि चेतनाका विकास जड़ प्रकृतिसे हुआ है अथवा जड़ प्रकृति मिथ्या है और चेतना ही सत्य है, उनके अन्य गीतोंमें भी मिलती है, विशेष कर 'कौन तमके पार रे कह', 'गीतिका' के इस गीतमें।

'परिमल' की रहस्यवादी कविताओंको एक साथ पढ़नेपर पता लगता है कि रवीन्द्रनाथसे अधिक कविपर विवेकानन्दका प्रभाव है। इष्टदेवकी मातृरूपमे कल्पनाको स्वामी विवेकानन्दने ही लोकप्रिय बनाया था। 'देवि तुम्हे मैं क्या दूँ', 'एक बार बस और नाच तू श्यामा' आदि रचनाओंमें यह प्रभाव स्पष्ट है। इन कविताओंकी विशेषता यह है कि भावुकताके आँसुओंके बदले जीवनकी दारुण व्यथाको गहरे रंगोंमें अंकित

किया गया है। और मातारूपमें इष्टदेवी आनन्दसे अधिक शक्तिकी देवी हैं। वह कविको पलायनवादी संसारमें नहीं ले जातीं, न सुनहली किरणोंसे उसके ओस जैसे आँसू पोछ लेती हैं। वह उसे दुःखभार सहन करनेके लिये प्रेरणा देती हैं और मानों कहती हैं कि यह भार वहन करना ही उसकी श्रेष्ठ उपासना है। यह कल्पना 'गीतिका' में विकसित हुई है।

'परिमल' की कविता 'क्या दूँ' में कवि अपने विफल प्रयासोंका उल्लेख करता है। वह उन रत्नहारोंको देखता है जो अन्य कवियोंने श्यामा को पहनाये हैं। उनके पास ऐसे गीत हैं जिनसे जनता भयभीत थी। वह उन्हींको शङ्कित चित्तसे देवीकी ओर बढ़ाता है। 'जब कड़ी मारे पड़ी, दिल हिल गया' आदि पंक्तियोंमें यही दारुण व्यथावाला भाव है। जिस खेतमें उसने भावकी जड़ लगाई है, उसे उसने दुःख-नीरसे सींचा है। आशाकी लतामें फूल लगे थे लेकिन कालकी चालसे वे मुरझा गये। उसकेलिए अब शूल बाकी रह गये हैं, लेकिन उसे यह लाभ हुआ है कि अकूल सिन्धु, के किनारे तक पहुँचनेके लिए उसे प्राणशक्ति मिल गयी है।

सन् '२४ में निरालाजीने स्वामी विवेकानन्दकी कई रचनाओंका अनुवाद किया था। सरल भाषाके प्रवाहमें वे मूल बँगलाके ओजको भलीभाँति सुरक्षित रख सके हैं। इन कविताओंमें शृंगारसे विरक्ति और ध्वंससे प्रेम प्रकट किया गया है। छायावादी कवियोंने प्रलयंकर रुद्रके ताण्डवके जो गीत गाये हैं, उनका श्रीगणेश 'नाचे उसपर श्यामा' आदि कविताओंसे होता है—निरालाजीके अनुवादमें ओजकी मात्रा देखिये—

'फोड़ो वीणा, प्रेम सुधा का
पीना छोड़ो, तोड़ो, वीर,
दृढ़ आकर्षण है जिसमें उस
नारी माया की जञ्जीर।

बढ़ जाओ तुम जलधि ऊर्मि से
गरज गरज गाओ निज गान,
आँसू पीकर जीना; जाये
देह, हथेली पर लो जान।

चूर चूर हो स्वार्थ, साध, सब
मान, हृदय हो महा श्मशान,
नाचे उस पर श्यामा, घनरण
में लेकर निज भीम कृपाण।'

इन पंक्तियोंमें 'रामकी शक्ति पूजा' की कल्पनाका मूल रूप हम देख सकते हैं। समाजमें आर्थिक और राजनीतिक कारणोंसे जो घोर असन्तोष फैला हुआ था, उसे प्रकट करनेके लिए कवियोंने इन प्रतीकोंसे काम लिया। निरालाजीके जीवनसे भी महाश्मशानके प्रतीक मेल खाते थे। दोनोंमें एक आंतरिक सम्बन्ध था और इसी कारण 'रामकी शक्ति पूजा' के प्रतीक इतने सबल और भावपूर्ण हैं और वे निरालाके जीवनके सत्यको ऐसे नाटकीय रूपमें प्रस्तुत करते हैं।

रहस्यवाद छायावादका एक पहलू था, दोनोंको एक मान लेनेपर बहुत तरहके भ्रम उत्पन्न होजाते हैं। अन्य रोमांटिक आन्दोलनोंकी तरह छायावादमें भी विरोधी प्रवृत्तियों और असंगतियोंका अभाव नहीं है। पलायन और अध्यात्मवादके साथ उसमें संघर्षका स्वागत और क्रान्तिकी चाह भी है। पलायनका रूप अध्यात्मवादी संसारकी कल्पना ही नहीं है; इतिहाससे वे युग ढूँढ़ कर निकाले जाते हैं जिनसे कविको आन्तरिक सहानुभूति होती है। 'दिल्ली' और 'खण्डहर' कविताओंमें पुरातन वैभवके प्रति भावुक सहानुभूति प्रकट की गई है। 'शिवाजीका पत्र' गुरू गोविन्द सिंह पर और 'जागो फिर एक बार' नामकी कवितामें उस हिन्दू पुनर्जागरणके चिह्न मिलते हैं जो शुरूमें हमारे राष्ट्रीय जागरणके ही एक अङ्ग रहे थे। 'यमुना' में उन्होंने पौराणिक संसारको नवीन जीवन

दिया है। ब्रज और यमुनाको देख कर अनेक आधुनिक कवियोंने नट-नागर श्याम और पनघटपर गोपियोंकी मधुर प्रेमलीलाके जो चित्र अङ्कित किये हैं उनका आरम्भ इसी कवितासे होता है। 'पंचवटी प्रसङ्ग' में उन्होंने रामकी गाथाको पुनर्जीवित किया है। इसमें गोस्वामी तुलसीदास का भक्तिभाव उभर कर आया है। लक्ष्मण कहते हैं—

"मुक्ति नहीं जानता मैं, भक्ति रहे काफ़ी है,"

उनका आदर्श है कि माताकी तृप्तिके लिए वे अपना सर्वस्व निछावर करदें। वे अपनी समस्त तुच्छ वासनाओंका विसर्जन करके एकमात्र भक्तिकी कामना कर सकें।

इस प्रकार 'परिमल' की रचनाओंमें छायावादकी बहुमुखी प्रवृत्तियाँ अपनी रूपरेखामें स्पष्ट होकर पाठकके सामने आती हैं। द्विवेदी युगकी वैष्णवी श्रद्धा और सशंक नैतिकताके बदले पहले-पहल अविश्वास और मानवीय प्रेम और शृंगारके स्वर सुनाई पड़ते हैं नैतिकताके विरोधने उच्छृङ्खलताका रूप नहीं लिया। नये कवियोंने व्यक्तित्वके पूर्ण विकासके लिए उस सामाजिक स्वाधीनताकी माँग की जिसे पिछले युगके सामाजिक बन्धन दबा कर रखना चाहते थे। इन कवियोंने नए ढङ्गसे प्रकृतिका चित्रण करना शुरू किया; इस तरहकी कविताको उन्होंने लक्षण ग्रन्थोंकी सीमाओंसे उबार लिया। उद्दीपन या उपदेशके लिये प्रकृतिका वर्णन काफ़ी नहीं था। प्रतीक रूपमें भी प्रकृतिका उपयोग किया गया, लेकिन पहले-पहल हिन्दी कवितामें उसके यथार्थ चित्र देखनेको मिले। सामाजिक रचनाओंमें दलित वर्गके प्रति भावुक सहानुभूति प्रकट की तो साथ ही साथ सामाजिक ढाँचा बदलनेके लिए विप्लव और क्रान्तिकी माँग भी की। रहस्यवादी कविताओंमें उन्होंने आनन्द और प्रकाशमें इष्टदेव की कल्पना की लेकिन अपने जीवनकी दारुण व्यथाको भी वे भुला नहीं सके। छन्द और भाषामें नए प्रयोग करके उन्होने रीतिकालीन आचार्यों को बता दिया कि हिंदी कवितामें एक नये युगका आरम्भ होगया है।

५

रीतिकालीन परम्परा और छायावाद

'परिमल' की रचनाओंमें क्या नवीनता थी, पुरानी परिपाटीसे वे कितना भिन्न थीं, यह हम देख चुके हैं। इस तरहके मौलिक कविके लिए यह आवश्यक होता है कि वह गद्यमे भी अपने विचारोंका स्पष्टीकरण करे। निरालाजीके गद्य लेख उनकी कविताओंसे पहले ही प्रकाशित होने लगे थे। 'सरस्वती' में बङ्गला और हिंदीके व्याकरणकी तुलना करते हुए उन्होने इस बातकी पहलेसे ही सूचना दे दी थी कि बङ्गलाके माधुर्यके प्रशंसक होते हुए भी वे हिंदीके सम्मानकी बराबर रक्षा करेंगे। उनका दूसरा महत्वपूर्ण लेख बङ्गालके ही एक कवि श्री चण्डिदासपर था। 'प्रबन्ध प्रतिमा' में इसका रचनाकाल १६२० दिया गया है। इस निबन्धमें वैष्णव कविके जीवनके बारेमें प्रचलित अनेक किंवदंतियोंका उन्होंने उल्लेख किया है। बङ्गालमें रवीन्द्रनाथ ठाकुरके नेतृत्वमें जो नवीन साहित्यिक आन्दोलन आरम्भ हुआ था, उसका वैष्णव कवियोंसे अटूट सम्बन्ध था। इनके सरस गीतोंमें नये कवियोंको वह सहृदयता और मानवीय प्रेम मिलता था जो दरबारी कवियोंकी रचनाओंमें दुष्प्राप्य था। वैष्णव कवियोंपर रविबाबूने जो कविता लिखी है, उसमें उनकी भक्तिके इस मानवीय रूपकी ओर उन्होने संकेत किया है। जिन कवियोंने राधा और कृष्णकी तन्मयताका ऐसा प्रभावशाली वर्णन किया था, उन्होंने अवश्य ही अपने जीवनमें उस तन्मयताका अनुभव किया होगा। इनमें चण्डिदास और रजक विधवा राममणिका प्रेम तो भारत प्रसिद्ध है। रविबाबूने इनपर लेख और कवितायें ही नहीं लिखीं

वरन् उनकी शैलीके अनुकरणपर 'भानुसिंहेर पदावली' की रचना कर डाली थी। बङ्गलाकी रोमांटिक कविताका एक स्रोत यह वैष्णव कवि भी थे। हिंदीके नये कवि जो बङ्गला भी जानते थे, अनिवार्य रूपसे इन कवियोंकी ओर आकृष्ट हुए। रवींद्रनाथकी प्रशंसाने उनके इस कार्यको सुगम बना दिया। निरालाजी अच्छी तरह जानते थे कि बङ्गालमें सभी मतों और विचारोंके कवि चण्डिदासके प्रशंसक थे। 'बङ्गाल तो इनकी अमर कृतियोंका हृदयसे उपासक है। किसी दूसरे कविकी समालोचना करते समय बङ्गालमें चाहे पृथक-पृथक अनेक दल भले हो जायं, परतु चण्डिदासके लिए सबके हृदयमें समान आदर, समान श्रद्धा और समान प्रेम है।' निरालाजीने वैष्णव कवियोंकी शृंगार साधनापर आगे चलकर भी लेख लिखे और गोविन्ददासके गीतोंका हिंदीमें अनुवाद भी किया।

वैष्णव कविताका प्रेम रीतिकालीन परम्पराका विरोधी था, यह बात शीघ्र ही स्पष्ट होगई। 'काव्य साहित्य', 'बिहारी और रवींद्रनाथ' आदि लेखोंमें निरालाजीने इस बारेमें संदेहकी गुंजाइश न रहने दी। चण्डिदास यदि रोमांटिक कविताके पुराने स्रोत थे, तो रवीन्द्रनाथ ठाकुर उसके आधुनिक प्रतिनिधि कवि थे। उधर महाकवि बिहारीलाल रीतिकालीन परम्पराके मान्य आचार्य थे। हिंदीमें विवाद चला कि देव बड़े हैं या बिहारी। इस वाद-विवादमें भाग लेनेवाले आलोचकोंने यह नहीं बताया कि देव और बिहारी एक ही साहित्यिक शृंखलाकी दो कड़ियाँ थे और नये कवियोंको उन दोनोंमेंसे अब किसीकी जरूरत नहीं है। मध्यकालीन कवियोंमें चण्डिदासकी तरह तुलसी और सूर नये आन्दोलनको प्रभावित कर सकते थे परंतु दरबारी परिपाटीसे उसका बैर था।

'बिहारी और रवीन्द्र' नामके लेखमें दो कवियोंका ही अन्तर नहीं दरसाया गया, यहाँपर रीतिकाल और छायावाद इन दोनोंका परस्पर

विरोध भी प्रगट किया गया है। निरालाजीने बिहारीपर आक्षेप किये हैं कि उनके भावोंमें नवीनता नहीं है, छन्दोंमें वैचित्र्य नहीं है, उनके साहित्यकी दुनिया बहुत संकुचित है, उक्तियोंमें एक प्रकारकी जड़ता है जो संकेतसे काम न लेकर हर चीजको खुलासा कर देती है; बिहारीके भावों से विकार पैदा होते हैं लेकिन रवीन्द्रनाथमें नवीनता, छन्द वैचित्र्य, भावप्रसार, विचारोंकी सम्बद्धता आदि गुणोंके साथ मानवीय अनुराग है। 'तन्त्रीनाद, कवित्त रस, सरस राग रतिरंग। अनबूड़े बूड़े तरे, जे बूड़े सब अङ्ग।' इस दोहेको उद्धृत करके निरालाजी कहते हैं :—

'यह गुण बिहारीमें नहीं रवीन्द्रनाथमें पाया जाता है। बिहारी तटस्थ रहते हैं, रवीन्द्रनाथ डूब जाते हैं।...बिहारी चित्रण कुशलता दिखानेकी फिक्रमें रहते हैं, परन्तु रवीन्द्रनाथ अपने विषयसे मिल जाते हैं।'

यहाँपर उन्होंने रोमांटिक कविकी तन्मयताको अपना आदर्श बनाया है। रीतिकालीन कवि अलंकार सौंदर्यमें ऐसे उलझ जाते हैं कि रस तक उनकी पहुँच नहीं होती। यद्यपि रीतिकालमें रस शब्दको लेकर बहुत चर्चा हुई, फिर भी रसिकोंकी रचनाओंमें रसका स्रोत सूखा ही रहा। बादके आलोचकोंने अश्लीलताको ही सरसताकी संज्ञा दे दी। निराला जी टलाटली वाले दोहेकी टीका उद्धृत करके उसे विकारपूर्ण कहकर उसकी निन्दा करते हैं : 'पतिदेव थोड़ी देरके लिए भी धैर्य नहीं रख सके। दूसरोंकी स्त्रियोंके बीचमें कूद पड़े और अपनी 'अर्जेण्ट' प्रार्थना सुना दी। समझमें नहीं आता इसमें कौन-सा चमत्कार है।' यह एक आश्चर्य की बात है कि इन सब दोहोंके रससे चटखारी लेनेवाले आलोचक छायावादपर अश्लीलताका दोष लगाते थे। छायावादपर पं० पद्मसिंह शर्माका कोप समझमें आ सकता है जब हम इस लेखमें पढ़ते हैं : 'कुछ बिहारीकी कल्पना उसपर पद्मसिंहजी भी कल्पना लड़ाते हैं। बहुत जगह

चमत्कार पैदा करनेमें बिहारीसे जो कुछ कोर कसर रह जाती है उसे पद्मसिंहजी पूरा कर देते हैं।' नये कवि चाहते थे, स्त्रीको उसके सामाजिक और पारिवारिक रूपमें चित्रित किया जाय। रीतिकालीन कवियोंमें नारीको क्रीड़ा--कलाकी पुतली बनाकर मनुस्मृतिका श्राद्ध किया गया था। वे आलोचक शुद्ध प्रतिक्रियावादी थे जो भारतीयताकी दुहाई देकर स्त्रियोंको रँगमहल या रसोई घरमें अपनी परिचारिका बनाकर रखना चाहते थे। निरालाजीने एक वाक्यमें इस अन्तरको स्पष्ट करदिया है—'बिहारी नायिका भेद बतलाते हैं परन्तु रवीन्द्रनाथ स्त्रियोंके स्वभावका चित्रण करते हैं।'

अन्य छायावादी कवियोंके साथ निरालाजी भी विश्वव्यापी भावोंकी तलाशमें थे। विराट् चित्रोंके बिना उन्हे तसल्ली नहीं होती थी। बिहारीके दोहे और लघु-चित्र प्रसार चाहनेवाले साहित्यके प्रतिकूल हैं। परन्तु निरालाजीका आक्षेप रवीन्द्रनाथपर भी है कि बंग-बालाओंका चित्रण करनेके कारण उनमे कहीं-कहीं प्रान्तीयता आ गई है। उनका आशय है नारीको अप्सरा बनाकर उसे अनन्त सौन्दर्य और अजर यौवनके प्रतीक रूपमें न चित्रित किया जाय तो विश्वव्यापी भाव संकुचित हो जायगा। वास्तवमें यह प्रश्न प्रान्तीयता और सार्वभौमिकताका नहीं है बल्कि यथार्थवाद और काल्पनिकताका है। रीतिकालीन बन्धनोंसे नारीको स्वतन्त्र करके छायावादी कवि उसे काव्यलोकमें उषाके सिंहासनपर ही बिठाकर दम लेना चाहते थे।

'काव्य साहित्य' में निरालाजीने उन आलोचकोंकी खबर ली है जो छायावादपर विदेशी साहित्यके अनुकरणका दोष लगाते थे। ये लोग 'अपने ही विवरके व्याघ्र बने बैठे रहते, अपनी ही दिशाके ऊँट बनकर चलते हैं।' युग बदल गया है लेकिन लोग समस्या-पूर्तिसे बाज नहीं आये। निराला जीको अलंकारोंसे कम मोह नहीं है, परन्तु व्यवयमें वह उनका मौलिक

उपयोग करते हैं। व्रजभाषाकी परम्परा और नई काव्य-शैलीका अन्तर दिखाते हुए कहते हैं : 'हिन्दी साहित्यकी पृथ्वी अब व्रजभाषाका प्रलय-पयोधि नहीं है, वह जलराशि बहुत दूर हट गई, राष्ट्रभाषाके नामसे उससे जुदा एक दूसरी ही भाषाने आँख खोलदी, पर 'धृतवानसिवेदम्' के भक्तों की नज़रमें अभी यहाँ वही सागर उमड़ रहा है। नहीं मालूम बेवक्तकी शहनाईके और क्या अर्थ हैं। एक समस्यापर बावन जिलेके कवि ढेर हो जाते हैं।' उन्हें इस बातसे संतोष होता है कि नये साहित्यिक आंदोलनों का विरोध करनेवाले लोग हिन्दीमें ही नहीं हैं; वे अन्यत्र भी रहे हैं और वहाँ असफल रह कर हिन्दीके उज्ज्वल भविष्यकी सूचना दे रहे हैं।

बावन ज़िलेके कवि किस बुरी तरहसे नये आदोलनका विरोध कर रहे थे, यह छायावादी कवियोंके क्रोधसे प्रकट होता है। निरालाजी इन्हे चुनौती देते हुए लिखते हैं।—'हिन्दीके साहित्यिकोंका अन्याय सीमाको पार कर जाता है। उन्हे अपनी सूझके सामने दूसरे सूझते ही नहीं। हमें उनकी आँखोंमें उँगली कर-करके समझाना है, और बहुत शीघ्र वैसे संकीर्ण विचार वालोंको साहित्यके उत्तरदायी पदसे हटाकर अलग कर देना है। तभी साहित्यका नवीन पौधा प्रकाशकी ओर बढ़ सकेगा।' छायावाद अभारतीय है और वह विदेशी साहित्यका अनुकरण करता है, इस तर्कको निरालाजीने एक ही वारसे खत्म कर दिया है। अपनी स्वाभाविक बोलचालकी शैलीमें उन्होंने ललकारा : 'हजार वर्षसे सलाम ठोकते-ठोंकते नाकमें दम होगया, अभी संस्कृति लिये फिरते हैं।'

हिन्दीसे भिन्न भाषाओंके साहित्यके बारेमें उन्होंने घोषणा की कि जब तक भावोंका आदान-प्रदानन होगा तब तक हिन्दीकी कूप-मंडूकता भी दूर न होगी। हर नये साहित्यिक आन्दोलनपर अनुकरणका दोष लगाकर विरोधी आलोचक उसे जनतासे दूर रखनेकी कोशिश करते हैं। निरालाजीने इनका पैंतरा समझ लिया था, इसलिए उन्हींपर रूढ़िवाद-

को सुरक्षित रखनेका आरोप लगाते हुए उन्होंने कहा—

'हिन्दीमें यदि चारों ओरसे परकोटा घेरकर अन्य देशों तथा अन्य जातियोंकी भावराशि रोक रखी गई, 'तो इस व्यापक साहित्यके युगमें हिन्दीका भाग्य किसी तरह भी नहीं चमक सकता और उसके साहित्यमें महाकवि तथा बड़े-बड़े साहित्यिकोंके आनेकी जगह चिरकाल तक बनी रहे ठनी रहे होता रहेगा।'

छायावादका विरोध करनेवाले पंडित रामचन्द्र शुक्ल भी थे। साहित्यमें लोक-संग्रहकी भावनाके वे समर्थक थे; इस प्रकार उन आलोचकोंसे उनका कोई सम्बन्ध न था जो कलाको दुनियासे दूर कल्पना लोककी चीज़ बना लेना चाहते हैं। छायावादपर उनके आक्षेपोंका यह आधार न था कि नई कविता यथार्थसे दूर होती जा रही है और इसके बदले उसमें कल्पना-विलास चढ़ता जाता है। छायावादी कविताके सौन्दर्यसे इनकार न कर पानेपर वह यह भी कहते थे कि इस तरहकी शैली तो पहलेकी अन्योक्ति वाली कवितामें भी है। वह इसे भी अस्वीकार न कर सकते थे कि नई कवितामें लोक-संग्रहकी भावना विद्यमान थी। वास्तवमें उनका विरोध लोक-संग्रहके नये रूपसे था। शुक्लजी द्विवेदी युगके सामाजिक रूढ़िवादके समर्थक थे। तुलसीदासपर अपनी पुस्तक लिखते हुए उन्होंने इस बातको भी एक आदर्श रूपमें स्वीकार किया है कि गोस्वामीजीने वर्णाश्रम धर्मका समर्थन किया था। कबीरको वह केवल एक ध्वंसात्मक और विशृंखल विचारोंका कवि मानते थे। इन दोनों कवियोंके ही क्रान्तिकारी पहलू उनकी दृष्टिसे ओझल रहे। इसलिए यह स्वभाविक था कि नये कवियोंने रूढ़ियोंके प्रति जो विद्रोह किया था, उसका मूल्य वे न आँक सके। छायावादका विरोध करके वे द्विवेदी युगकी रूढ़ियोंको स्थायी बनानेका असफल प्रयत्न करते रहे।

उनकी आलोचनाने यह रूप धारण किया कि रहस्यवाद भारतकी

वस्तु नहीं है; उसे बाहरसे उधार लिया गया है। उनकी इस धारणामें रवीन्द्रनाथ ठाकुरके प्रति भी अवज्ञाका भाव था। उपनिषदोंसे लेकर कबीर आदि संतोंकी वाणीमें जो रहस्य-भावना प्रस्फुटित हुई थी, उसके अस्तित्वको ही वे अस्वीकार करते थे। प्रसादजीने बड़े तर्कयुक्त ढंगसे इस एकांगी दृष्टिकोणका खण्डन किया था। रहस्यवादके नामपर नई गीतात्मकता, भाव-व्यंजना, शब्दावली, छंद आदिके प्रति भी शुक्लजी उदासीन रहे। छायावादी कवियोंने साहित्यके सभी रूपोंमें जो व्यापक परिवर्तन किये थे, उनपर रहस्यवादका पर्दा डालकर एक महान् परिवर्तन का तिरस्कार किया गया। इस एकांगी आलोचनासे साहित्यका अहित ही हो सकता था। 'काव्य-साहित्य' में निरालाजीने स्पष्ट लिखा है :—

'पंडित रामचन्द्र शुक्लकी 'काव्यमें रहस्यवाद' पुस्तक उनकी आलोचनासे पहले उनके अहंकार, हठ, मिथ्याभिमान, गुरुडम तथा रहस्यवादी या छायावादी कवि कहलानेवालोंके प्रति उनकी अपार घृणा सूचित करती है। ऐसे दुर्वासा समालोचक कभी भी किसी कृति-शकुन्तलाका कुछ बिगाड़ नहीं सके, अपने शापसे उसे और चमका दिया है।'

शुक्लजी और छायावादियोंके विवादमें विजय छायावादियोंकी हुई। आज 'काव्यमें रहस्यवाद' एक मनोरंजनकी वस्तु मात्र रह गई है, और छायावादकी अनेक रचनायें हिंदीका कण्ठहार बन गई हैं।

निरालाजी प्राचीन हिन्दी साहित्यके गौरवकी रक्षा करनेके लिए सदैव तत्पर रहे हैं। 'पल्लव' की भूमिकापर उनका मूल आक्षेप यही था कि पन्तजीने इस गौरवका निरादर किया है। लेकिन इस गौरवके बहाने जो लोग नई प्रगतिका विरोध करते थे और पाठकोंको यह विश्वास दिलाना चाहते थे कि जो कुछ लिखना था वह तो ब्रजभाषाके कवि लिख चुके, नये कवि सिवा विदेशसे उधार लेकर बहकानेके अलावा कुछ नहीं कर सकते, उनके बारेमें निरालाजीने स्पष्ट कहा, 'पुराना साहित्य हिन्दीका

बहुत अच्छा था, पर नया और अच्छा होगा, इस दृष्टिसे उसकी साधना की जायगी।' उन्होंने बताया कि ब्रजभाषाके प्रेमियोंसे किसीको द्वेष नहीं है लेकिन उन्हें अपने प्रेमसे नई संस्कृतिका बाधक न बनना चाहिये। ब्रजभाषाकी श्रेष्ठता ज़ाहिर करनेके लिये अगर वे नई कविताके विरुद्ध झूठा प्रचार करते रहे तो 'उन्हे प्रयत्न करके साहित्यके व्यापक मैदानसे हटा देना चाहिये। उनके द्वारा साहित्यका उद्धार नहीं होसकता। वे तो सिर्फ़ मनोरंजनके लिए काव्य-साधना करते हैं, किसी उत्तरदायित्वको लेकर नहीं।' छायावादी कवियोंने जिस तरह पुराने साहित्यका समर्थन या विरोध किया, उसमे उन्होंने ब्रजभाषाके प्रेमियोंसे अधिक उत्तरदायित्व का परिचय दिया। वे यह माननेके लिए तैयार न थे कि विदेशी साहित्य की छाया पड़ते ही हिन्दीका चौका छूत हो जायगा। निरालाजीने कहा कि बहुत दिनोंसे एकही तरहकी तस्वीरें देखते-देखते इनकी रुचि एक तरहकी बन गई है। यदि कोई भी उनके इस रूढ़िवादको धक्का देता है तो वे 'अपनी अपार भारतीय सस्कृतिकी दुहाई देकर उसके देश-निकाले पर तुल जाते हैं।' अगर इन लोगोंसे पूछा जाता है कि भारतीय संस्कृति की कुछ ऐसी बातें बयान करें जो दूसरे देशोंमें मिलती ही न हों तो जवाब देनेके बदले यह दुश्मनकी तरह देखने लगते हैं। निरालाजी अपनी आलोचनामें लतीफोंका खूब प्रयोग करते थे। बनारसके एक गुजराती मित्रके पीताम्बरका जिक्र करते हुए कहते हैं कि, 'पहलेके आदमी पीताम्बर पहनकर भोजन करते थे या दिगम्बर होकर, यह सब बतलाना बहुत कठिन है। पर अगर ज़रा अक्लका सहारा लिया जाय तो दिगम्बर रहना ही विशेष रूपसे सनातन धर्म जान पड़ता है, कारण सनातन पुरुषके बहुत बाद ही कपड़ेका अविष्कार हुआ होगा।' इसलिए भारतीय संस्कृतिकी रक्षाके लिए यह ज़रूरी नहीं है कि हम दिन-पर-दिन उसे और संकुचित करते जाँय। ऐसा करनेवाले उसके प्राणघातक शत्रु हैं। उसकी रक्षा तभी हो सकती है जब उसे और व्यापक बनाया जाय।

आलोचकोंका मुँह बन्द करनेके लिये उन्हींके गढ़में घुसकर मार-काट मचानेकी नीति भी निरालाजीने अपनाई। आलोचक कहते थे, तुम्हे भाषा लिखना नहीं आता, तुम्हे छन्दोंका ज्ञान नही, तुम्हारे भाव उधार लिये हुए और शब्द निरर्थक होते हैं। निरालाजीने कहा, पहले तुम्हारे साहित्यकी ही बानगी देखी जाय। तुम लोग हिन्दीके बड़े-बड़े सम्पादक हो, देखें किस तरहकी भाषा लिखना सिखाते हो। इस युद्धके लिए 'मतवाला' की 'चाबुक' काममें आयी। छद्म नामोंसे निरालाजी इस स्तम्भमें हिन्दीके धुरन्धरोंके पैरोंके तलेकी जमीन खिसका देते थे। 'शारदा' में प्रकाशित एक कविताकी आलोचना करते हुए कहते हैं कि पास, हास आदि अनुप्रास बड़े ढगसे सजाये गए हैं क्योंकि, 'आजकलके तुक्कड़ तो बस अनुप्रासकी पूँछ पकड़कर कविता-वैतरणी पार होते हैं, भाषा और भावोंके संगठनपर चाहे पत्थर ही पड़े।' इसके बाद उद्धरण देकर वह साबित करते हैं कि भाषा और भावोंपर किस तरह पत्थर पड़े हैं। अन्तमे कविताकी पैरोडी करते हुए लिखते हैं :—

"तुकबन्दी के लिए तुम्हे हम
धन्यवाद देते कविराज।
किन्तु प्रार्थना, कविजी, रखना
भाषा भावों की भी लाज।"

'सरस्वती' को द्विवेदीजीने श्रेष्ठ पत्रिका बनाया था जो अँग्रेजीके 'माडर्न रिव्यू' और बँगलाके 'प्रवासी' से टक्कर लेती थी। निरालाजीने हिन्दी लिखना उसीसे सीखा था। लेकिन पदुमलाल पुन्नालाल बख्शीकी भाषामें निरालाजीको 'यत्र तत्र नहीं, प्रायः सर्वत्र दोष ही दोष देख पड़ते हैं।' इसी प्रकार 'माधुरी' सम्पादकोंकी भी खबर ली गई है। निरालाजीकी भाषा-सम्बन्धी आलोचनाका एक नमूना यह है। 'माधुरी' में लाहौरपर एक लेख छपा था जिसकी पहली पंक्ति यों शुरू होती थी,

'पुरातन कालसे चली आनेवाली पंजाबकी राजधानी लाहौरने जितने परिवर्तन देखे हैं...... ।' निरालाजी 'चली आनेवाली' टुकड़ेको लेकर कहते हैं, 'श्रीमती लाहौरके पैर बड़े मज़बूत हैं क्योंकि पुरातन कालसे चलती ही आरही हैं। कहीं बैठी नहीं, विश्राम ज़रा भी नहीं किया। न जाने अभी कब तक चलना पड़े। उनसे प्रार्थना है कि हिन्दी संसारमें इस तरह मनमानी चाल न चलें, क्योंकि इस बनमें बबूलके काँटोंकी कमी नहीं है। छिद जायेंगे तो निकालनेमें आफ़त होगी। उनके सपूत पंजाबी उन्हें चलाते हों तो चलावें, पर लखनवी सम्पादक, नज़ाकतकी राजधानीमें रहनेपर भी इतने बेदर्द होजायँ कि उन्हें चलनेसे न रोकें, यह बड़े परितापकी बात है।'

अगर किसीके हृदयमें 'पल्लव' शूलकी तरह चुभा हो, तो इसमें आश्चर्य क्या ? निरालाजी बबूलका काँटा लिए हुए सभी हिन्दी सम्पादकोंका स्वागत करनेके लिए तैयार थे।

पंडित रूपनारायण पाण्डेय बंगलाके अनुवादक भी थे, निरालाजी-को एक अस्त्र और मिला। एक जगह 'फुलकी' का अर्थ पाण्डेयजीने 'रोटी' लिखा था जबकि उसका अर्थ चिनगारी था। बंगलाके वाक्यका अर्थ है, उसका तरुण हृदय आगकी चिनगीकी तरह चारों ओर फैलरहा था। (ताहादेर भावप्रवण तरुण हृदय आगुनेर फुलकीर मतनेई स्वाधीन आनन्देर उज्ज्वलनाय क्षणे क्षणे आपनादिगके चारिदिके विकीर्ण करिते थाकितो।) पाण्डेयजीने अनुवाद किया था : 'उसका भाव प्रवण तरुण हृदय सिकरही फुलकी (रोटी) की तरह ही स्वाधीन आनन्दकी तरह फूल फूल उठता था।' पाण्डेयजीके अनुवादपर टीका करते हुए निराला जी कहते हैं, 'खूब ! पण्डित जी, जान पड़ता है, जिस समय आप अनुवाद कर रहे थे, उस समय भूख बड़े जोरोंकी लगी थी, नहीं तो रोटी क्यों सेकते ? यहाँ न कहीं रोटी है न दाल, फुलकी है सो वह भी चिनगारी

है रोटी नहीं।...कल्पना भी कैसी ! मूलमें तो है 'विकीर्ण करिते थाकितों' और अनुवादमें 'फूल-फूल उठता था।'...फूल-फूल उठना रूपनारायण जीकी रोटीके लिए ही उपयुक्त है। अच्छा है, सेंकिये रोटी।' यहाँपर यह कह देना आवश्यक है कि आगे चलकर निरालाजी पाण्डेयजीके प्रशंसक बन गये और उनके अनुवादोंकी बराबर दाद देते रहे।

युद्धभूमिमें यों ललकारे जानेपर हिन्दीके महारथी पीछे हटनेवाले न थे। पत्रिकाओंमें एक ज़बर्दस्त आन्दोलन शुरू होगया कि निरालाके सब भाव चोरीके हैं और भाषाको दुरूह बनाकर वह ज़बर्दस्ती हिन्दीवालों पर रौब जमाना चाहते हैं। हिन्दीके महारथी दूध पीते बच्चे नहीं हैं जो यों रौबमें आजायेंगे। हिन्दीके जितने साहित्यकोंने निरालाजीका विरोध किया, उन सबका उल्लेख किया जाय तो साहित्यिकोंकी अच्छी खासी Who's Who (परिचय पुस्तिका) तैयार हो जाय। यहाँ सिर्फ यही कहना काफ़ी है कि उनके समर्थकोंमें भी हिन्दीके कई जाने-माने साहित्यिक थे। पन्त और प्रसादने उनका साथ दिया; शिवपूजन सहाय, रामनाथलाल सुमन, नन्ददुलारे वाजपेयी आदिने अपने लेखोंमें इनका समर्थन किया। कवि सम्मेलनोंमें मुक्त छंदकी बहुत नक़लकी गई लेकिन उससे ज्यादा बार निरालाजीने 'जुहीकी कली' और 'शिवाजीका पत्र' सुनाकर जनता-को मंत्रमुग्ध कर लिया। उन्होंने कविताको सिर्फ घरमें पढ़ने और सम-झनेकी चीज़ बनाकर नहीं रक्खा; उसपर खुले आकाशके नीचे सहस्त्र किरणोंका प्रकाश पड़ने दिया। दुरूहताका उत्तर उन्होंने यह कहकर दिया कि देखो बड़ी बड़ी सभाओंमें पढ़नेपर लोग प्रभावित होते हैं। मुक्त छन्दकी खड़गतिका यह उत्तर दिया कि तुकबन्दीके सामने वह हमेशा अपनी धाक जमा लेता है। किसी भी छायावादी कविने, और विदेशमें भी किसी रोमांटिक कविने, इतने आत्मविश्वाससे जनताका सामना नहीं किया जितना निरालाने। कविता समझमें नहीं-आती यह प्रश्न मानो

जनताका नही, थोड़ेसे आलोचकोंका था। निस्सन्देह बड़ी-बड़ी सभाओं मे लोक-प्रियता पानेके कारण निरालाजी दृढ़तापूर्वक अपनी नई राहपर चलते रहे।

नए कवि सामाजिक प्रश्नोंको कितना महत्वपूर्ण समझते थे, यह निरालाजीके 'चरखा' नामके निबन्धसे प्रकट होजाता है। यह लेख कलकत्तेके 'श्रीकृष्ण सन्देश' में सन् १६२५ में प्रकाशित हुआ था। इसका सम्बन्ध उस वादविवादसे है जो रवीन्द्रनाथ ठाकुर और गाँधीजीमे चला था। निरालाजीने कविवर रवीन्द्रनाथका समर्थन किया है क्योंकि आचार्य प्रफुल्लचन्द्र रायने 'कविवरपर चरखेके प्रचारसे उदासीन रहनेके कारण अपवाद और लाञ्छन लगानेकी चेष्टा की थी।' निरालाजीका कहना है कि यह लेख उसीकी प्रतिक्रियाके कारण लिखा गया था, 'ठेठ भाषामें यह चपतका जवाब घूंसा है।' गाँधीजीके उत्तरके बारेमें निरालाजी कहते हैं कि उससे कविवरकी युक्तियोंका अन्धकार दूर नहीं होता। इसलिए निरालाजीको दोनोंके तर्क उद्धृत करके अपनी राय देनी पड़ी है।

रविबाबूकी पहली चरखा-विरोधी दलील यह थी कि विधाताने ही मनुष्योंको इसलिए पैदा नहीं किया कि वे मक्खियोंकी तरह एक ही नमूने का छत्ता बनाये। निरालाजी पूछते हैं कि विधाताकी यही इच्छा है, यह आपको कैसे मालूम हुआ? हिन्दू समाजके चार मुँहवाले विधाता अपनी राय सुना गये थे, या ब्राह्म-समाजके बिना नाक-कानवाले परमपिताने ही किसी ख़ास तरीक़ेसे यह ध्वनि अदा की थी। मतलब यह कि विधाता का नाम लेकर समाजके विधाताओंको नहीं हटाया जा सकता। निरालाजी की रायमें यह युग उन लोगोंका है जो संघशक्तिमें विश्वास रखते हैं, और उसीके द्वारा संसारमें बड़े-बड़े कार्य सम्पन्न करना चाहते हैं। व्यक्तिगत स्वतन्त्रताका पक्ष लेकर रविबाबू बेवक्तकी रागिनी छेड़ रहे हैं। संघ-

बद्ध होनेसे समष्टि और व्यष्टि दोनोंको ही फ़ायदा पहुँचता है। सब आदमियोंका, अपनी दुर्दशा दूर करनेके लिए, एक ही कार्यमें सम्मिलित होना पाप नहीं है। "हम पुण्य उसे ही मानते हैं जिसमें अधिक संख्यक मनुष्यों को लाभ हो जिससे वे सुखी हों।"

निरालाजी मानते हैं कि कवि समाजका उतना ही उपकार करता है जितना कि राजनीतिक नेता। लेकिन चरखेके खण्डनमें कविवर युक्ति से बाहर पहुँच गये हैं। अपने अज्ञानको ईश्वरके अस्तित्वका साक्षी न मान लेना चाहिये। एकाध जगह कविवरमें अपनी श्रद्धा भूलकर निरालाजी उनके वर्गपर ही प्रहार कर बैठे हैं।—"भोजन-वस्त्रका सवाल किसी एकके लिये नहीं है, अनेकोंको उसके हल करनेकी आवश्यकता है—सिर्फ आप जैसे ज़मीदारोंको छोड़कर।" जो स्वतन्त्रता संघ कार्यमें बाधक होकर मनुष्यको वास्तविक स्वतन्त्रता पानेसे रोकती है, उसका रूप निरालाजीने अच्छी तरह प्रकट कर दिया है। वह कहते हैं, 'दरअस्ल जिसे आप व्यक्तिगत स्वतन्त्रता कह कर चरखेका विरोध करना चाहते हैं, वह स्वतन्त्रताके नकाबमें ढकी हुई घोर परतन्त्रता और हठधर्मी है. जबकि उससे व्यक्तिगत फ़ायदेके बदले नुक़सान होता है—असंगठित रहनेके कारण।'

यह लेख एकसे अधिक अङ्कोंमें निकला था, एक जगह उन्होंने अपनी बीमारीका जिक्र किया है जिससे लेख पूरा होनेमें विलम्ब हुआ। अपनी स्थिति साफ़ करते हुए उन्होंने लिखा है कि विवादियोंमें अमृत और विष दोनों हैं। समय न मिलनेसे वह 'गाँधीजीका ज़हर' निकाल कर जनताके सामने नहीं रख सके। सामाजिक विकासके पश्चिमी सिद्धान्तों का खण्डन करते हुए वह भारतकी वर्ण-व्यवस्थाका समर्थन करते हैं। छोटे-बड़ेके प्रश्नपर वह कहते हैं कि दर्शनशास्त्रमें सिर और पैरका भेद नहीं माना गया। बौद्धधर्म इसीलिये उखड़ गया कि वर्णाश्रम धर्मका

विरोधी था। उन्होंने रवि बाबूके इस मतका खण्डन किया है कि युगोंसे द्विज लोग शूद्रोंको धोखा देते रहे हैं और उनका शोषण करते रहे हैं। आगे चलकर 'तुलसीदास' आदि कविताओंमें उन्होंने इसी शोषणके प्रभावशाली चित्र खींचे हैं। उनका वर्णाश्रम धर्मका यह समर्थन क्रमशः निर्बल पड़ता गया।

इस लेखमें विचारोंका एक सिलसिला नहीं बँध पाया। उनका लक्ष्य है कि हिन्दू शास्त्रोंकी बुनियादपर रवीन्द्रनाथके मतका खण्डन करें और गाँधीजीके तर्कोंकी निर्बलता भी सिद्ध करदें। इस महान् कार्यमें शास्त्रोंने निरालाजीकी उचित सहायता नहीं की।

इस लेखका महत्त्व इस बातमें है कि निरालाजीने मुक्त कण्ठसे समाज सेवाका महत्व स्वीकार किया, और उस स्वतन्त्रताका विरोध किया जो सभी मनुष्योंके सम्मिलित सुखी जीवनमें बाधक हो। द्विवेदी युगकी संस्कृतिका अभी इतना प्रभाव बाकी था कि वे वर्णाश्रम धर्मका समर्थन करें। इसका फल यह हुआ कि छायावादकी काल्पनिकता उनके यथार्थवादपर अपना रंग चढ़ाने लगी। जिन करोड़ों दीन, किसानों का उन्होंने जिक्र किया था, उनकी कहानी न लिखकर वे 'अप्सरा' उपन्यासमें अपने ही अभावोंकी सुखमय पूर्ति करने लगे। सन् '२५ से लेकर लगभग आठ वर्ष तक उनके साहित्यमें इस कल्पना-प्रधान वृत्तिका ज़ोर रहा। 'गीतिका' के गीतोंमें, 'लिली' की कथाओंमें वे अपने अभावोंकी काल्पनिक पूर्ति करनेमें लगे रहे हैं। लेकिन इस पूर्तिसे उन्हे कभी सन्तोष नहीं हुआ। काल्पनिक पूर्तिसे असन्तोष और बढ़ता ही गया। सन् '३३-'३४ के लगभग उनके साहित्यमें एक नई यथार्थवादी धाराका जन्म हुआ।

६

नया कथा साहित्य

सन् '३१ के आरम्भमें निरालाजीका पहला उपन्यास 'अप्सरा' प्रकाशित हुआ। भूमिकामें उन्होंने हिन्दीके सभी उपन्यासकारोंको ललकारा। उपन्यासकी तारीफ़ करते हुए कुछ लोगोंने उन्हें विक्टर-ह्यूगो और टॉल्स्टॉयके बराबर गद्दी दी और कुछ लोगोंने कहा कि गंगा-ग्रंथागार ऐसी ही रचनाएँ प्रकाशित करेगा तो कुछ दिनमें कूड़ागार हो जायगा।

अप्सरा यानी कनक एक नर्तकीकी लड़की है; उसके पिता, ग़ैर-कानूनी तौरपर, एक महाराजकुमार थे। एक दिन कनक कलकत्तेके ईडन गार्डनमें बैठी हुई थी, तभी एक अँग्रेज़ने आकर उसका हाथ पकड़ लिया। अप्सरा उसके यमपाशमें फँसना ही चाहती थी कि एक भारतीय नवयुवकने पीछेसे साहबको दबोच लिया। तरुण युवक कसरत कुश्तीका शौकीन था; वह रियाज़ आखिर और किस दिन काम आता? छूटकर फिर हुई तो साहब चित्त आए। कौन ऐसा युवक होगा जो एक सुशिक्षिता और सुन्दरी तरुणीके सामने एक गौरांग आततायी को धराशायी बनाकर इस प्रकार अपना शौर्य प्रदर्शित न करना चाहता हो? वह युवक कल्पनामें जिस परिस्थितिकी तस्वीर देखा करता होगा, वह अचानक सामने आगई। वह कुछ-कुछ हिन्दीका लेखक भी था। रंगमंचसे उसे बड़ा प्रेम था, यद्यपि हिन्दीके रंगमंचसे उसे बड़ा असंतोष था। वह अपने अभिनय द्वारा एक महान् परिवर्तन करके एक नये रंगमंचकी नींव डालना चाहता है।

कनक महाराजकुमारकी लड़की थी और युवक भी कम-से-कम नामसे राजकुमार है। शकुन्तला नाटकमें वह दुष्यन्त बनता है। शकुन्तलाका पार्ट लाज़मी तौरपर कनक करती है। इस रहस्यको राजकुमार स्टेज पर ही जान पाता है। अपने कल्पना-लोककी आदर्श तरुणी अभिनेत्री के रूपमें देखकर रंगमंचके लिए उसका सारा उत्साह ठंडा पड़ जाता है। कनकके प्रति उसके हृदयमें घृणा उत्पन्न होगई। शायद नाटक बिगड़ जाता लेकिन तभी पुलिस सुपरिंटेंडेंटने आकर राजकुमारका उद्धार किया। यह वही महाशय थे जिन्होने कनकका हाथ पकड़ा था और जिन-पर राजकुमारने अपने खास दाँव खर्वाँ किये थे। किसी तरह पार्ट पूरा करनेकी मोहलत मिली और वह हिरासतमें ले लिया गया।

कनकके प्रति राजकुमारके हृदयमें भले ही घृणा रही हो, कनकके हृदयमें तो उसके लिये प्रेमका समुद्र उमड़ रहा था। उसने त्रिया-चरित्र का वह जाल फैलाया कि सुपरिंटेंडेट हैमिल्टन उसकी धोती पहनकर नाचने लगे, दारोग़ा साहब अलग कमरेमें चित्त हुए और मैजिस्ट्रेट रॉबिन्सन साहब वहाँ आकर यह सब देखते ही रह गए। इस तरह कनक ने उस प्राचीन भठियारिनकी परम्पराको निबाहा जिसने दारोगाके मुँहमें कालिख लगाकर उन्हे दीवट बनाया था और कोतवाल साहबको लहँगा पहनाकर उनसे चक्की पिसवाई थी।

कनक अपने प्रेमीको छुड़ाकर घर ले आती है, लेकिन देश-सेवाका व्रत लेनेके कारण वह प्रेमीके दर्जे तक नहीं पहुँचता। Traveller must you go? (मुसाफ़िर क्या जाओगे ही?) की नायिकाकी तरह अपने बाहुपाशमें वह उसके चरणोंकी गतिको बाँध रखना चाहती है लेकिन राजकुमार मुसाफिरसे भी अधिक कठोर हृदय होकर उसका हाथ झटक देता है और चूड़ियोंके टूटनेसे कनककी कोमल कलाईसे रक्तकी बूँदे टपकने लगती हैं। क्रान्तिकारी राजकुमार अपने ब्रह्मचर्यकी रक्षा

करता हुआ वहाँसे भाग निकलता है। उसका साथी चंदनसिंह पकड़ लिया गया है; इसलिए इस निष्ठुर बिदाईके लिए उसे कुछ बहाना भी मिल जाता है।

राजकुमार कनकके यहाँसे चन्दनकी भाभीके घर पहुँचता है और अपने साथीकी क्रान्तिकारी पुस्तकें वहाँसे हटाता है। फिर भाभीको लेकर मायके छोड़ने चल देता है। उधर कनककी माँ सर्वेश्वरी एक कुँअर साहबसे बयाना लेकर पुत्री सहित वहीं जा पहुँचती है जहाँ चन्दनकी भाभीका मायका है। कनक बुरी तरह घिर जाती है और इस बार चंदन उसकी रक्षा करता है। पुनर्मिलन होना स्वाभाविक था। सब लोग कलकत्ते आते हैं और राजकुमार तोबा तोड़कर कनकसे विवाह कर लेता है। उसके नाम गिरफ्तारीका वारंट भी है। उसका साथी चन्दन अपना नाम राजकुमार बताकर अपनेको पकड़ा देता है और इस तरह कनक और राजकुमारका मार्ग निष्कंटक हो जाता है।

'अप्सरा' में आजकलके सिनेमा-कथानकोंके बहुतसे गुण मौजूद हैं। रोमांसके साथ देश-सेवाका आवश्यक पुट विद्यमान है। निरालाजी ने मानो उस मनोवृत्तिको भाँप लिया था जो सिनेमाके द्वारा समाजमें इतनी लोकप्रिय हुई। नायक पढ़ा-लिखा, देखने-सुननेमें सजीला और देशका सेवक भी होना चाहिए। अगर वह क्रांतिकारी हो तो देशसेवामें घटना-वैचित्र्य भी आजाता है। नायिका धनी हो और उसे नायकके त्यागमय जीवनसे सहानुभूति हो, इससे अधिक मनोहर दृश्य और क्या होगा। विरोधियों की आशंकाओंके विपरीत 'अप्सरा' को काफ़ी लोकप्रियता मिली और निरालाजीने अन्य कथाओंमे नायक-नायिकाओंकी एक चित्रावली तैयार कर दी जिनकी शक्ल-सूरत कनक और राजकुमारसे मिलती जुलती है।

राजकुमार साहित्यिक है, कुश्ती-क़सरतका शौक़ीन है, क्रिकेटमें

सेन्चुरी कर चुका है, एम. ए. का विद्यार्थी है, काफ़ी अमीर है हालाँ कि कमरेमें बीड़ीके टुकड़ोंका ढेर है। उसके पुराने हिन्दू संस्कारोंसे वह वैवाहिक जीवनको विच्युति समझता है। वह उसी राहपर चलना चाहता है जिसपर शंकराचार्यसे विवेकानन्द तकके ब्रह्मचारी साधु चले थे। उसे वेश्या-पुत्री कनक मिलती है जो एक प्रसिद्ध भजन गाती है—श्री रामचन्द्र कृपालु भज मन हरण भव भय दारुणम्। उसका ऐश्वर्य, रूप, शिक्षा, सभी अनुपम हैं। हिंदी ही नहीं, अँग्रेजीकी भी उसे ऐसी शिक्षा मिली है कि सुनकर अँग्रेज मैजिस्ट्रेट भी प्रभावित होजाता है। ये सब कार्य उसने सोलहकी अवस्थामें ही सम्पन्न कर लिए हैं। 'गीतिका' में जिन सुन्दरियोंका गौरवगान किया गया है मानो यहाँ गद्यमें उन्हींकी विस्तृत व्याख्या की गई है। 'कनक धीरे धीरे सोलहवें वर्षके चरणमें आपड़ी। अपनी देहके वृन्तपर अपलक खिली हुई, ज्योत्सनाके चन्द्र पुष्प की तरह, सौंदर्योज्ज्वल पारिजातकी तरह एक अज्ञात प्रणयकी वायुसे डोल उठती है।' आगे चलकर जैसे उन्होंने तृप्तिको ही परम तत्वका रूप दे दिया, वैसे ही यहाँपर भी उपन्यासका अन्त उन्होंने इस भावनासे नहीं किया कि विवाह करनेसे राजकुमारका पतन हुआ। देशका काम तो उसने चन्दनके लिये छोड़ दिया है और वह मनमे सोचता है, 'मैंने परिपूर्ण पुरुष देह देकर सम्पूर्ण स्त्री मूर्ति प्राप्त की, आत्मा और प्राणोंसे संयुक्त, साँस लेती हुई, पलकें मारती हुई, रससे ओत प्रोत, चञ्चल, स्नेहमयी।' उपनिषद्के एक मंत्रमें कहा गया है कि ब्रह्मकी प्राप्तिसे वैसे ही सुख मिलता है जैसे स्त्री और पुरुषको परस्पर मिलनसे। निराला जीने इस मन्त्रको उलटकर यों पढ़ा है, 'तत्वके मिलनेपर जिस तरह सन्तोष होता है, राजकुमारको वैसी ही तृप्ति हुई।'

उपन्यासमें घटनाओंकी प्रधानता है, और घटनाएँ भी उस असाधारण कोटिकी हैं कि उनपर सहसा विश्वास नहीं होता। राजकुमारका

मानसिक द्वन्द सीधा सादा और बचकाना है। चन्दन उसीका दूसरा रूप है और एक व्यक्तित्वके दो टुकड़े करके ही निरालाजी विवाद और देशसेवाकी गुत्थीको सुलझा सके हैं। चन्दन काफ़ी विलम्बसे उपन्यास-में प्रवेश करता है और उसके आनेसे राजकुमारका रंग फीका पड़ जाता है। चन्दन और राजकुमार,—दोनों ही के चरित्रोंमें युवकोचित कल्पनाओं को आदर्शरूप दिया गया है। ये ऐसे व्यक्ति हैं जो साधारण नवयुवकोंके कल्पना लोकमें निवास करते हैं, परन्तु जो यथार्थकी ठोस धरतीपर चलते-फिरते कम दिखाई देते हैं। इसके विपरीत साधारण पात्रोंका चित्रण बहुत ही सजीव हुआ है। जैसे कुँवर साहब जिनका नाम "प्रतापसिंह था, पर थे वे बिलकुल दुबले-पतले। इक्कीस वर्षकी उम्रमें ही सूखी डालकी तरह हाथ पैर, मुँह सीपकी तरह पतला होगया था। आँखोंके लाल डोरे अत्यधिक अत्याचारका परिचय दे रहे थे।" नाटक देखनेवालों और कचहरीके वकीलोंका वर्णन करते हुए निरालाजीने अपनी व्यंगपूर्ण शैलीका परिचय दिया है। गाँवकी स्त्रियोंकी बातचीत भी बड़ी स्वाभाविक है। यहाँ उस यथार्थवादका संकेत मिलता है जिसे अपनाकर निराला जी अधिक सजीव कलाके उदाहरण दे सके।

'अलका' उपन्यासके नाममें 'अप्सरा' की झनकार है। नामसे यह नहीं मालुम होता कि इस उपन्यासका सम्बन्ध किसानोंके जीवनसे भी होगा। 'अलका' का वास्तविक नाम शोभा है और इन्फ्लुएंजामें परिवार नष्ट होजानेके कारण वह स्नेहशंकरके यहाँ आश्रय पाती है। अप्सराकी तरह अलका भी 'पिताके सुखकर वृन्तपर प्रस्फुट कली-सी कल्पनाके समीरसे अपनी ही हदमें हिल रही है— सरोवरके वृन्तपर फलित एक किरण उसके नवीन जीवनकी चपलता।' यह रोमांस अब कितना नीरस होरहा था, इसका प्रमाण यह है कि वृंतपर खिली कलीके सिवा निराला-जीको और कोई उपमा ही न मिलती थी। इसका नायक एक विद्यार्थी है।

जिसें अप्सराके राजकुमारकी तरह राजनीतिसे दिलचस्पी है। जैसे अप्सरा ने पुलिस सुपरिंटेंडेटको प्रभावित कर लिया था, वैसे ही विजय भी डिप्टी-साहबके सामने पेश होकर उन्हे प्रभावित कर लेता है। उसका छद्मनाम प्रभाकर है और इसी नामका एक नायक और एक अगले उपन्याम 'चोटीकी पकड़' में आता है। ताल्लुक़दार मुरलीधरके गुर्गे गाँवकी बहू शोभाको पकड़कर उसे मालिककी नजर करना चाहते हैं। उसका पति विजय कलकत्तेके बजाय बम्बईमें विद्यार्थी है। कलकत्तेके चित्रणमें ईडन गार्डेन वग़ैरहका ज़िक्र था लेकिन बम्बईका सिर्फ़ नाम ही नाम है। विजयको न तो हम मॅरीन ड्राइव पर टहलते देखते हैं और न जुहू बीच-पर किसी अप्सरापर आक्रमण करनेवाले किसी गौराग आततताईको रगेदते देखते हैं। पतिके पासमें रहते हुए शोभाके मायके और ससुरालके परिवार इंफ्लुएंजामें नष्ट हो जाते हैं। वह एक आदर्श जमींदार स्नेहशंकरके यहाँ आश्रय पाती है। यह परम ज्ञानी और साधु पुरुष हैं, यद्यपि वे लगान कैसे वसूल करते हैं, इसकी कोई ज्ञानमय पद्धति निरालाजीने नहीं बताई। उनके रामराज्यमें ज़मीदार और किसान दोनों ही खुश हैं। विजय, बम्बईसे लौटकर किसानोंमें काम करता है और इसके लिए उसे साल भरकी सज़ा भी होती है। छूटनेके बाद वह मज़दूर आन्दोलनकी तरफ खिंचता है और कुलियोंमें जाकर काम करने लगता है। शोभा भी बिना पतिको पहचाने इस सेवा क्षेत्रमें उससे भेंट करती है। प्रीति पुरातन लखै न कोई : दोनों एक दूसरेकी तरफ खिंच जाते हैं। पड़ोसमें खलनायक मूरलीबाबू भी आकर ठहरते हैं और अन्तमें अलकाकी गोली खाकर इस असार संसारसे बिदा हो जाते हैं। अलका और प्रभाकर अपने मौलिक रूपमें शोभा और विजय बनकर अपने विवाहित जीवनका मूल और अविवाहित रोमांसका व्याज वसूल करते हैं। चन्दनका दूसरा रूप अजित विजयसे कहता है : 'तुम्हे वही किसान फिर बुला रहे हैं भाई !' पता नहीं, राजकुमारकी तरह वह भी परमतत्वका आनन्द लेतारहा या फिर किसानोंका संगठन करने गया।

सन् '३० में जो आन्दोलन चला था, उससे किसानोंकी स्थितिमें कोई मौलिक परिवर्तन न होगा, यह निरालाजीने देखा था। लेकिन जो भी परिवर्तन होगा वह किसी तरह होगा इसकी साफ तस्वीर 'अलका' में नहीं आई। स्नेहशंकरको देखकर तो यह मालूम होता है कि अगर इसी तरहके सभी ज़मींदार हों तो ज़मींदारी प्रथाके होते हुए भी किसानोंके लिए रामराज्य होजाय। लेखकको यह विश्वास नहीं कि किसान अपने संगठन के बलपर अपनी स्थितिमें कोई परिवर्तन कर सकते हैं। स्नेहशङ्कर कहते हैं : 'जनता वाह वाह करती है और बजानेवाले देवताको पुष्पमाला लेकर यथाभ्यास जैसा सुझाया गया, पूजनेको दौड़ती है।' इसमें सन्देह नहीं कि बहुतसे नेता जनताको भ्रममें डाल देते हैं, परन्तु यह भ्रम बहुत दिनों तक नहीं चलता। किसान अपने अनुभवसे सच और झूठका भेद समझ लेते हैं। स्नेहशङ्कर किसानोंमें शिक्षा-प्रचारपर जोर देते हैं लेकिन उन्हे क्या सिखाया जाय, यह नहीं बताते। इसी प्रकार विजय किसानोंका सगठन करने तो जाता है लेकिन वे संगठित होकर किसके खिलाफ़ और कैसे लड़ेंगे यह वह साफ़-साफ़ नहीं बताता। यह स्पष्ट है कि यह उपन्यास निरालाजीके जीवनमें संक्रमण-कालका द्योतक है। वे इस बातका अनुभव करने लगे हैं कि उनकी रोमासकी दुनिया ज्यादा दिन न चलेगी। अपनी कलाके विकासके लिये जनताके दुःख दर्दकी तस्वीरें खींचना ज़रूरी है। इस कशमकशमें ज्यादा खिंचाव अब भी रोमांसकी दुनिया का है।

उपन्यासके आरम्भमें उन्होंने पहले महायुद्धके बाद अवधकी दुर्दशा का प्रभावशाली वर्णन किया है। गङ्गाके किनारे उन्होंने जो लाशोंका जमघट देखा था, उसे उन्होंने कथाकी पृष्ठ भूमि बनाया है। आगे चल कर इसी दृश्यका उन्होंने 'कुल्लीभाट' में और विस्तारसे वर्णन किया। 'अलका' में लिखा था : 'गङ्गाके दोनों ओर दो-दो और तीन-तीन कोस पर जो घाट हैं उनमे हर एकपर एक-एक दिनमें दो-दो हजार लाशे पहुँ-

न्वती हैं। जलसय दोनों किनारे शवोंसे ठँसे हुए, बीचमें प्रवाहकी बहुत ही क्षीण रेखा; घोर दुर्गन्ध, दोनों ओर एक-एक मील तक रहा नहीं जाता।" इसके साथ लड़ाईमें जीतनेकी खुशियाँ हैं, खुशियाँ मनानेके लिए किसानोंपर अत्याचार होता है और इस अत्याचारका मुकाबिला करनेके लिए किसानोंमें बहुत हल्की-सी प्रतिक्रिया होती है। ग़दरमें जिन लोगोंने देशके प्रति विश्वासघात किया था, वे विदेशी प्रभुओंके साथ मिलकर किसानोंके शोषक बन गये। इसी तरह के ताल्लुक़दार बाबू मुरलीधर हैं। निरालाजीने इन्हें एक ही वाक्यमें अमर कर दिया है: "जबसे मुरलीधर पैतृक सिंहासनपर अपने नामकी मुरली धारण कर बैठे, बराबर सनातन प्रथाके अनुसार सरकारी अफ़सरोंकी सुहावनी सोहनी छेड़ते जारहे हैं।" इस व्यङ्गपूर्ण शैलीमें निरालाजीका कौशल एकमेवाद्वितीयम् है।

गाँवके किसानोंमें स्वराज्यको लेकर बड़ा मनोरञ्जक विवाद होता है। इस समस्याके सभी यथार्थवादी पहलू उनके सामने हैं और उनसे नज़र चुराकर वे समस्याके हल करनेमें विश्वास नहीं करते। उनकी समझमें नहीं आता कि पुलिस तोपवाली सरकार किसानोंका राज कैसे बन जाने देगी। एक किसान चमत्कारोंका सहारा लेकर कहता है कि "गंधी महरानी"के प्रतापसे पुलिस और फौजके हाथ बँधे रह जायेंगे। तभी बेगार न करनेके लिए बुधुवा किसानपर मार पड़ती है और यह चमत्कारवाद वहीं समाप्त होजाता है।

'अलका' के कथानकमें कई एक सूत्र हैं और कहीं-कहीं तो वे एक दूसरेसे छूट भी जाते हैं। अजित और वीणाका एक गुट है, स्नेहशङ्कर और शोभाका दूसरा, मुरलीमनोहर और उनके गुर्गोंका तीसरा। इतने पात्रोंको खुलकर बढ़ने और विकसित होनेका अवसर ही नहीं मिलता। शोभा ज्योतिकी पुतली बनी रहती है मानो उसकी रचना इसीके लिये हुई है

कि लोग उसे देखे तो बस देखते ही रह जाँय। उसके चरित्रमें प्रकाश और छायाका नाटकीय सम्मिश्रण, भावोंका उतार-चढ़ाव, मानव सुलभ दुर्बलता और संघर्ष, इन सबका अभाव है। उपन्यासके यथार्थवादी वातावरणमें शोभा ऐसे चित्रित की गई है जैसे कँटीले झाड़ोंके बीचमें जुहीकी कली खिली हो। लेकिन उन कँटीले झाड़ोंके ही कारण निराला-जीके साहित्यिक विकासमें यह एक नया कदम है।

निरालाजीकी छायावादी कहानियाँ मानों उनके उपन्यास 'अप्सरा' का ही छोटा प्रतिचित्र हैं। बड़े कैनवसके बदले जैसे कागज़के छोटे-छोटे टुकड़ोंपर वॉटर कलरसे रंगामेज़ी की हो। कहानीकी हीरोइनें प्रायः सभी सोलहवें सालकी अधखुली कलियाँ हैं और हीरो या तो बड़े बापका बेटा है या पढ़-लिखकर खुद उतना ही बड़ा बन जाता है। राजनीतिमें उसका झुकाव आतङ्कवादकी ओर होता है और देश-सेवाके लिए वह रामकृष्ण मिशनके साधुओंकी तरह ब्रह्मचर्यको भी आवश्यक समझता है। लेखकके सामने देशकी सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक समस्याएँ आती हैं लेकिन इनका समाधान कभी वह अध्यात्मवादसे करता है, या ऐसे यथार्थवादसे जो अध्यात्म-तत्वकी ही तरह आदमीकी पहुँचसे बाहर है।

उनकी हीरोइनोंके कुछ चित्र देखिये। पद्मा,—"चन्द्रमुखपर षोड़श कलाकी शुभ्र चन्द्रिका अम्लान खिल रही है। एकान्त कुञ्जकी कली-सी प्रणयके वासन्ती मलय स्पर्शसे हिल उठती, विकासके लिए व्याकुल हो रही है।" ज्योतिर्मयी,—"नील पलकोंके पङ्खोंसे युवतीकी आँखें अप्सराओं-सी आकाशकी ओर उड़ जाना चाहती हैं, जहाँ स्नेहके कल्प-वसन्तमे मदन और रति नित्य मिलते हैं।" कमला—"सोलहवें सालकी अध-खुली धुली कलिका है। हृदयका रस अमृत-स्नेहसे भरा हुआ, खिली नावों-सी आँखें, चपल लहरोंपर अदृश्य प्रियकी ओर पर; और अपराकी

तरह बही जा रही हैं।" आभा—"आजकी शरत्की तरह अपनी सारी रंगीनियोंको धोकर शुभ्र होरही—श्वेत शेफाली-सी रँगे प्रभातके रश्मिपात मात्रसे वृंतच्युत—जैसे केवल देवार्चनके लिये चुनी हुई। पर, प्राणोंके नीचे डंठलमें जो रंग लगा हुआ है, वह तो शरत्का नहीं, वसन्तका है।"

हिन्दी कहानी साहित्यमें निरालाजीने इन छायावादी हीरोइनोंका गृहप्रवेश कराया। इन आकाशकी ओर उड़ती आँखों, अम्लान शुभ्र चन्द्रिका, और मलयस्पर्शके आगे पुरानी नायिकायें उन्हें फीकी लगीं हों तो इसमें कोई आश्चर्य ही क्या। 'लिली' कहानी-संग्रहकी भूमिकामें उन्होंने लिखा था : "मुझसे पहलेवाले हिन्दीके सुप्रसिद्ध कहानी लेखक इस कला को किस दूर उत्कर्ष तक पहुँचा चुके हैं, मैं पूरे मनोयोगसे समझनेका प्रयत्न करके भी नहीं समझ सका। समझता, तो शायद उनसे पर्याप्त शक्ति प्राप्त कर लेता और पतनके भयसे इतना न घबराता।" निरालाजी हिंदी कहानियोंके उत्कर्षको क्यों नहीं समझ पाये, इसका कारण उनकी छायावादी हीरोइनोंका अनुपम उत्कर्ष ही है।

'प्रद्मा और लिली' कहानीका हीरो राजेन्द्र जजका बेटा है; विलायतसे बैरिस्टरी पास करके देशसेवाके काममें लग जाता है। पद्मा के पिता ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट हैं और वह राजेन्द्रके साथ कालेजमें पढ़ती है। दुर्भाग्यसे पद्मा ब्राह्मण है और राजेन्द्र क्षत्रिय। पिता मरते मरते कह गये कि बेटी दूसरी जातिमें ब्याह न करे। इस सामाजिक समस्याका समाधान था तो दोनोंमेंसे एकके मरनेसे हो सकता था या फिर जाति-बन्धन तोड़ करके दोनोंके ब्याहसे। निरालाजीने एक तीसरा समाधान ढूँढ़ निकाला। जजका बेटा और ऑनरेरी मैजिस्ट्रेटकी बेटी, दोनों ही अखण्ड ब्रह्मचर्यका व्रत धारण करके देशकी सेवामें लग जाते हैं!

'सखी' कहानीका नायक आई० सी० एस० है। निर्धन लीला एम०

ए० में पढ़ती है और ट्यूशन करके किसी तरह अपना खर्च चलाती है। भैंसाकुंडकी सड़कपर गुण्डे उसका पीछा करते हैं कि तभी उसके कल्पना लोकका आई० सी० एस० सड़कपर आकर उसकी रक्षा करता है।

'न्याय' कहानीका हीरो एक घायल आदमीको घर लानेके कारण पुलिसके चंगुलमें फँस जाता है। अप्सराकी तरह उसकी सहपाठिनी प्रेमिका अपनी विलक्षण बुद्धिसे उसे छुड़ा लाती है।

'सफलता' का नायक साहित्यिक नरेन्द्र है। पैसोंका मुहताज है, इसलिए प्रेमिका आभाको साथ नहीं रख सकता। सोचता है कि नाटक मंडली चलानेसे बहुतसा पैसा हाथ आ सकता है और फिर तो धूर्त प्रकाशकों की अक्ल भी ठिकाने लगाई जा सकती है। वह आभाको संगीतकी शिक्षा देता है और बढ़ते-बढ़ते अभिनेतासे कम्पनीका धनी मालिक बन जाता है। इधर उसका पुराना प्रकाशक भी पुस्तकोंकी बदौलत सिनेमा साहित्यका उद्धार करनेके विचारसे 'पवित्रा' नामकी एक रंगशाला बनवा लेता है। नरेन्द्रकी कम्पनी उसके नगरमें पहुँचती है तो प्रकाशक उससे अपनी रंगशालामें अभिनय करनेके लिये कहता है। शर्तें तय न होनेपर नरेन्द्र पुरानी कसर निकालता है और कहता है: "बाबू धनीराम जी, मैं छः महीनेमें एक किताब लिखता था पर उसके लिये आपने मुझे पन्द्रह रुपया सैंकड़ा भी नही दिया।" यों प्रकाशकसे बदला लेकर नरेन्द्र बाहरकी पृथ्वीमें प्रकाशकी तरह प्रसिद्ध होजाता है।

इसी तरहका प्रतिशोध 'श्यामा' के नायकने अपने विरोधियोंसे लिया है। वह ब्राह्मण है लेकिन लोधकी लड़कीसे ब्याह करता है। पढ़-लिख कर डिप्टी-कलेक्टर होजाता है और फिर तो यह लाज़मी था कि उसीकी अदालतमें उसके पुराने दुश्मन पण्डित दयारामका मुक़-दमा पेश हो। इसके बाद पण्डित दयाराम हाकिमके बंगलेपर सौ रुपयेकी डाली सजाकर पहुँचते हैं। श्यामाने पिताके अपमानको याद करते

हुए अपने अर्दलीको आज्ञा दी: "डाली समेत इसे कान पकड़ कर बाहर निकाल दो।"

एक प्रतिशोधकी कहानी और भी लीजिए। 'कमला' के पति एक झूठे अपवादके कारण उसे छोड़ देते हैं लेकिन वह एक सच्ची पति-व्रताके समान पतिदेवकी आराधनामें लगी रहती है। उसकी तपस्याके प्रभावसे या दैवगतिसे पतिदेवकी ही वहन ऐसी परिस्थितिमें पड़ जाती है कि गाँवके लोग उनसे किसी तरहका व्यवहार नहीं रखना चाहते। न्याय ठुकराई हुई पत्नीके यहाँ पतिदेवसे भीख मँगवाता है। भिक्षुक पतिको कमला पहचान लेती है और उनके अपराध ही नहीं क्षमा करती वरन् जातिसे निकाली हुई उनकी वहनके ब्याहके लिए अपने भाईको भी पेश कर देती है। परन्तु कमला फिर पतिके पास नहीं आती। "स्त्रियाँ उसे देवीके भावसे मन-ही-मन अपना आदर्श मानकर पूजती हैं।" इस कहानीमें समस्याका समाधान नहीं हुआ। परित्यक्ता नारी स्त्रियोंसे पूजे जानेपर भी फिर अपने गृहिणीके स्थानको नहीं पा सकी। ऐसी ही एक समस्याका काल्पनिक समाधान 'ज्योतिर्मयी' में है। वह बाल-विधवा है लेकिन ससुराल कभी नहीं गई और उसे पतिका स्मरण तक नहीं। वह विजयसे ब्याह करना चाहती है लेकिन विधवा होनेके कारण समाज उसके आड़े आता है। इस गुत्थीको सुलझानेके लिये विजयका मित्र वीरेन्द्र अठारह हज़ार रुपये खर्च कर देता है। वह अपने बापका इक-लौता बेटा है, इसलिये पिताजी उसके किसी काममें दखल नहीं देते; फिर यह तो धरमका काम था। वीरेन्द्र अपने मैनेजरको लड़कीका बाप बनाकर उससे कन्यादान करा देता है। इसपर रुद्राक्षकी माला पहनने वाले और रक्तचन्दनका टीका लगाने वाले विजयके पिताको भी कोई आपत्ति नहीं होती।

'अर्थ' की समस्या शीर्षकके अनुसार ही आर्थिक है। पिताकी

मृत्युके बाद सीधासादा युवक रामकुमार लोगोंके बहकावेमें आकर सारी पूँजी यों ही उड़ा देता है। युवती पत्नीका भार अलग सम्हालना है। अन्तमें वह भरतजीसे सहायता लेनेका निश्चय करता है। विश्व भरण पोषण कर जोई,—उसीका नाम तो भरत है। उसे विश्वास है कि जप पूरा होनेपर भरतजी अपना नाम अवश्य सार्थक करेंगे। पूजाके उपरान्त वह भावी धन-प्राप्तिका सुख संवाद पत्नीको सुनाने जाता है। भरतजीसे कोरा जवाब मिलनेपर दफ़्तरोंमें अर्जियाँ देता है। अन्तमें चित्रकूटके पतेसे राजा रामचन्द्रके दरबारमें अर्ज़ी लगाता है।

डी० एल० ओ० से होती हुई चिट्ठी वहाँसे भी लौट आई। तब उसने खुद ही चित्रकूट जाकर इंटरव्यू करनेका इरादा किया। झाड़ी झंखाड़ोंमें उलझने और पत्थरोंपर फिसलनेके बाद उसने रामचन्द्रजीके दर्शन किये। उसके मनने शङ्का की, क्या भगवान यही हैं? माथेके ऊपरसे आवाज़ आई, 'हैं! हैं!' उसने आँख उठाकर ऊपर देखा, एक सुग्गा बैठा हुआ टें-टें कर रहा था। विश्वास हो जानेपर पृथ्वी सचमुच ही चक्कर खाने लगी। घूमते-घूमते प्रकृति आकाशमें विलीन होगई। अन्तमें उसे अपने शरीरका बोध ही न रहा। होश आनेपर फिर सोचा,—"जो कुछ देखा है क्या वह सच है? फिर सुन पड़ा: "हाँ हाँ।" सुग्गा फिर उड़ गया। उसका मन अज्ञानवाले कोठेमें जाना ही चाहता था कि किसीने कहा, "उठ उठ!" चरवाहे लड़कोंने उसे एक गाँव भेजा जहाँ एक पुराने मित्रसे मुलाकात हुई। रातमें उसने सपना देखा कि उसका मित्र सूर्यकी तरह प्रकाशमान धनुषबाण धारण किये साक्षात् रामचन्द्र हैं। वह कह रहे हैं—"तुमने अर्थके लिये बड़ा परिश्रम किया, मैंने तुम्हें दिया।" इस प्रकार भगवानकी कृपासे अर्थकी समस्या स्वप्नमें हल होगई। भक्तको नौकरी मिल गई; फिर वह उपन्यास लेखक होगया। यह जरूर है कि पहला उपन्यास मुफ्त ही छपनेको देना पड़ा। "चार ही सालमें वह उप-

न्यास साहित्यकी चोटीपर पहुँच गया। कई हज़ार रुपये उसने एकत्र कर लिये। सारा ऋण चुका दिया और अब विद्याके साथ सुखपूर्वक रहता है।"

जैसे इनके दिन बहुरे वैसे राम करें सभी उपन्यास लेखकोंके बहुरें।

यह तो आर्थिक समस्याका समाधान हुआ; इसी तरह देशकी राजनीतिक समस्या भी हल की गई है। 'भक्त और भगवान' का युवक प्रश्न करता है : ये गरीब मरे जारहे हैं इनके लिए क्या होगा ?' और महावीर जी उत्तर देते हैं : 'इन्हे वही उभाड़ेगा, जो वहाँके राजाको उभाड़ता है, तुम अपनेमें रहो। दूर मत जाओ।'

भक्तके पिता रियासतके नौकर हैं। भक्त इस बातको जानता है फिर भी उसके मनपर इस दासताका प्रभाव नहीं है। संसारका ताप पिता रूपी वृक्षपर है; भक्तके लिए केवल छाँह। वह विद्यार्थी-जीवन बिता रहा है। भक्तिके गीत सुनकर उसके हृदयमें मानों पूर्व संस्कार जाग उठते हैं। गाँवके बाहर पीपलके नीचे महावीरजीकी मूर्ति है। उन्हे देखकर वह सोचने लगता है कि तुलसीदासजीकी सिद्धिके कारण महावीरजी हैं। बेलेकी लतासे फूल तोड़कर वह महावीरजीको माला पहनाता है। उसका विवाह होगया है। घर लौटकर आया तो पत्नीकी आँखोंमें राज्यश्री उसका अभिनन्दन करती है लेकिन वह समझ नहीं पाता। दूसरी बार कमलके फूल चढ़ाता हैं। रातको स्वप्न देखता है। महावीरजी शिकायत कर रहे हैं कि कमलनालके काँटे सिरमें चुभ गये हैं। फिर देखता है कि सिन्दूरके रूपमें पत्नी ही सिरपर महावीरजीको धारण किये हुए है। भक्त अर्थ पूछता है, पत्नी उत्तर देती है : 'अर्थ सब मैं हूँ—मुझे समझो।' तीसरी बार वह देवताको लाल गुलाबके फूलोंसे सजाता है। सिन्दूरपर गुलाबकी शोभा चढ़ी। घरमें पत्नीने भी गुलाबी साड़ी पहनी थी। उसने कहा : 'मेरा नाम सरस्वती है, पर मैं सजकर जैसे लक्ष्मी बन गई हूँ।' सरस्वतीके उपासककी आर्थिक

समस्या यों सुलझी।

फिर महामारीका प्रकोप हुआ। सारा परिवार नष्ट होगया। पत्नीका भी स्वर्गवास हुआ। भक्त महावीरजीकी सेवामें लग गया। उन्हें रामायण पढ़कर सुनाने लगा। तभी रामकृष्ण मिशनके साधु स्वामी प्रेमानन्दजी राज्यमें पधारे। भक्तने स्वामीजीको मालाओंसे ढँक दिया। फिर उसने उन्हें रामायण पढ़कर सुनाई। पिताके न रहनेपर अब उसपर संसारका ताप भी पड़ने लगा। जैसे जैसे वह राज्यका कामकाज देखता, वैसे हीं उसके हृदयमें जैसे साँप काटते। "हर चोट महावीरजीकी याद दिलाने लगी। मनमें घृणा भी होगई, राजा कितना निर्दय, कितना कठोर होता है। प्रजा-का रक्त शोषण ही उसका धर्म है!" उसने तय किया कि नौकरी छोड़ देगा। स्वप्नमें उसने महावीरजीको वीर वेशमें देखा; उनकी मूर्तिसे भारतका चित्र वन जाता था। स्वप्नमें ही स्वामी प्रेमानन्दजीने कहा, "यह सूक्ष्म भारत हैं; इनका प्रसार समझके पार है।" फिर भक्तने गरीबों के वारेमें प्रश्न किया और महावीरजीने उसे अपने ही भीतर रहनेका आदेश दिया। आकाशकी लतामें सूर्य चन्द्र और नक्षत्रोंके फूल खिले दिखाई देते हैं। स्वर्गीया पत्नी माथेपर सिन्दूर धारण किये हुए आती हैं और महावीरजी कहते हैं, "यह मेरी माता देवी अंजना हैं।" देवी सरस्वतीने पूछा: "अच्छे हो?" इसके बाद आँखें खुल गईं।

पत्नीके सिन्दूरमें भारत-मूर्ति महावीरकी अर्चना करके भक्त प्रजाके रक्त शोषणकी समस्याका समाधान करता है।



७

गीत

रोमांटिक कविताकी एक विशेपता यह होती है कि वह गेय होती है। रोमांटिक कवि अपनेको गीतकारके रूपमें कल्पित करता है जिसके हृदयसे बरबस गीत फूट पड़ते हैं। वह उस तन्मयताको अपना आदर्श मानता है जहाँ आँखोंसे उमड़ कर कविता अनजानमें वह चलती है। निरालाजीकी कविता गीतात्मक ही नही है, उन्होंने हिन्दीमें गीतोंकी परम्पराको भी जन्म दिया है। जैसे उनकी प्राथमिक कविताओंपर जहाँ-तहाँ ब्रजभाषा की छाप है और उन्होने ब्रजभापामे रचनाएँ भी की हैं, उसी तरह उनके गीतोपर भी ब्रजभाषाके पदोंका प्रभाव दिखाई देता है। 'परिमल' की कविताओमें यह प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है, लेकिन उसके बाद मानो वह इस ओरसे चौकन्ने होजाते हैं। सन् '२६ के बाद वह एक नई शैलीके गीत लिखनेकी चेष्टा करते हैं। 'गीतिका' की भूमिकामे उन्होंने अपना मत प्रकट किया है। वह कहते हैं: 'हिन्दी गवैयोंका समपर आना मुझे ऐसा लगता था, जैसे मजदूर लकडीका बोझ मुकामपर लाकर धम्मसे फेंककर निश्चिन्त हुआ।' इसके विपरीत उन्होंने स्वरको प्रसार दिया। उनके गीतोंका निर्माण इस तरह हुआ है कि उनमें स्वर विस्तारके सौन्दर्यकी विशेष गुन्जाइश है। केवल निर्माणके ढंगमें नहीं, उनके भावोंमें भी अन्तर है। निरालाजीने भूमिकामें लिखा है कि छायावादके आरम्भ-काल में या तो ऐसे पद सुनाई देते थे जैसे, 'ऐसो सिय रघुवीर भरोसो' या फिर नए ढंगके गीत थे जैसे 'तोप तीरें सब धरी रह जायँगी मग़रूर सुन।' इनसे भिन्न निरालाजीने एक नई शैली चलाई।

कविताके अन्य अंगोंकी अपेक्षा गीतोंका समाजसे सीधा सम्बन्ध है। साहित्य ही एक सामाजिक क्रिया है; गीत तो और भी। निरालाजीके गीतोंको ऐसी लोकप्रियता नहीं मिली। इसका एक कारण तो यह है कि उन्हें वे साधन नहीं मिले जो सिनेमा स्टारोंको सुलभ हैं; सिनेमाका एक-एक गीत रेडियो और रिकार्डों द्वारा जनताके एक बहुत बड़े हिस्से तक पहुँचता है। लेकिन एक दूसरा कारण गीतोंका अनोखापन है जो शायद ही जनताकी चीज हो पाये। इस अनोखेपनका कारण निरालाजीपर बँगला और अंग्रेजी संगीतका प्रभाव है। 'गीतिका' की भूमिकामें कहते हैं: 'यद्यपि मुझे पश्चिमके किसी प्रसिद्ध देशमें अधिक काल तक रहनेका सुयोग नहीं मिला फिर भी मैं कलकत्ता और बंगालमें उम्रके बत्तीस साल तक रह चुका हूँ और कलकत्तामें आधुनिक भावनाके किसी आकारसे अपरिचित रहनेकी किसीके लिये वजह न होगी अगर वह अपने कामसे ही काम न रखकर परिचय भी करना चाहता है।' जिस तरह घरमें अवधके संस्कार तैयार होरहे थे उसी तरह बाहरके वातावरणसे भी नए संस्कार बने, 'जिनसे हिंदी साहित्य और हिन्दू संस्कृतिको मेरे साहित्यके समझदारोंके कथनानुसार गहरा धक्का पहुँचा।'

जिस तरह रीतिकालीन परम्पराको तोड़कर छायावादने एक नई और सजीव साहित्यिक धाराको जन्म दिया, उसी तरह इन गीतोंने भी हिन्दी पाठकोंपरसे पुराना गायकीके प्रभावको खत्म किया। इनके अनुकरणपर अन्य कवियोंने सैकड़ों गीत लिखे और वे काफ़ी लोकप्रिय हुए। लेकिन छायावादी कविताकी तरह इन गीतोंकी भी सीमाएँ हैं। बिना छायावादका अन्त किये उन गीतोंकी रचना नहीं हो सकती थी जो लोगोंकी ज़बान पर चढ़ जाये। निरालाजीने 'बेला' और 'नए पत्ते' में नए ढंगके गीत लिखे हैं जो हमारे जन-गीतोंसे मिलते-जुलते हैं। इनमें वह संस्कार नहीं मिलता जिसे निरालाजी हिन्दी साहित्यके लिए कभी बहुत शुभ समझते थे।

श्रृंगारके गीतोंमें उन्होंने 'जुहीकी कली' की तरहके सुन्दर चित्र अङ्कित किए हैं और उस कविताकी तरह यहाँ भी प्रेमकी परिणति पूर्ण-तृप्तिमें दिखाई है। 'जागो फिर एक बार' की तरुणीके समान 'यामिनी जागी' गीतमें नैश-जागरणके बाद प्रभातकालमें रमणीका चित्रण किया है। जैसे सरोवरमें कमल अरुणको देखकर खिल उठते हैं, वैसे ही उस के अलसाए हुए पंकज-दृग अपने प्रियका तरुण मुख देखकर अनुरागसे खिल उठे हैं। उसके खुले हुए केश पीठ और बाहोंपर फैल गये हैं; उनके बीचमें वह ज्योतिकी-सी तन्वी मालूम होती है जिसे देखकर बिजली भी क्षमा माँगे। वह प्रियके हृदयपर स्नेहकी जयमालाके समान है। वह वासनाकी मुक्ति है जो मुक्ताके समान त्यागके धागेसे बँधी हुई है। इसी प्रकार एक दूसरे गीतमें रमणी अपने प्रियतमको याद दिलाती है, मेरे तपके तुम्हीं अमर वर हो और तृष्णाके तृप्ति रूपी सरोवर हो। 'मेरी तृष्णाके करुणाकर, तृप्ति प्रेम सर हे!'

प्रिय पथपर चलने वाली नायिकाके नूपुरोंकी ध्वनिमें प्रेमका स्वर न सुनकर लोग उसे श्रृङ्गार कहकर बदनाम करते हैं। लेकिन वह सोचती है कि इस ध्वनिसे यदि प्रियतमको उसके आनेकी सूचना मिल गई है तो वह कैसे लौट सकती है। उसी स्वरमें उसके हृदयके सब तार झंकृत हो रहे हैं। दृगोंकी नई कलियाँ खुलनेपर रूपके इन्दुसे सुधा-बिन्दु पाकर और खिल उठती हैं। प्रणय श्वासके मलय स्पर्शसे वे हँस पड़ती हैं। तरुण प्रियतमकी ज्योतिसे उनका मुख तप्त होगया है। स्नेहके सरो-वरमें नहाकर वे एकान्तमें प्रियतमके ध्यानमें डूबी हुई बैठी रहती हैं। प्रियतमके चले जानेपर संसार सूना होजाता है। जो राग गाया था वह बह गया अब उँगलीमें मिज़राब ही रह गया है। प्रेमिका 'तृष्णामें भर कर' अपने आपमें मरकर रह जाती है।

'स्पर्श से लाज लगी' इस गीतमें मानवीय वासनाके समस्त व्यापार

और उनकी स्नेहमय परिणतिका चित्र अंकित किया गया है। हृदयसे जो नये रागकी लहर उठती है वह जैसे छलकती हुई अलकों और पलकोंमें छिप जाती है। चुम्बनसे चौंक कर वह मुँह फेर कर छल करती हैं; कभी हास कभी त्रास, कभी गहरी साँस लेकर वह हावभाव दिखाती है। स्नेह भरे नयनोंकी पलकें उठाकर वह प्रियका अधरासव वैसे ही पान करती है जैसे नागिन अमृत पी रही है। स्नेहका मेह बरसनेके बाद अमर अंकुर फूटता है जिससे सासारिक भय दूर हो जाते हैं—

"प्रेम चयन के उठा नयन नव,
विधु चितवन, मन में मधु कलरव
मौन पान करती अधरासव
कण्ठ लगी उरगी।

मधुर स्नेह के मेह प्रखरतर
बरस गए रस निर्झर झर झर
उगा अमर अंकुर उर भीतर,
संसृति भीति भगी।"

हिन्दीमें ऐसे गीत कम लिखे गये हैं जहाँ रूपकमें इतनी पूर्णता हो, जहाँ भावोंमें ऐसी सम्बद्धता हो, और जहाँ मनुष्यकी सहज भावनाओं को इतना ऊँचा स्थान दिया गया हो। रीतिकालीन कवियोंने नारीको अपदस्थ करके उसे काम-केलिके लिए क्रीत दासी बना लिया है। अध्यात्मवादी कवियोंने उसे सहज अपावन कह कर ठुकरा दिया या जगदम्बिका भवानीके अति मानवीय रूपमें आसमानपर चढ़ा दिया। छायावादी कवियोंने भी उसे अप्सरा बनानेमें कसर नहीं रक्खी। इन गीतों मे उसका वह मानवीय रूप मिलता है जो अभी तक हिन्दी साहित्यमें दुर्लभ था।

व्रजभाषासे नाता तोड़नेपर भी पुराना असर जाते जाते ही जाता

है। कुछ गीतोंकी पंक्तियाँ तो ऐसी बन गई हैं जैसे गीतावली या विनय पत्रिकासे उठाकर सीधे रख दी गई हों। 'देख दिव्य छवि लोचन हारे' ऐसी ही पंक्ति है। 'हारे' क्रियाका प्रयोग भी ब्रजभाषाके अनुरूप ही हुआ है। 'नयनों के डोरे लाल गुलाल भरे, खेली होली' पुराने ढंगका ऐसा गीत है कि मेरे एक मित्रने प्रशंसामें यहाँ तक कह डाला कि इसे तो सीधे सिनेमामें रक्खा जा सकता है। 'स्नेह' के बदले 'सनेह' ने नई सरसता लादी है। 'स्पर्श' के बदले 'परस' ने एक नया वातावरण पैदा कर दिया है। 'अनबोली' पर छायावादका प्रिय शब्द 'मौन' निछावर है। 'खुले अलक मुँद गये पलक दल, श्रमसुखकी हद होली'—इस एक पंक्तिमें ऐसा पूर्ण चित्र देना किसी विरले कलाकारका ही काम है। अंतमें 'रही यह एक ठठोली' कह कर निरालाजीने होलीका रंग बाँध दिया है।

बहुत से प्रकृति-सम्बन्धी गीतोंमें भी उन्होंने शृङ्गार भावनाका आरोप किया है। यहाँ भी उनका उद्देश्य प्रेमकी सफल परिणति चित्रित करना है। रूखी डाली वासन्ती वसनकी आशामें तप करती है। मधुव्रतमें समारको वह मधुर फल देगी और सारा संसार उससे नेग माँगेगा। व्यंगसे यह रूपक पार्वतीपर घटाया गया है। शैलसुता शिवके लिये तपस्या करती हैं। उन्हे जो फल मिलेगा उसमें स्वाद और सन्तोष दोनों के दल होंगे। आशुतोष शिवकी कृपासे गरल और अमृत—वासना और प्रेम—दोनोंके सयोगसे इस फलकी सृष्टि हुई।

मेघके घने केश धारण किये हुये, चपलाके चकित नयनोंसे विश्व को चमत्कृत करती हुई वर्षा शिखरपर आकर बैठती है। हवासे उसका पट लहराता है; उसकी वाणी सारे प्रदेशमें छाजाती है। वह अपनी नश्वरता भूलकर रसकी वृष्टिमें मग्न होकर मनुष्यों और देवताओंको एक नया सदेश देती है। शेफालीकी तरह अपनेको निःशेष देखकर उसे

जीवनकी पूर्णताका बोध होता है। एक अनुभवी मित्रका कहना है कि वारविलासिनीकी तृतिका विपद और भव्य चित्र कविने खूब ही अंकित किया है।

वसन्तमें पग-पग पृथ्वी रंग जाती है वृक्षके हृदयकी अरुणिमा कलियोंके रूपमें फूट पड़ती है। कोयलका पञ्चम स्वर गूँज उठता है और सुन्दर वनश्री सुखके भयसे काँप उठती है।

एक अन्य गीतमें प्रकृति और मानवके व्यापारोंको एक कर दिया गया है। प्रेमके समीरसे दो विटप हिल उठते हैं। इसी व्रायुसे जीवन रूपी सर लहरा उठता है। नये प्रकाशकी किरण गात चूम कर चली जाती है। इसीसे सीमाओंमें बँधी हुई भावनाएँ मुक्ति पा जाती हैं। सुख चाहने वाली दृष्टि छिपे हुए रहस्योंको जान लेती है। दोनों प्रेमी जान लेते हैं कि राग से ही मुक्ति मिलती है। ज्ञान और प्रेममे वे ऐसे ही बँध जाते हैं जैसे अनूठी उक्तिके दो चरणोंसे श्लोक बन गया हो। पूरे गीतमें भावोंका बँधान देखिये—

"नयनों का नयनो से बंधन,
काँपे थर-थर थर-थर युग तन।

समझे-से हिले विटप हँस कर,
चढ़े मञ्जु खिले सुमन खस कर,
गई विवश वायु बाँध वश कर,
निर्भर लहराया सर—जीवन।

ज्ञात रश्मि गात चूम रे गई,
बँधी हुई खुली भावना नई,
गई दूर दृष्टि जो सुखाशयी,
छिपे वे रहस्य दिखे नूतन।

समझे युग रागानुराग मुक्ति रे—
ज्ञान परम, मिले चरम युक्ति से;
सुन्दरता के, अनुपम उक्ति के
बँधे हुए श्लोक पूर्ण कर चरण।"

नवीन श्रृङ्गारकी कलाको निरालाजीने खूब ही सँवारा है। अन्य छायावादी कवियोंमें प्रेम और श्रृङ्गारके एकाङ्गी चित्र हैं। उनमें वह वैविध्य और सरसता नहीं है जो निरालाजीके गीतोंमें है। यह सही है कि प्रेमकी वेदनाके स्वर जहाँ तहाँ लगे हैं और वे उतने सच्चे नहीं लगे जितने संयोग श्रृङ्गारके। लेकिन इस तरहके गीतोंमे कविने यह दिखाया है कि पूर्ण सुखकी कल्पना क्या होती है। निश्चय ही वह नई हिन्दी कविता को मानव जीवनके अधिक निकट लाया है। उसमें वह मांसलता है जिसके अभावने अन्य छायावादियोंको यथेष्ट अपकीर्ति दी है। इन गीतो में उसके सजीव व्यक्तित्वकी छाप है। अभावोंके बावजूद उसने अपने जीवनका इस तरह उपयोग किया है कि सूक्ष्म सौंदर्यकी मरीचिकाके पीछे दौड़नेवाले उससे स्पर्द्धा कर सकते हैं।

८

विराट्की उपासना

छायावादी कवियोंके बदले हुए दृष्टिकोणसे उनके पिछले साहित्यको देखें तो कम-से-कम उसके एक अंगके लिए महादेवीजी वर्माका यह कथन सत्य होगा, 'इन सौन्दर्य और भावनाके पुजारियोंको भी उसी निष्क्रिय संस्कृति और निष्प्राण सामाजिकतामें अपना पथ खोजना पड़ा है।' पन्तजीने 'रूपाभ' निकालनेपर कल्पना-लोकसे विदा लेनेकी बात कही थी। आधुनिक कवियों वाले अपने संग्रहकी भूमिकामें उन्होंने लिखा है कि 'छायावादके दिशाहीन शून्य सूक्ष्म आकाशमें अति काल्पनिक उड़ान भरनेवाली अथवा रहस्यवादके निर्जन अदृश्य शिखरपर कालहीन विराम करनेवाली कल्पना' ऐतिहासिक विचारधाराकी हरी-भरी ठोस धरतीपर उतर आई। निरालाजीने इस अशरीरी कल्पनाको दार्शनिक आधार देनेका प्रयास किया था। यह दार्शनिक आधार उन्हें विशेषतः रामकृष्ण मिशनके साधुओंसे मिला। पन्तजीने भी अपने ऊपर इस प्रभावका उल्लेख किया है, 'स्वामी विवेकानन्द और रामतीर्थके अध्ययनसे, प्रकृति प्रेमके साथ ही, मेरे प्राकृतिक दर्शनके ज्ञान और विश्वासमें अभिवृद्धि हुई।'

देशके सांस्कृतिक उत्थानमें स्वामी विवेकानन्द और रामकृष्ण मिशन का महत्वपूर्ण स्थान है। स्वामी विवेकानन्दके प्रचारकी तहमें राष्ट्रीयताकी एक जबर्दस्त भावना काम कर रही थी। पूर्व अर्थात् भारत श्रेष्ठ है; पश्चिमको उससे बहुत कुछ सीखना है; हमारे ऋषियोंकी तपस्याके आगे विज्ञानकी चमक-दमक फीकी पड़ जाती है; भौतिकवादी पश्चिम स्वार्थके

लिए कर मर रहा है; असली शान्तिका सूत्र तो हम भारतवासियोंके पास है; यह सब मन्त्र देकर स्वामी विवेकानन्दने हमारे सोते हुए आत्मगौरवको जगाया था और पराधीन होनेकी हीन भावनाको काल्पनिक संतोष भी दिया था। इसके साथ ही स्वामी विवेकानन्द और उनके अनुयायी भारतीयताके नामपर बहुत-सी प्राचीन रूढ़ियोंके समर्थक थे। सृष्टिको ज्ञानजन्य माननेसे भौतिक विकासमें उन्हे आस्था न थी। इसलिए देश-की राजनीतिक और आर्थिक परिस्थितियोंको बदलनेके लिए वे महत्व-पूर्ण कार्य नही कर सके। इसमें सन्देह नहीं कि बाढ़पीड़ितोंकी सहायता के लिए, शिक्षा प्रचार और औषधि वितरणमें उन्होंने अपने ढंगसे कार्य किया है लेकिन इसके लिए वे जनसाधारणके संगठनपर निर्भर नहीं रहे बल्कि समाजके बड़े-बड़े लोगोंका मुँह जोहते रहे थे। एक बार मिशनके एक जल्सेमें जब एक 'सर' उपाधिधारी सज्जनको बुलानेकी बात चली तब निरालाजीने ही रुष्ट होकर कहा था, 'हम मिशनमें तभी आयेंगे जब काशी मेहतरको सभापति बनाया जायगा।'

निरालाजीने अपना पहला निबन्ध-संग्रह श्री स्वामी सारदानन्दजी महाराजको समर्पित किया है और समर्पणमें लिखा है, 'भगवान् श्री रामकृष्ण देव के पदको प्राप्तकर मेरे मनोराज्यके सत्य, शिव और सुन्दर आचार्य श्रीमत् स्वामी सारदानन्दजी महाराजकी स्नेह दृष्टिको सभक्ति प्रबन्ध पद्म।' 'स्वामी सारदानन्दजी महाराज और मैं' नामके लेखमें उन्होंने साधुओंके प्रभाव के बारेमें कुछ विचित्र और मनोरंजक बाते लिखी हैं। अपने इस सम्पर्कके बारेमें वे कहते हैं, 'बंगालमें रहकर परमहस श्री रामकृष्ण देव तथा स्वामी विवेकानन्दजीके साहित्यसे मैं परिचय प्राप्त कर चुका था। दो एक बार श्री रामकृष्ण मिशन, वेलूड़, दरिद्रनारायणोंकी सेवाके लिये भी जा चुका था; श्री परमहंस देवके शिष्यश्रेष्ठ पूज्यपाद स्वामी प्रेमानन्दजी महाराज-को महिषादलमें अपना तुलसीकृत रामायणका सस्वर पाठ सुनाकर

उनका अनुपम स्नेह तथा आशीर्वाद प्राप्त कर चुका था।' आगे चलकर वह 'समन्वय' के सम्पादकके रूपमें उद्बोधन कार्यालय, बाग बाजारमें रहने लगे। यहींपर उन्होंने १६२२ में स्वामी सारदानन्दजीके दर्शन किये। कुछ उनके आध्यात्मिक तेजके कारण और कुछ उनकी शारीरिक स्थूलताके रौबमें आकर बहुत दिनों तक तो कविवर उनकी ओर देख ही नहीं सके। दार्शनिक विषयपर बातचीत होनेपर उठकर चले आते थे क्योंकि 'दार्शनिकताकी मात्रा यों भी दिमाग़में बहुत ज्यादा थी, जी घबरा उठता था।' उन्होंने निश्चय किया था कि बोलकर बेवकूफ न बनेंगे। बाहरके विद्वानोंकी बातचीत ऊटपटाँग मालूम होती थी। एक दिन प्रश्न कर दिया, 'यह संसार मुझमें है या मैं इस संसारमें हूँ?' स्वामीजीने सीधे उत्तर न देकर कहा, 'इस तरह नहीं।'

निरालाजीने लिखा है कि बचपनमें ही ऐसे संस्कार बन गए थे कि सन्तों और ईश्वरपर भक्ति होगई थी। सो जानेपर स्वप्नमें देवता आते थे और उनसे लम्बी बातचीत चलती रही। लेकिन देवताओंके जाग्रत अवस्थामें न आनेसे शंकाएँ भी होने लगीं। वह 'घोर नास्तिक, शङ्कित चित्त' होगये। इससे प्रकट है कि भक्तिके पुराने संस्कारों और नये संदेहों मे संघर्ष छिड़ा हुआ था। एक ही पहलूको सत्य मानना सरासर भूल होगी। उनकी नास्तिकताका उल्लेख आगे होगा। स्वामीजीसे भी इन्होंने कहा कि सो जानेपर देवता बातचीत करते हैं। एक दिन दोपहरको सोते हुए देखा कि सारदानन्दजी ही ध्यानमें मग्न हैं। वे कमलासनसे बैठे हुए हैं, आँखें मुँदी हुई हैं और मुँहपर एक दिव्य ज्योति छाई हुई है। पृथ्वीकी सारी चीजें ऊपर उठती हुई मालूम होती हैं। इसी समाधिकी अवस्थामें एक संन्यासी उनके सामने रसगुल्ले लाया। महाध्यानमें होते हुए भी सारदानन्दजीने कविवरकी ओर इशारा किया और संन्यासीने रसगुल्लोंका कटोरा इनके सामने कर दिया। खुद खानेके बदले यह

जाकर एक रसगुल्ला स्वामीजीको खिला आये। इसके बाद नींद खुल गई। उन्होंने यह महाज्ञानका प्रत्यक्ष प्रमाण देखा। विरोधी शक्तिको दार्शनिक प्रहारोंसे दबाते रहे। जब प्रहार करते हुए थकान होती थी तो सारदानन्दजी 'मुझे रंगीन छायाकी तरह ढँककर हँसते हुए तर कर देते थे।' निरालाजी कहते हैं कि उन्होंने एकसे एक कवियों, दार्शनिकों और पण्डितोंको देखा है लेकिन 'इन महादार्शनिक, महाकवि, स्वयं, मनस्वी, चिरब्रह्मचारी, संन्यासी, महापण्डित, सर्वस्वत्यागी साक्षात् महावीरके समक्ष देवत्व, इन्द्रत्व और मुक्ति भी तुच्छ है।'

मिशनके साधुओंका प्रभाव निरालाजीको भौतिक वास्तविकतासे दूर चमत्कारवादके किस कल्पना लोकमें खींच लेगया, इसका प्रमाण स्वामी सारदानन्दजीपर उनका यह लेख है। जिन संन्यासीने रसगुल्लेका कटोरा बढ़ाया था उन्होंने इनसे मन्त्र लेनेको कहा लेकिन इन्होंने तंत्र-मन्त्रपर अविश्वास प्रकट किया। अन्तमें स्वामी सारदानन्दजीने अपनी उँगलीसे इनके गलेपर एक बीज मंत्र लिख दिया। पढ़नेकी चेष्टा करनेपर भी मन्त्र समझमें न आया। मन्त्रका यह प्रभाव पड़ा कि कुछ ही दिनोंमें उन्हें ऐसा जान पड़ने लगा कि 'मेरा निचला हिस्सा ऊपर और ऊपरवाला नीचे होगया है, और रामकृष्ण मिशनके साधु मुझे खींच रहे हैं।' बाबू महादेव प्रसाद सेठसे इन्होंने शिकायत की कि साधू लोग जादूगर जान पड़ते हैं। उसके बाद स्वप्नमें प्रकाशका समुद्र दिखाई दिया और मालूम पड़ा कि कविवर श्यामाकी बाँहपर मस्तक रक्खे हुए लहरोंमें हिल रहे हैं। फिर इतने चमत्कार देखे कि बड़े बडे कवियों और दार्शनिकोंकी चमत्कारोक्तियोंपर हँसी आने लगी। और वह गलेवाला मंत्र भी आग-सा चमकता हुआ आँखोंके सामने आया और उसे उन्होंने पढ़ लिया।

इस प्रभावका उल्लेख करनेका कारण यह है कि संसार और समाजकी जिस व्याख्याको भारतीय कहते हैं उसका अवैज्ञानिक और

चमत्कारवादी रूप प्रकट होजाय।

वर्तमान धर्मकी व्याख्या करते हुए उन्होंने लिखा था, भारतमें 'सृष्टि तत्व ज्ञानसे कहा गया है। डार्विनके विकासवादकी तरह बंदरका क्रम परिणाम मनुष्य नहीं। मनुष्य ही मनुष्यका परिणाम है। मन बुद्धि और अहङ्कारसे हुई त्रिगुणात्मिका सृष्टि अपर जीवोंकी तरह मनुष्यकी ही है, ऐसा कहते हैं। इसीलिये सृष्टि अमैथुनी मानी गई है और मानी इसलिए गयी कि बाह्य जड़ प्रमाणका योग अपने ही मन बुद्धि और अहङ्कार में आजानेसे छूट जाता है।' इस प्रकार ज्ञानका विकास नहीं होता वरन् सृष्टिके पूर्व का ज्ञान सृष्टिके अज्ञानके साथ खेल किया करता है। निरालाजीने उर्दू कवि अकबरकी तरह बंदरका नाम लेकर विकासवादपर हल्का मजाक किया है। सृष्टिके भौतिकवादी आधारको अस्वीकार करनेके बाद वे सामाजिक विकासमें कोई नियम नहीं देखते; वह भी ब्रह्मकी लीला हो जाता है। 'हमारा समाज' में संसार शब्दके अर्थसे उसे गतिशील माननेके बाद वे कहते हैं, 'एक ही शरीरमें जिस तरह भली बुरी क्रीड़ायें होती रहती हैं, कभी इसकी विजय होती है कभी उसकी, इसी तरह समाजके व्यापक शरीरमें भी उत्थान पतन होते रहते हैं।' इसी तरह महादेवीजी कहती हैं, 'यह क्रम प्रत्येक युगके परिवर्तनमें कुछ नए उलटफेरके साथ आता रहा है, इसीसे आधुनिक कालके साथ भी इसे जाननेकी आवश्यकता रहेगी।' इस प्रकार मानवीय इतिहास एक आध्यात्मिक पहेली बन जाता है। विज्ञान और भौतिक प्रगति एक मजाक मालूम पड़ती है क्योंकि ज्ञानकी पूर्ण सत्ता तो सृष्टिके पहले ही थी। इसलिए अध्यात्मवादीके ज्ञानकी खोजका यह मतलब होता है कि वह इतिहास और समाजके अन्य व्यापारोंको भूल जाय और उस ज्ञान को ढूँढ़ले जिसपर सृष्टि अज्ञानका पर्दा बनकर पड़ी हुई है। यही वह दार्शनिक आधार है जो अपने निर्जन अदृश्य शिखरपर छायावादी कल्पनाको विश्राम करनेके लिये बुलाता है।

इसी ज्ञानकी मशाल लेकर छायावादी कविको निष्क्रिय संस्कृति और निष्प्राण सामाजिकतामें ही अपना पथ खोजना पड़ता है।

'शून्य और शक्तिमें' वे सृष्टिका आदि और अन्त शून्यको मानते हैं। वैज्ञानिक समझते हैं कि वे तरक्की कर रहे हैं लेकिन वे नहीं जानते कि उन्हें पहुँचना शून्य तक ही है। यह शून्य क्रिया रहित होगा और तब उनके तमाम आविष्कार 'एक युगकी जोती-बोई हुई जमीनके परती पड़ जानेकी तरह शून्यफल हो जायेंगे। निरालाजी पक्के नियतिवादीकी तरह कहते हैं, ऐसा ही हुआ है, ऐसा ही होगा। फिर किसी अगले युगमें उसी शून्यसे नए आविष्कार होंगे। शक्ति शून्यका ही रूप है। शून्य रूपमें उसका कम्पन बन्द होजाता है और शक्ति रूपमें कंपनका बोध होता है। इस कम्पन क्रियाका नाम सृष्टि या विकास है। विज्ञान भी प्रसार चाहता है; निरालाजी कहते हैं कि हम इस जड़ विज्ञानका उत्तर अपने ज्ञानके प्रसारसे देंगे। 'चरखा' नामके निबन्धमें उन्होंने जो रवि बाबूपर आक्षेप किया था कि क्या विधाता और ईश्वरसे चरखेके सम्बन्धमें कविवरकी कोई बात-चीत होचुकी है, यही प्रश्न शून्य और शक्तिके बारेमें कविवर निरालाजीसे भी पूछा जासकता है।

'अधिकार-समस्या' में उन्होने सम्पूर्णानन्दजीकी तरह वर्णाश्रम व्यवस्थाको चिरंतन माना है। वे हिन्दू समाजको ही नहीं, समाज मात्रको इसके अन्तर्गत मानते हैं। अपने प्रसिद्ध लेख 'वर्तमान धर्म' में उन्होने इसी पुराने धर्मको वर्तमान कहकर प्रतिष्ठित किया था। उसकी शैलीसे विरोधियोंको यह अवसर मिला कि वे निरालाके समूचे साहित्य और छायावादका विरोध करें। लेकिन वर्तमान धर्मकी टीकासे यह स्पष्ट है कि निरालाजीने कोई ऐसी बात नहीं कही जो पहिले लोग न कह गये हों। टीकामें एक विशेषता अवश्य है कि निरालाजी ने पौराणिक गाथाओंकी वैदिक व्याख्या करनेकी कोशिश की है।

शून्यवाद और चमत्कारवादमें पूर्ण श्रद्धाके साथ साथ संदेहकी आग कभी मन्द नहीं पड़ी। निरालाजीका अभ्युदय काल हमारे देश में पूंजीवादका भी अभ्युदय काल रहा है। वे इस सत्यसे इन्कार न कर सकते थे कि यद्यपि संसारका ज्ञान भारतीय शास्त्रोंमें सुरक्षित था फिर भी नये युगमें उन्हीं प्रदेशोंने सबसे पहिले उन्नति की जहाँ पश्चिमी शिक्षाका पहले प्रचार हुआ था। एक साहित्यिकके नाते वे चाहते थे कि बंगालकी तरह उनका प्रदेश भी नये और महान् साहित्यकी सृष्टि करे। उन्होंने यह भी देखा कि भौतिक विज्ञानने मनुष्यको जो सुविधायें दी हैं, उनसे साहित्यका हित होता है। उन्होंने इस बातको 'काव्यमें रूप और अरूप' नामके निबन्धमें स्पष्ट स्वीकार किया है। उन्होंने लिखा, 'संसारकी भौतिक सभ्यतासे सब देशोंके गुथ जानेके कारण संसार भरके लोगोंको आत्मिक लाभ पहुँचा। फलस्वरूप कलामें देश-भावकी जो संकीर्णता थी, आदान प्रदानकी सहृदयताने उसे तोड़ दिया। कलाकी सृष्टि व्यापक विचारोंसे होने लगी और हर जातिकी उत्तमतासे प्रेम सम्बन्ध जोड़ कर लोग उससे अपनी जातीय कलाको प्रभावित करने लगे।' हम देख चुके हैं कि छाया-वादी कवियोंने रीतिकालीन साहित्यके बन्धनोंको तोड़नेका भरसक प्रयास किया। ये बन्धन सामन्तवादी समाजके बन्धनोंका ही सांस्कृतिक रूप थे। नया पूंजीवाद अपनी वैज्ञानिक प्रगतिके कारण एक हद तक सामन्त-शाहीके बन्धन भी ढीले कर रहा था, इसलिये यह लाजमी था कि रीतिकालका विरोधी नई भौतिक प्रगतिका समर्थक हो। लेकिन हिन्दु-स्तानका पूंजीवाद ब्रिटेनकी छत्रछायामें पला और बढ़ा। उसने साम-न्तवादको एक जबरदस्त धक्का जरूर दिया लेकिन उसे बिलकुल खत्म नहीं कर सका। यह उलझी हुई परिस्थिति साहित्यमें भी देखनेको मिलती है। एक ओर निरालाजी सृष्टिको अमैथुनी मानकर चमत्कारवादका समर्थन करते हैं तो दूसरी ओर देशकालके बन्धन तोड़नेके लिये वे भौतिक विकासका भी स्वागत करते हैं।

अपने लेखोंमें उन्होंने परिवर्तन और प्रसारके लिए आवाज़ बुलंद की। उन्होंने बताया कि युग-धर्मके तक़ाजेपर, पुरानी राहें अपना रूप बदलना चाहती हैं। इनके साथ ही साहित्य भी परिवर्तनके द्वारा ही जीवन पा सकता है। 'साहित्य यही काम करता हुआ अपनी शक्तिके परिचयसे जीवित कहा जाता है, अन्यथा मृत या पश्चात्पद।' वे मानते हैं कि पुरानी बातें किसी जमानेमे अच्छी लगती थीं और तबके लिए वे नई भी थी। लेकिन उनकी रक्षाके लिए आज भी लोग सर पटकते रहें तो साहित्य में सृष्टि नहीं हो सकती और वह साहित्य जीता हुआ भी मर जायगा। मध्यकालमे धर्मके नामपर स्वार्थी वर्गोंने अपना पैर जमाए रक्खा। आज तो मध्यकालके ठाकुरजी विज्ञानके प्रसारके आगे हतप्रभ होकर किसी तरह भी समाजको ऊँची नहीं उठा सकते। नए विज्ञानने मनुष्यको प्रसारकी भावना दी है। वह दुनिया भरके मनुष्योंसे मिलना चाहता है, उनसे अपना भाईचारा कायम करना चाहता है। धर्म इसमें बाधक होता है। विज्ञानके प्रसारसे धर्मकी सीमाओंकी तुलना करते हुए निरालाजी कहते हैं: 'हमारे ठाकुरजी तो मन्दिरके अहातेसे बाहर भी नहीं निकल पाते, न हमारे ज्ञानसे, न अपने कर्मों द्वारा।' उन्होंने स्पष्ट शब्दोंमें घोषित किया कि नये विज्ञान और नई संस्कृतिके संपर्कमें आनेसे ही बङ्गला साहित्य ने अभूत-पूर्व उन्नति की। रविबाबूके विराट् चित्रोंके उदाहरण देकर उन्होंने कहा: 'काव्यमें साहित्यके हृदयको दिगन्तव्याप्त करनेके लिए विराट् रूपोंकी प्रतिष्ठा करना अत्यन्त आवश्यक है!'

पन्तजीने 'पल्लव' की भूमिकामें ब्रजभाषापर आक्षेप इसी आधारपर किये थे कि उसमे नये कविके लिए यथेष्ट प्रसार नही है। हिन्दुस्तानमें नए पूँजीवादने, उद्योग-धन्धोंके प्रारम्भिक विकासमें विज्ञानके नए सम्पर्कने कैसी हलचल मचा दी इसका सबसे अच्छा निदर्शन 'पल्लव' की भूमिका है। नए कविकी प्रसार भावना इतनी प्रबल है कि वह उसमें पूर्वी तथा

पश्चिम गोलार्द्ध, वन पर्वत, ज्योति अन्धकार, उत्तरी ध्रुवसे दक्षिणी ध्रुव तक प्रकृतिका विभिन्न सौन्दर्य, उष्ण और शीत सभी देशोंके वनस्पति फल-फूल और पौधे, वहाँकी जल वायु, आचार व्यवहार,—यह सभी कुछ वह नए साहित्यमें चाहता है। ब्रजभाषाके पास वह साहित्य नहीं है न वे शब्द हैं जिनमें 'वात उत्पात, वन्य बाढ़, उल्का भूकम्प सब कुछ समा सके, बाँधा जा सके; जिसके पृष्ठोंपर मानव जातिकी सभ्यताका उत्थान पतन, वृद्धि विनाश, आवर्तन विवर्तन, नूतन पुरातन, सब कुछ चित्रित हो सके; जिसकी अलमारियोंमें दर्शन विज्ञान, इतिहास भूगोल, राजनीति समाजनीति, कला कौशल, कथा कहानी, काव्य नाटक, सब कुछ सजाया जासके।' इससे मालूम होता है कि इस नए युगने साहित्यके विकासके लिए कौनसा नया मार्ग प्रशस्त किया था। सामन्तवादने सदियोंसे साहित्यको अटूट जंजीरोंमें बाँध रक्खा था; उनको तोड़ कर पहली बार मुक्ति का साँस लेता हुआ हमारा साहित्य समस्त विश्वको ही अपनी क्रीड़ा भूमि बनाना चाहता था। वह बार बार विराट् विराटकी पुकार करता था और उसे पुराने चित्र संकुचित और क्षुद्र मालूम होते थे। उसने माँग की कि यदि रीतिकालीन बन्धनोंको न तोड़ा गया तो साहित्यकी गति रुद्ध हो जायगी और उससे समाज भी निष्प्राण होजायगा। 'गीतिका' की भूमिका में उन्होंने निर्गुण और सगुणवादी सभी पुराने सन्तोंके प्रतीकोंको अमान्य ठहराया। कबीरके गीतोंकी ओजपूर्ण भाषाके क़ायल हैं, फिर भी साहित्य संगीत और संस्कृतिकी दृष्टिसे उन्हें कबीरके गीत आदर्श गीत नहीं जान पड़ते। वह मानते हैं कि कबीरसे मीरा तक सभीके गीत जनताके प्राणों-की सम्पत्ति रहे हैं। इन्हींके आधारपर लोगोंने अपनी प्राचीन संस्कृतिकी रक्षा की है। लेकिन नए युगने कवियोंको एक नई दृष्टि दी है, और वे उसके अनुकूल प्रसारके नए गीत गाना चाहते हैं। 'कबीर निर्गुन ब्रह्मकी उपासनामें आधुनिकसे आधुनिकोंके मनोनुकूल होते हुए भी भाषा, साहित्य संस्कृतिमें जैसे अमार्जित हैं, वैसे ही सूर, तुलसी आदि भाषा संस्कार

रखते हुए भी कृष्ण और रामकी सगुण उपासनाके कारण आधुनिकोंकी रुचिके अनुकूल नहीं रहे।' इसका कारण एक नई सभ्यतासे सम्पर्क है। 'इसका प्रभाव हर तरह बुरा रहा, ऐसा कोई समझदार नहीं कह सकता।' मुसलमान कालमें भी विदेशी संस्कृतिका प्रभाव पड़ा, उसी प्रकार अंग्रेजों के आनेसे भी भारतीयताके रूपोंमें परिवर्तन हुआ। निरालाजीने कुछ विस्तारसे बताया कि रवीन्द्रनाथपर अँग्रेज़ी संगीतका कैसा प्रभाव पड़ा और उन्होंने उसे राग-रागिनियोंके साथ कैसे बाँधा।

'पन्तजी और पल्लव' नामकी आलोचनामें निरालाजीने इन्हीं पुराने कवियोंके समर्थनका बीड़ा उठाया। यद्यपि पन्तजीने गोस्वामी तुलसीदास सूर, मीरा आदिको बख्श दिया था, और बख्श ही नहीं दिया था, अलग से उनकी प्रशंसा भी की थी लेकिन निरालाजीने इन्हीं कवियोंको लेकर साहित्यके विराट् चित्र दिखाना शुरू किये और 'गीतिका' में आगे खुद क्या लिखनेवाले थे इसकी जरा भी चिन्ता न करते हुए उन्होंने सिद्ध कर दिया कि भारतीय विश्ववाद 'इस प्रकारका चेतनावाद है जिसमें अगणित सौर संसार अपने सृष्टि नियमोंके चक्रसे विवर्तित होते जारहे हैं।' पन्तजी गोलार्द्धोंकी बात कर रहे थे और यहाँ गोस्वामी तुलसीदास कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड रोम छिद्रोंमें देख गए। इसलिए 'जो लोग यह समझते हैं कि भारतवर्षके पिछले दिनों लोगोंकी बुद्धि संकुचित होगई थी, और पन्त जीके शब्दोंमें यह कहनेका साहस कर बैठते हैं कि ब्रजभाषामें कुछ कवियों को छोड़कर प्रायः अन्यान्य और सब कवि एक सीमाके अन्दर ही तेलीके बैलकी तरह अंधचक्कर काटते चले गए हैं वे वास्तवमें ग़लती-करते हैं।' इसका तो यही मतलब हुआ कि ब्रजभाषा हमारे घरकी चीज़ है, हम गाली दें तो दें, तुम गाली देनेवाले कौन होते हो जी! विराट्की तलाश में दोनों थे और दोनों ही ब्रजभाषासे असन्तुष्ट भी थे बल्कि निरालाजी तावमें आकर सूर और तुलसी पर भी हाथ साफ़ करनेसे नहीं चूकते, वही

किन्हीं कारणोंसे छायावादकी भूमिपर टकरा गए। इसका कारण समझना कुछ बहुत कठिन नहीं है।

निरालाजी नए आन्दोलनके तीन प्रमुख सूत्रधारोंमेंसे थे। प्रसादजी-को निरालाजी अपना अग्रज और पन्तजीको अपना सहयोगी समझते थे। छायावादपर आक्षेप होनेपर वे पन्तजीकी रचनाओंसे ही उदाहरण देकर अपने पक्षका समर्थन करते थे। इसमें सन्देह नहीं कि पन्तजीकी रचनाओं को वे हृदयसे प्यार करते थे; न जाने कितनी कवितायें उन्होंने कण्ठस्थ कर रक्खी थीं जो मित्रोंको सुनाया करते थे। निरालाजीके मुँहपर कोई पन्तजीकी बुराई करके बच कर चला जाय यह नामुमकिन था। पन्तजीकी आलोचना करना वह एकमात्र अपना अधिकार समझते थे; दूसरोंका उँगली उठाना वह उनका दुस्साहस समझते थे। 'पल्लव' की भूमिकामें पन्तजीने मुक्त छन्दकी चर्चा की और कवित्त छन्दको हिन्दीके लिए अस्वा-भाविक बता कर यह सिद्ध करना चाहा कि निरालाजीने अपना मुक्त छन्द रवीन्द्रनाथकी "शाहजहाँ' आदि कविताओंके आधारपर निर्मित किया है। निरालाजीने यह तो सिद्ध किया ही कि कवित्त छंद हिंदीकी प्रकृतिके अनुकूल है और उनके मुक्त छन्दकी बुनियाद कविता ही है न कि रवीन्द्र नाथके छंद; लगे हाथ उन्होने पन्तजीकी पंक्तियाँ उद्धृत करके यह भी सिद्ध कर दिया कि पन्तजीने ही चोरीके मालसे अपनी दूकान सजाई है और भारतीय संस्कृतिका झंडा लेकर ब्रजभाषापर पन्तजीके आक्षेपोंका उत्तर देकर प्राचीनता प्रेमी पाठकोंको निहाल कर दिया।

पन्तजीका आक्षेप कितना भ्रामक था उसका उत्तर सदियोंसे चली आती हुई कवित्त छंदकी लोकप्रियता है। इसके अलावा सम्मेलनों और सभाओं में अपने मुक्त छंदका पाठ करके निरालाजीने यह दिखा दिया था कि उसका रंग जम जाता है। फिर पन्तजीने उसका आधार रवीन्द्रनाथके तुकान्त छंदोंको बताया; गिरीशबाबूके अतुकांत छंदका उल्लेख करते तो बात भी

थी। निरालाजीने उनके प्रभावको स्वीकार भी किया है। अपने पक्षके समर्थनमें निरालाजी कवित्तकी स्वाभाविकता और मुक्त छन्दके प्रभावशाली प्रवाहका समर्थन करते, यह बिलकुल न्यायकी बात थी। सारी चीज़ साफ़ तौरसे न रखनेसे ग़लतफ़हमी फैलती और नई कविताका अपकार होता। लेकिन बात इतनी ही नहीं थी।

निरालाजीने लिखा : 'मैं जानता हूँ, एक मार्जित सुहृदपर मैंने तलवार चलाई है।' उनके दर्दसे जाहिर है कि तलवार उन्होंने तभी उठाई जब दिलको बहुत बड़ी ठेस लगी। उन्हें यह चीज़ अखरी कि मित्र होते हुए भी पंतजीने उनसे बिना सलाह किये ही उनपर आक्षेप कर दिया और आक्षेप भी किया उस मुक्त छंदपर जिसको लेकर निरालाने जीवन-मरणकी लड़ाई लड़ी थी। आक्षेपका आधार भी यह कि उन्होंने बंगलासे नकल की है। वही आक्षेप जो जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदीसे लेकर पण्डित रामदास गौड़ तक नक्काल नक्काल चिल्ला कर किया करते थे। निरालाजीने लिखा कि 'पल्लवमें मेरी कवितापर कुछ लिखनेसे पहले उचित था कि पंतजी मेरी भी सलाह ले लेते, जब कि वह मेरे मित्र थे, और इस सलाहसे उनके व्यक्तित्वको किसी तरह नीचा देखना पड़ता, यह तो मैं अब तक भी सोच कर नहीं समझ सका।' उन्होंने यह भी बताया कि लोग सब तरहकी कमज़ोरियाँ बरदाश्त कर लेते हैं लेकिन अक़्लके मामलेमें कोई भी अपनेको घट कर नहीं समझता। पंतजीको कमज़ोर साबित करनेमें अपराध जरूर हुआ है लेकिन 'उनके अपराधकी गुरुताको मैं सिर्फ इसलिये नहीं सहन कर सका कि प्रतिभाके युद्धमें उन्होंने बेक़सूर निरालाको मारा है, और अपने सम्बन्धमें सब कुछ पी गये। यह सब मुझे निहायत असंयत अन्यायके रूपमें दिखलाई पड़ा।' एक बार मित्रके कसूरवार होनेपर बेकसूर निराला ने भी वैसे ही असंयत ढंगसे उनपर आक्षेप करना शुरू किया। यद्यपि लेखके अन्तमें उन्होंने पंतजीके कौशलकी तारीफ की, तो भी लेख पढ़कर

यही मालूम होता है कि भाषा भाव और अलंकारोंकी भूमिपर ऐसा नौसिखिया कवि शायद ही कभी हिन्दीमें हुआ हो। उन्होंने साबित किया कि ब्रजभाषामें जो विश्ववाद है उसके सामने आधुनिक विश्ववाद झख मारता है। इसी प्रकार भारतीय ध्वनि-शास्त्र इतना पुष्ट है कि पंतजीकी ध्वनि सम्बन्धी विवेचना बच्चोंका खिलवाड़ मात्र है। पंतजीने लिखा था कि अँग्रेजीके ' touch ' में जो छूनेकी कोमलता है वह 'स्पर्श' में नहीं मिलती। निरालाजीने उत्तर दिया कि ' touch तो बाह्य स्पर्श होता है और आन्तरिक स्पर्श तो भारतीय शब्दसे होता है। स्पर्श शब्दमें उसकी धातु 'स्पृश' देखिये। स दाँतोंको स्पर्श करता है, प होठोंको और फिर 'ऋ' द्वारा अन्तर्मुखी हो जाता है। 'श' तालुको स्पर्श करता हुआ अन्तिम उच्चारण स्थल तक पहुँच जाता है। भारतीय विचार अन्तरात्मा से सम्बन्ध रखने वाला होता है, इसलिये 'स्पर्श' होठोंसे बाहर नहीं जा सका, जैसे सब क्रिया अपने ही भीतर हुई और उसका फल भी अपने ही भीतर मिल गया।' यद्यपि 'मेरे गीत और कलामें' निरालाजीने पन्तजी पर यह आक्षेप किया कि वे हिन्दीके स्वाभाविक उच्चारण को छोड़ कर संस्कृतके तत्सम उच्चारणकी ओर जाते हैं परन्तु जिस 'परस' को गोस्वामी तुलसीदासने 'परसत पानि' में अमर कर दिया था, उसीके लिये यहाँ कहते हैं : 'परसमें छूनेकी कोमलता अधिक विद्यमान है, यह सिर्फ ख़याल है।'

पन्तजीकी अनेक पंक्तियाँ उद्धृत करके निरालाजीने यह दिखानेका प्रयत्न किया है कि उन्होंने भाषा और भावके लिए बङ्गलासे बहुत-सी चीजें उधार ली हैं। सम्भव है पन्तजीने ये टुकड़े वहींसे लिए हों, लेकिन यह भी सच है कि इस तरहके और सैकड़ों टुकडे भारत ही नहीं विदेशके भी रोमांटिक कवियोंसे लिये जा सकते हैं और उनमें ऐसा ही साम्य दिखाई देगा। भाव-भूमि एक होनेपर इस तरहके साम्यमें कोई

आश्चर्यकी बात नहीं। 'गंध मुग्ध हो अंध समीरण' में वह 'उर्वशी' के मदिर गंध अंध वायु आदिका अनुकरण देखते हैं। इस तरहके आवर्त रविबाबूके पहलेके भी कवियोंमें मिलते हैं और निरालाजीमें तो हैं ही। कहीं-कहीं तो निरालाजीने एक ही शब्दको पकड़ कर भी साम्य दिखानेका प्रयत्न किया है। जैसे पन्तजीकी सवा लाइन उद्धृतकी—

'अतलके
बतलातीं जो भेद अपार!'

इसका उद्गम रवीन्द्रनाथकी यह पंक्ति बताई गई है :

'अतल रहस्य जेनो चाय बोलियारे।'

निरालाजीकी 'वनवेला' अतलकी सुरभिवास सिरपर लेकर उठती है। केवल अतल शब्द आनेसे पन्तजी-की चोरी नहीं सिद्ध होती। इसी प्रकारके अन्य प्रयोग भी हैं।

निरालाजीने भारतीय दर्शनोंका भी जहाँ तहाँ हवाला दिया है और उसी सत्यको प्रतिष्ठित किया है जो त्रिकाल अक्षय और अमर है। आजकलकी विश्व मैत्रीकी भावनाको कल्पना-कलुषित समझते हैं। दार्शनिक सत्यको वह जड़त्वके परे, वाणी और मनकी पहुँचके बाहर समझते हैं। इस ब्रह्मकी विकास-विरोधी व्याख्यासे निरालाजीके वे चुट-कुले ज़्यादा सजीव हैं जिनमें उन्होंने सरस्वतीके सुकवि किंकर महाशय द्वारा छायावादी कवियोंकी लाङ्गूलोंमें आग लगा देनेकी बात लिखी है। अपने सम्बन्धमें उन्होंने और भी जो बातें लिखी हैं, विशेषकर- पहलेके विरोध और समर्थनकी बातें उनका ऐतिहासिक महत्व है। कवित्त छन्द को भारतीय प्रकृतिके अनुकूल सिद्ध करनेके लिए उन्होंने साहित्य और संगीत दोनोंसे तर्क दिये हैं। अपने पुरुषत्वका आरोप उन्होंने मुक्त छन्दमें भी किया है। उसे मात्रिक छन्दोंकी तरह स्वर प्रधान न होकर व्यञ्जन-

प्रधान बतलाया है । और 'वह कविताकी स्त्री सुकुमारता नहीं, कवित्वका पुरुष गर्व है ।' छंदोंकी तुलना करते हुए कवियोंके व्यक्तित्वका अन्तर भी उनके सामने आ गया । वह यह भूल गए कि 'जुहीकी कली' भी मुक्त छंदमें ही लिखी गई थी ।

भाषा विज्ञान और दर्शनके बारेमें निरालाजीने जिस दृष्टिकोणको यहाँ भारतीय कह कर उपस्थित किया है, आगे चल कर उसके विपरीत भी उन्हे बहुत-सी बातें करनी पड़ीं । पहले उन्होंने वर्ण भेदको समाजकी आदर्श व्यवस्था कहा था लेकिन वर्तमान हिन्दू समाजमें उनके विचारसे उच्च वर्णवालोंका उन्माद द्वापरसे ही बढ़ता रहा है । ब्राह्मणोंमें तीव्र स्पर्द्धा जाग्रत हुई । भगवान् बुद्धने इनके शस्त्र-शास्त्र उड़ा दिये । वैदिक सभ्यता ही न रही । उन्होंने अपनी तपस्यासे प्राप्त ज्ञानकी ज्योति फैलाई । इसी सिलसिलेमें निरालाजी उस समयकी प्रचलित भाषाओंका भी ज़िक्र करते हैं । 'स्पर्श' की पूर्णताको भूल जाते हैं । 'शिक्षाका माध्यम रहा उसी समय की प्रचलित भाषा । साधारण जनोंको यह बात बहुत पसन्द आई । कुछ कालके लिये फिर भारतमें सुख-शान्तिका साम्राज्य हुआ । इसका कारण एक नयी संकृतिका निर्माण था जिसमें उच्च वर्गोंके बदले जन-साधारणका हाथ था । लेकिन इसके बाद ही ब्राह्मणोंने फिर सिर उठाया और शङ्करने बौद्धोंको परास्त किया । निरालाजीके शब्दोंमें ब्राह्मण आस्तिक थे परन्तु वे हृदयहीन थे । बुद्धने अधिकारियोंका भेद मिटाया था लेकिन शङ्करके समय फिर अधिकार भेद खड़ा हो गया था । शूद्रोंके प्रति उन्होंने कठोर अनुशासन बनाये । उनके बाद रामानुज आदि सन्तोंने हृदय धर्मको स्थापित किया । अनेक देवी-देवताओंकी उपासनाके साथ भारतवासियोंका पतन होता गया । द्विजाति भी अपनी निरक्षरताको दूर करनेके लिये गङ्गामें डुबकी लगाना ही काफी समझते रहे । दूसरे मनुष्यको मनुष्य न समझना अबतक फ़ीसदी अट्ठानवे लोगोंकी धारणा बनी हुई है । दूसरी जातियोंसे

नफ़रत करके भारतवर्षका पतन होता जाता है । निरालाजी मानों अपने ही ब्रह्मवादको चुनौती देकर कहते हैं: 'रहते संसारमें थे; पर उससे लापरवाह रह कर ही जीना चाहते थे ।' और वर्णाश्रम धर्मपर भी इससे अच्छी और टीका क्या होगी कि शूद्र शक्ति दिन-पर-दिन पीड़ित होती गई और वह हिन्दू समाजके पतनका कारण हुई । निरालाजीने साहस पूर्वक स्वीकार किया है कि जो लोग हिन्दू अङ्गसे छूट कर मुसलमान होगये, उनमें अधिकांश पीड़ित होनेके कारण ही हुए ।' उच्च वर्गोंने अपने उत्पीड़नका ज़िक्र न करके इस्लामकी तलवारकी कहानीका प्रचार किया । नये विज्ञान और उद्योग धन्दोंके विकाससे जाति प्रथामें घोर परिवर्तन हुआ । चिरंतन सत्यके ठेकेदारोंकी सन्तान कलकत्तेमें जमादारी और बम्बईमें भय्यागीरी करने लगे । उन्होंने विश्वासके साथ कहा है, 'शूद्र शक्तियोंसे यथार्थ भारतीयताकी किरणें फूटेंगी । वे ही भविष्यके ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य हैं और ब्राह्मण क्षत्रिय, आदि दस जातियाँ शूद्र ।......भारत तभी तक पराधीन है जब तक वे नहीं जागते ।'

आजकी जाति प्रथाके बारेमें उन्होंने लिखा है कि आठ सौ वर्षोंके शासनके बाद भी ब्राह्मण और क्षत्रिय बचे हैं यह समझना भूल है । दासतामें न ब्राह्मणत्व रहता है न क्षत्रियत्व । वे असवर्ण विवाहका स्वागत करते हैं । आजके वैषम्यसे इसी प्रकार साम्यका जन्म होगा ।

'वर्णाश्रम धर्मकी वर्तमान स्थिति' में शङ्कराचार्यका समर्थन करनेपर भी वह इसी नतीजेपर पहुँचे हैं कि नये भारतमें यहाँकी दलित जातियों का अभ्युत्थान होगा । उन्होंने भविष्यवाणी की है, 'क्रमशः यही अंत्यज और शूद्र, यज्ञकुण्डसे निकले हुए अदम्य क्षत्रियोंकी तरह अपनी चिरकालकी प्रसुप्त प्रतिभाकी नवीन स्फूर्तिसे देशमें एक अलौकिक जीवनका सञ्चार करेंगे । इन्हींकी अजेय शक्ति भविष्यमें भारतको स्वतन्त्र करेगी ।' इसी निरालाने आगे चल कर 'कुल्ली भाट' और 'चतुरी चमार' में

अलौकिक सहानुभूतिसे दलित जातियोंके चित्र दिये।

'मेरे गीत और कला' में अपने गीतोंकी व्याख्याके साथ उन्होंने अपने प्रिय कविको ही नहीं, गोस्वामी तुलसीदास आदिको भी स्मरण किया है। आरम्भमें ही कला कलाके लियेकी हाँकको गला खुश्काने वाली गलागलासे मिलाकर उन्होंने इस बातको समाप्त कर दिया। फिर कविता-कामिनीका सौंदर्य वर्णन करते हुए वे अपना उद्देश्य प्रकट करते हैं कि साडी देखने वालोंकी साड़ी पहिनने वालीसे भी चार आँखें हो जॉय। श्रीमती महादेवी वर्माके साथ छायावादके चार चरण पूरे करके उन्होंने उसे चौपाया बनाया है और दुमकी कसर पण्डित बनारसीदास चतुर्वेदी ने पूरी करदी। निरालाजीको शिकायत तो यह है कि चौबेजी 'साबित कर रहे हैं कि काव्यके चतुष्पद तत्वोंमें उनकी पूँछका ही महत्व सबसे ज़्यादा है।'

यहाँ प्राकृत प्रेम ऐसा बढ़ा कि बैसवाड़ीके आगे संस्कृत शब्दावलीको तिलांजलि दे दी। बङ्गाल मेरी मातृभूमि है यह भूल कर अपनी ग्रामीण अवधीके लिये लिखा है, 'मेरी बैसवाड़ी माता पिताकी दी वाग्विभूति, जिससे सभी रसोंके स्रोत मेरे जीवनमें फूट कर निकले हैं, साहित्यिकोंमें प्रसिद्ध है।' यानी 'पन्तजी और पल्लव' में संस्कृत शब्दावलीके आधार पर पन्तजीको परास्त किया था और यहाँ बैसवाड़ीकी भूमिपर। शङ्करके समयमें जिन लोगोंने संस्कृतका प्रचार किया उससे उन्होंने केवल अपना मत प्रतिष्ठित किया, 'जातिकी जीवनी शक्तिका वर्द्धन नहीं—उस समय की भाषाका उद्धार नहीं।' निर्जीव भाषाके लिये निरालाजीने मुक्त छन्दकी मशीनगन दी जिससे 'जहाँ धड़ा धड़ मुक्त छन्दके गोले निकलने शुरू हुए कि भाइयोंकी समझमें आगया कि हाँ, कुछ पढ़ा जारहा है।'

सूत्र रूपमें पन्तजी और अन्य छायावादियोंकी शब्दावलीको निराला-जीने 'शणवल' नाम दिया है। हिन्दीकी प्रकृति 'श' को 'स', 'ण' को

'न', 'व' को 'ब' कहनेकी है। 'ल' को तो लोग 'ल' ही कहते हैं लेकिन 'शणव' के साथ मिलकर उसमें क्लीवता आजाती है। यहाँपर निराला जी संस्कृत उच्चारणके विपरीत व्रजभाषा और ग्रामभाषाओंकी प्रकृतिका समर्थन कर रहे थे। छायावादी कवियोंने जनसाधारणकी भाषाकी उपेक्षा करके काल्पनिक सौंदर्यके लिये एक असाधारण शब्दावली भी गढ़ली थी। निरालाजीने यह लेख सन् '३५ में लिखा था और उसके बाद उनमें क्रमशः यह प्रवृत्ति ज़ोर पकड़ती गई है कि गद्यमें ही नहीं पद्यमें भी सरल मुहावरेदार भाषाका प्रयोग करें। छायावादी चतुष्पदके स्वयम् एक स्तम्भ होनेके कारण वे उसकी कमज़ोर नसको पहचानते थे। इस-लिये उनका वार भरपूर बैठा। लेकिन पन्तजीपर ही नहीं, उनकी अपनी रचनाओंपर भी है। 'विजन वन वल्लरी' में 'व' ही बोलता है और यह लेख लिखनेके कुछ ही दिन पहले 'तुलसीदास' का आरम्भ 'शत शत अब्दोका सध्याकाल' से कर चुके थे। बातचीतमें वह कहते थे कि यह शपाशप कालिदासके प्रभावके कारण होगई है।

गीतोंकी व्याख्या करते हुए उन्होंने भावोंके तारतम्य और उनके सम्बद्ध विकासपर जोर दिया है। छायावादी कवियोंपर असम्बद्धताका दोष लगाया जाता है, उसका दूसरा पहलू इस लेखमें पेश किया गया है।

छायावादका सम्बन्ध विरह और अनन्तसे जोड़ा गया है। इस संबंध को लेकर न जाने कितने व्यंग्य लेखक और कविताओंकी पैरोडी लिखी गई हैं। अनन्तकी ओर दौड़ने और अज्ञात प्रेमीके लिए आहे भरनेसे हिंदीके साधारण पाठकोंको कभी प्रेम नहीं रहा। लेकिन छायावादके इस कमज़ोर पहलूपर भी सबसे पहले निरालाजीने ही वार किया। 'कलाके विरहमें जोशी बंधु' नामके व्यंग्य-पूर्ण लेखमें उन्होंने अनन्त और विरहकी वह छीछालेदर की है कि उससे बाजी मारना नामुमकिन है। आरम्भमें ही

हिंदीके आचार्योंको स्मरण किया है जिन्होंने अपनी नाक कटाकर दूसरो का सगुन बिगाड़नेकी शिक्षा दी थी। विरोध बढ़नेपर कविवरने सोचा कि किसीका शिकार करना चाहिये। शिकारके नामसे शेरकी याद आई लेकिन उन्हे याद आया कि विधवासे शादी करना शेरके शिकारसे भी बढ़कर है।

'यारो शेरे बबर से न डरना कभी
पर विधवासे शादी न करना कभी।'

इसलिए साहित्यकी विधवाकी तलाश करने लगे और जोशी बंधुओंके लेख तक पहुँचे। विश्ववादके नामपर हृदयकी संकीर्णता दूर की और जो भावोंमें विधवा हो उसीको विधवा मान कर लेख शुरू किया। इसके लिए उन्हें प्रमाण भी जोशी बंधुओंके लेखके आरम्भमें ही मिल गया। उन्होंने रवीन्द्रनाथकी पंक्तियाँ उद्धृत की थीं—

'आमार माझारे जे आछे से गो
कोनो विरहिणी नारी।'

इसी तरह जोशी बन्धुओंके अन्दर भी विरहिणी विधवाकी मूर्ति प्रतिष्ठित होगई और निरालाजीने जोशी बंधुओ ही नहीं, विरहवादके मूलप्रचारक विश्वकविपर भी आक्रमण शुरू कर दिया।

सृष्टि और ज्ञानके संबंधमें निरालाजीने वही पुरानी बातें कही हैं लेकिन कला और समाजके घनिष्ठ संबंधपर वह जोर देते हैं। सामाजिक हिताहितकी चिंता न करके मनमाना साहित्य लिखना वैसा ही है जैसा महमूदमियाँका अपने बकरेको पूँछकी तरफसे जिबह करना। 'इसी तरह जबान हर एककी अपनी है, चाहे वह विषयका वर्णन सिरेकी तरफसे करे, चाहे पूँछकी तरफसे।'

यह कहना कि सृष्टिके रोम-रोममें विरहका भाव व्याप्त था, साँपका

विष झाड़नेका मंत्र पढ़ना है। निरालाजीने पैरोडी अस्त्रका प्रयोग करते हुए लिखा है—

' अनमिल आखर अर्थ न जाकू ।
जोशी युग कृत प्रगट प्रतापू ॥ '

जोशी बंधुओंने लिखा कि समस्त शून्य मडल नारीत्वके भावसे भरा हुआ है। इसपर निरालाजींने गदाधरके गद्यकाव्यको स्मरण किया है। गदाधर लिख रहे थे : 'हे सखि, मैं जो मर रहा हूँ, यह सब तुम्हारी ही करुणा है। मेरे जीवनकी हरी हरी डालियाँ...' इतना ही लिख पाये थे कि कविवरने उनसे काग़ज़ छीन लिया और पूछा, तुम्हारे मरनेसे सखी की करुणाका क्या संबंध ? उत्तर मिला, कुछ नहीं। अनन्तमें विरहको व्याप्त करनेसे ऐसे ही साहित्यकी सृष्टि होती है। सृष्टिके केन्द्र स्थित अनंत व्यापी विरहकी अनुभूति आदि निरर्थक शब्दावलीकी ओर इंगित करके निरालाजी कहते हैं, 'कैसी अद्भुत शब्द मरीचिका है कि भावका प्यासा भटकता ही मर जाय। और सत्य कितना उज्ज्वल ? दीपककी तरह अपने ही नीचे अंधकार। धन्य है, धन्य है। जिस सृष्टिके केन्द्रमें ब्रह्म है, आनंद है, सत्य है, ज्ञान है वहाँ अनन्त व्यापी विरह, अनन्त वियोग, अनन्त अज्ञान, अनन्त दुःख ! क्या बात, क्या कहने !'

जोशी बधुओंने गोस्वामी तुलसीदासका यों उल्लेख किया था कि विरहवादी विश्वकविके सामने वे हेठे लगें। निरालाजीने तुलसीदासके जीवनकी कठोर तपस्या, निश्छल सत्यपरतासे अर्थोपार्जनसे निश्चिन्त होकर ब्रह्मवादी कविता करनेवाले विश्वकविके जीवनकी तुलना की। लेख काफ़ी लम्बा है लेकिन अन्तमें निरालाजीको यह अफ़सोस रह ही गया कि साहित्यिकता और विरहके बारेमें वे एक पंक्ति भी न लिख पाये। कटूक्तियो के लिये क्षमा माँगते हुए लिख दिया है कि 'अज्ञानका इतना बड़ा ज्ञानाडम्बर मेरी प्रसन्न-प्रकृतिको असह्य होरहा था।' यह लेख उन्होंने सन् '२८

में लिखा था।

सन् '२६ से '३४ तकका समय निरालाजीके जीवनमें संक्रमणका युग कहा जा सकता है। वह अब भी रोमांटिक और छायावादी ढंगकी रचनाएँ कर रहे थे लेकिन पुराने आदर्शोंमें उनकी वह श्रद्धा न रह गई थी। वे अब भी सोचते थे कि वर्ण-व्यवस्था सही है, शङ्कराचार्यने जिस ब्राह्मणत्व का आदर्श प्रतिष्ठित किया था, वह श्रेयस्कर है लेकिन वे यह देख रहे थे कि इस व्यवस्थाके कारण समाजका एक बहुत बड़ा भाग दासताके बंधनों में पड़ा हुआ न स्वयं उन्नति कर सकता था और न समाजको ही आगे बढ़नेका अवसर देता था। वे देख रहे थे कि रीतिकालीन रूढ़ियाँ साहित्य के विकासको रोके हुए थीं; इन्हे तोड़कर अन्य देशोंके भावोंसे आदान-प्रदान करनेकी उन्होंने माँग की। उन्होंने अपनी कवितामें नये भावोंके साथ नए रूप भी चलाये और अपने प्रिय मित्रों तक का आक्षेप होनेपर वे भरपूर उत्तर देनेसे कभी नहीं चूके। इतिहासके प्रति उनके दृष्टिकोणमें एक निश्चित परिवर्तन हुआ। इस्लामके प्रचारमें उन्होंने हिंदू समाज व्यवस्था के आंतरिक उत्पीड़नका पता लगाया। इसका प्रभाव उनके नये साहित्य पर भी पड़ा। समाजमें वे पहलेसे ही विद्रोही थे लेकिन यह विद्रोह अब उन्हे समाजके निम्न स्तरोंकी ओर खींच लाया। इसी प्रवृत्तिका परिणाम 'देवी' और 'चतुरी चमार' नामके युगप्रवर्तक रेखा-चित्र हैं। इसके साथ भाषा के प्रति भी उनके विचार बदले। उन्होंने देखा कि जब जनताकी भाषा पाली या प्राकृत थी तब यहाँका पंडितवर्ग संस्कृत चलानेका प्रयास कर रहा था। इससे जातिको नया जीवन नहीं मिला वरन् उसकी क्षति ही हुई। नए सांस्कृतिक उत्थानके लिए भाषा और भाव दोनोंमें ही परिवर्तन होना आवश्यक था। लेकिन यह परिवर्तन अकस्मात् नहीं होगया। छायावाद से जो मोह था, उससे संघर्ष करना पड़ा और इस संघर्षकी छाया उनकी नई कविताओंपर पड़ी। 'तुलसीदास' और 'रामकी शक्तिपूजा' में छाया-वादकी कलाको चरम शिखरपर पहुँचकर मानो उन्होंने विराम किया।

८

तुलसीदास और रामकी शक्ति-पूजा

'तुलसीदास' में निरालाजीने इतिहासपर नई दृष्टि डाली है। मध्य-कालमें समाजका जो पतन हुआ और पतनमें शूद्रोंपर जो अत्याचार हुए वह इस कथाकी पृष्ठभूमि है। मूलचित्र गोस्वामी तुलसीदासके अंतर्द्वंद का है। वे अपनी साधनासे समाजको मुक्त करना चाहते हैं लेकिन मनकी दुर्बल वासना इसमें बाधक होती है। अन्तमें गृह त्यागनेपर उन्हें नारीका तेजोमय रूप दिखाई देता है और बाधक होनेके बदले वह उनके जीवन की महान् प्रेरणा बन जाती है। निरालाजीकी रचनाओंमें यह एक अत्यन्त सुगठित कविता है और इतनी लम्बी कविता उन्होंने पहली बार लिखी थी। छन्द भी ऐसा चुना है कि पढ़नेपर तरङ्गोंके-से भङ्ग पाठकको आगे बहाते चलते हैं। दो पंक्तियाँ छोटी और तीसरी बड़ी मिलकर आधा बन्द बनाती हैं। इसीको दोहरानेसे एक पूरा बन्द बनता है। मुक्त छंदके अलावा छंद-बद्ध कवितामें निरालाजी ऐसा ओज-गुण पहले न ला सके थे। उनकी कलामें यह एक नया विकास था। चित्र सौंदर्यमें यह कविता अनूठी है। इतिहास और मनोविज्ञान, दोनोंसे ही भाव लेकर उन्हें सुरंग मूर्त रूप दिया गया है।

आरम्भमें शताब्दियोंके सांध्यकालका चित्रण किया गया है। बादलोंकी तरह भवें टेढ़ी किये यह साध्यकाल भारतके आकाशपर छाया हुआ है। पंजाब, कोशल, बिहार, धीरे-धीरे सभी प्रान्त इस कालिमाके नीचे आ गए। मुग़लों और पठानोंके आक्रमणकी मूसलाधार वृष्टिसे

उपमा सांध्यकालकी पृष्ठभूमिमें बड़ी सार्थक बैठती है। बादलोंसे वज्र टूट कर गिरता है और नीचे जल-प्रवाहका प्रखर वेग असह्य है। बुन्देल-खंड, कालिंजर आदिका पूर्व गौरव नष्ट हो गया है। वीर बन्दी बने हुए हैं और किंपुरुष आनन्द मना रहे हैं। जो सच्चे राजपूत थे वे स्वर्ग गए; जो रह गए हैं वे नृपवंश सूत बन्दी गण हैं। इनका कार्य आक्रमणकारियों की कीर्ति-गान ही रह गया है। जातीय जीवनकी नदियाँ एक नई संस्कृति के सागरकी ओर बह चलती हैं।

पहली मूसलाधार वृष्टिके बाद धरतीपर शांति छा गई है। बादलोंके बरस जानेसे आकाश धुल गया है। हवा सबको स्नेह सुखद स्पर्श देने लगी। चन्द्रमा अपनी शीतल किरणोंसे पृथ्वीका चुंबन करने लगा। समय सुन्दर छन्दोंमें बँधा हुआ लघुगति और नियंत्रित पदोंसे चलने लगा। संस्कृतिका सूर्य डूबनेपर सुन्दरियाँ अपने कर-कुमुदोंसे समयकी गतिपर ताल देने लगीं। बिरला ही कोई ऐसा होगा जो हाथ मल रहा हो। विलासकी धारामें अशक्त होकर देश बह चला। नदीका जल छल-छल शब्द करके लोगोंको सावधान करता था लेकिन वे किनारेके पाषाण की तरह मंत्रमुग्ध होकर कल-कल शब्द ही सुन रहे थे।

इसी समय राजापुरमें सुन्दर प्रतिभा और पुष्ट शरीर वाले युवक तुलसीदास काव्य शास्त्रका अध्ययन कर जीवनमें प्रवेश कर रहे थे। एक दिन मित्रोंके साथ वह चित्रकूट गये और वहाँ मनमें कुछ नए ही भाव पैदा हुए। जैसा उषाको टेढ़ा कुहरेका जाल घेरे हो, उसी तरह प्रकृति भी एक ऐसी भाषामें बातें कर रही थी जो पूरी तरह समझमें न आती थी। तुलसीदासको अपने मनमें संस्कारोंका निःशब्द सागर दिखाई देता है जिसके उस पार सत्यकी अस्फुट छवि दीख रही है। प्रकृति कहती है कि सूर्यका प्रचण्ड ताप उसे जला रहा है। ऋतुये आती हैं और अपना प्रभाव छोड़कर चली जाती हैं; उन्हे उसके दुख-सुखसे ऐसे

ही वास्ता नहीं है जैसे पेट भरनेवाले लोग देशमे आते जाते रहते हैं और अपने स्वार्थके आगे उन्हे प्रजाके कष्टोंका ध्यान नहीं रहता। जातीय संस्कारोंकी पृथ्वीपर असुर चल रहे हैं। कविको चाहिए कि वह त्याग, साधना और मुक्तिके गीत गाये। जैसे रामने अपने स्पर्शसे अहल्याका उद्धार किया था वैसे ही तुलसीदासको अपनी साधनासे जड़ भारतका उद्धार करना है। उस चेतनाके स्पर्शसे ही पाषाण खण्ड हार बनते हैं नहीं तो प्रकृतिमें झरने, झाड़ी, नदी, कगार, पशु-पक्षियोंके विहार को छोड़कर और कुछ नहीं हैं। देशमें ऐसा युग आया है जब कामदेवके बाणसे केशर झरती हुई पृथ्वी और आकाशको रंगे हुए है। प्रत्येक मानसपर उसीकी छाया है। इसलिए छविकी मूर्ति दिखाई नहीं देती। लोग भ्रमवश सुप्तिको ही जागरण समझ बैठे हैं।

प्रकृतिकी वाणी सुनकर तुलसीका मन विहंग आकाशमें उड़ चलता है। अपनी उड़ानमें वह रंग रंगकी तरंगे पार करता है। ये सब सामाजिक और व्यक्तिगत संस्कार हैं। इन्हे पार करनेपर उन्हें भारतकी वास्तविक दशा दिखाई देती है। जैसे सूर्यको राहुने ग्रस लिया हो और उसकी आभा मंद पड़ जाय, उसी तरह कुसंस्कारोंकी छायामें देश-काल बँधा हुआ है। देशमें छोटे छोटे सम्प्रदाय, मत-मतांतर परस्पर संघर्षमें लगे हैं। वर्ण-व्यवस्था विशृङ्खल हो गई है। क्षत्रिय रक्षा नहीं कर सकते, ब्राह्मण चाटुकार होगये हैं। शूद्र वर्ण-व्यवस्थाके चरण बनकर दूसरे वर्णोंको ऊँचा उठाये थे। इसके बदलेमें उन्हे केवल अपमान मिलता है।

'चलते-फिरते पर निस्सहाय
वे दीन क्षीण कङ्काल काय
आशा केवल जीवनोपाय उर-उरमें;
रणके अश्वोंसे शस्य सकल
दलमल जाते ज्यों, दलके दल

शूद्रगण क्षुद्र जीवन संबल, पुर पुर में।
वे शेष श्वास, पशु, मूक भाष,
पाते प्रहार अब हताश्वास;
सोचते कभी, आजन्म ग्रास द्विज गण के
होना ही उनका धर्म परम,
वे वर्णाधम, रे द्विज उत्तम,
वे चरण, चरण बस, वर्णाश्रम रक्षण के।'

इन शूद्रोंपर वर्ण-व्यवस्थाके चरण, उच्च वर्गोंके अत्याचारके ही कारण थे। देशका सांस्कृतिक पतन हुआ और भारतके नभोमण्डलमें दासताका अन्धकार छा गया। तुलसीदासने समझ लिया कि इस अंधकारको पार किये बिना सत्यके दर्शन नहीं हो सकते और न जीवनमें नया प्रवाह आ सकता है। इसलिए विरोधसे द्वन्द्व समर करनेके लिए वे तैयार होते हैं।

कविकी चेतनाकी ऊर्मियाँ भारतका अन्धकार दूर करनेके लिए उमड़ कर कविके मनोद्वारोंसे टकराईं। लेकिन इसी समय उस छायाके ऊपर तारिका-सी चमकती हुई रत्नावली दिखाई दी। तुलसीदास क्षण-भर उसका सौंदर्य देखते रह जाते हैं; फिर वह अदृश्य हो जाती है और मन धीरे-धीरे नीचे उतरने लगता है। रत्नावलीकी छविमें रंगी हुई प्रकृति अब सुन्दर दिखाई पड़ती है। मित्रोंके साथ पञ्चतीर्थ होते हुए पयस्विनीमें स्नान करते हैं और इसी तरह कुछ दिन घूमनेके बाद वह घर लौट आते हैं।

तुलसीदासको अब सारा संसार अबलामय दिखाई देता है। नीला आकाश उसका अलकजाल है; चन्द्रमा मुख, कलंक भौंहे और उसका प्रकाश प्रेमकी तरह कविको ठगे हुए है। तुलसीदासका मन चकोर उसी चन्द्र-छविको देखता रहता है। यहाँ पर 'मुकुलकी बीबी' में निरालाजीके

वे वाक्य याद आते हैं जिनमें उन्होंने संसारको अबलामय देखनेकी बात कही है, 'घोर सुषुप्तिके समयको छोड़कर बाकी स्वप्न और जागृतिके समस्त दण्ड ब्रह्माण्डको अबलामय देखता था।' तुलसीदास भी नयनों की मुग्ध दृष्टिमें बँधे हुए उस अर्थको न जान पाये जो पलकोंके उस पार छिपा था। सौंदर्यमें बँधे हुए चन्द्र, सूर्य, तारे, ग्रह–उपग्रह, एक दूसरेके पीछे चलते दिखाई देते हैं। सौन्दर्य बन्धन भले हो लेकिन इस बन्धनके बिना प्रगति असम्भव है। फूल विकास-पथकी बाधाओंको पार करके दिनका मुँह देखता है। गन्धवाला फूल जड़ होनेपर भी अपने गुणके कारण पृथ्वी में व्याप्त होता है। इसी तरह प्रियाके साथ बँधे होनेपर भी तुलसीदास संसारमें अपनी व्याप्ति देखते हैं। उन्होंने यह नहीं सोचा कि युवतीके रूप में कामदेव पुरुष-देशको जीत कर वहाँ अपनी विजय पताका उड़ा रहा था। जैसे सूर्यकी किरणोंसे बादल रंग बिरंगे हो जाते हैं, उसी तरह रत्नावलीके संसर्गसे युवक तुलसीदासके मनोभाव भी रंगीन हो उठे।

रत्नावली पतिको प्रसन्न रखनेवाली नामानुरूप सुन्दरी है। अज्ञानके अन्धकारमें सत्यकी यष्टिकी तरह वह प्रियको पार लेजाने वाली है। श्रद्धाकी प्रतिमाकी तरह वह मायाके घरमें प्रियकी निद्राकी सीमाये बाँधे हुए है। पति जब सोता है वह जागती रहती है। पति जब प्रेमकी फाग खेलता है, वह उसीमें छिपी हुई त्यागकी अग्नि-शिखाकी तरह जलती रहती है। पति जड़ पृथ्वीके दो कगारों जैसा है और उसकी बाँहोमें बँधी हुई रत्नावली आकाशकी गंगाकी तरह प्रवाहित है।

रत्नावलीके भाई आकर उससे माता पिताका संदेसा कहते हैं। माता उलाहना देती हैं और पिता कहते हैं, 'जोगी रमता मैं अब तो।' भाभीने कुंकुम शोभाको लानेको कहा। सबने अपने मनकी बातें कहीं लेकिन माका करुण विलाप अकथनीय था। समाजमें उसके भाई और पिताका अपमान भी होता है। क्या पैर इसीलिये पूजे थे कि वे उस

देहरीकी ओर फिर लौट कर न आये। रत्नावलीको अपने धर्म और मर्यादाका ज्ञान होता है। भावोंके घने बादलोंने पतिस्नेहके उपवनको ढक लिया। वह चलनेको तैयार होगई मानो सीता जिस पृथ्वीसे निकलीं थीं, मर्यादाके लिये उसीमें फिर विलीन होने चली हो।

तुलसीदास बाजारमें खड़े हुए सोच रहे थे कि इस बार सालेको किस घाट उतारें। एक बार कन्यादान कर दिया तो अब क्यों पीछे पड़े हैं। ऐसे आ धमकते हैं जैसे स्त्री दो दिनको उधार लाये हों। घर लौटते समय अनेक रंगोंके फूल खिले हुए देखे। प्रातःकालीन सूर्य आकाशमें चढ़ रहा था। लेकिन उसका गृह-पद्म मुरझाया हुआ था। सांसारिक व्यवहारका ज्ञान न रहा; ससुरालकी ओर पैर उठ ही तो गये। रास्तेमें प्रकृति सुखमें डूबी हुई दिखाई दी। किसीको गायें चराते हुए देखकर वृंदावनमें कृष्ण और गोपियोंकी याद आई। ससुरालमें बड़ी खातिर हुई। लोग कानाफूसी भी करने लगे। भाभीने कहा, यह रत्नावलीसे अपने प्रेमका परिचय दिया है। भाभीके व्यंग्यसे रत्नावली जल उठी परन्तु अपनी ज्वालाको भीतर ही छिपाये रही। उसे लगा कि पतिके मनमें बैठा हुआ चोर उसे निरावरण करना चाहता है; वह ईश्वरसे लाज बचानेकी प्रार्थना करने लगी। घरमें आँधी उठनेके पहले की निस्तब्धता छागई। भोजन कराके भाभी तुलसीदासको शयनगृहमें छोड़ आई। प्रियका चन्द्रमुख देखकर रत्नावलीके हृदयमें आज ज्वार उल्टा बह चला। जिस तरह हवासे उड़ाई हुई मेघ-माला अन्तरमें बिजली छिपाये हुये पर्वतके पास आकर ठहरती है, उसी तरह रत्नावली पतिके पास आई। जैसे चक्रोंसे अङ्कित पूँछ फैलाकर मोर नाच उठता है, वैसे ही मेघमाला-सी रत्नावलीको देखकर तुलसीदासका मन मयूर नाच उठा। रत्नावलीके बाल खुल गये, आँखोंकी पलकोंने गिरना बन्द कर दिया। उसके मोहके बन्धन टूट गये; वह अरूपका ध्यान करती हुई योगिनीकी तरह खड़ी होगई। कमलपर बैठी हुई लक्ष्मी

की तरह रत्नावली बोलीः—

'धिक् धाये तुम यों अनाहूत
धो दिया श्रेष्ठ कुलधर्म धूत
राम के नहीं, काम के सूत कहलाये।

हो बिके जहाँ तुम बिना दाम,
वह नहीं और कुछ,—हाड़ चाम!
कैसी शिक्षा, कैसे विराम पर आये।'

तुलसीदासके पूर्व संस्कार जागे। उसी क्षण उनका काम भस्म हो गया। उन्हे सामने स्त्री नहीं, आगकी जलती हुई प्रतिमा दिखाई दी। वह उन्हे विश्व हंसपर स्थित नीलवसना शारदा दिखाई दी। उसकी दृष्टिसे बंधकर एकबार उनका मन फिर ऊपर उठा; आकाशके बहुरंगी स्तर एक क्षणमें पारकर गया और संस्कारोंके धूसर समुद्रके ऊपर फिर एक नवीन तारिका चमक उठी। उसीमें शारदाका वह रूप लीन होगया। केवल अरूपकी महिमा रह गई। आकाश-निस्तब्ध रह गया। ज्ञानसे खुले हुए नेत्र बाहरसे मुँद गये। जिस कलीमें कविका मन बन्द था वह सरस्वती बन कर छन्दकी सुरभि लिये हुए उसीके भीतर खुल गई।

जब अपनेपनका बोध हुआ तब बाहर चलनेका विचार आया। अवरोधोंसे मुंह मोड़ कर जीवनधारा प्रतिकूल दिशामें बह चली। पुनः लहरोंका शब्द सुन पड़ने लगा। नए भावोंसे फूल शब्द सुनाई पड़ने लगे। असुरोंसे पीड़ित ऋषियोंको हर्ष हुआ। पार्थिव ऐश्वर्य और अज्ञान की रात बीत गई। पूर्वाचलपर ज्योतिका प्रपात झरने लगा। तुलसीदास की चेतनामें भारतकी सोई हुई महिमा जागी। एक बार जड़से चेतनाका, अन्धकारसे प्रकाशका, पराधीनताका स्वाधीनतासे संग्राम होगा। एक ओर कविकी सरस्वती होगी, दूसरी ओर प्रजापीड़कोंका छल प्रपञ्च। जैसे सूर्य एक-एक बिंदु जल जोड़ कर वर्षाके बादल बनाते हैं वैसे ही मतमतान्तरोंमें

बँटे हुए जनोंको मिला कर कवि नये समाजका निर्माण करेगा। आज देश-कालके शरसे विद्ध होकर अशेष छविशाली कवि जागा है। पापकी रागिनियाँ निस्पंद होकर सो रहेंगी। संसारकी वीणाके पुराने तारोंपर नये प्रकाशकी धारा पड़ी है। कविके स्पर्शसे नवजीवनके गीत साकार होकर जनमात्रकी सम्पत्ति बनेंगे।

कहाँ क्या होरहा है, कानोंसे कुछ न सुना। कवि अपना भाव मनमें ही गुनता रहा। सामने देखा, पत्नी खड़ी है, आँखें छलछला आई हैं। भववीणाकी सभी तानोंसे वह अधिक भावमयी थी। कविने अपने दाम्पत्य जीवनका अन्तिम वाक्य कहा, 'तुमने जो प्रकाश दिया है, उससे अब घरमें रहनेका तनिक भी अवकाश नहीं। मैंने इस समय जीवनका जो व्रत लिया है, उससे फिर इस ओर कभी देखूँगा भी नहीं।'

धीरे-धीरे वह बाहर आये। हृदयमें वही परिचित मूर्ति थी। अपना क्षुद्र रूप छोड़कर वह विश्वका आश्रय बन गई थी। सुखके जलपर तिरती हुई कमलाके रूपमें सामने आई। कविताके आरम्भमें भारतका जो सांस्कृतिक सूर्य अस्त होगया था, वह पुनः उदय हुआ और रत्नावली ही 'प्राची दिगन्त उरमें पुष्कल रवि रेखा' बन गई।

इस कवितामें निरालाजीने नये चरित्र चित्रण और नाटकीय घटना संगठनका परिचय दिया है। इसके पहले किसी भी छायावादी कविने इस तरहकी गाथा न लिखी थीं। चरित्र चित्रणके साथ उन्होंने ऐतिहासिक पृष्ठभूमिका ध्यान बराबर रक्खा है। मध्यकालीन समाजकी मूल समस्याको उन्होंने अच्छी तरह पहचान लिया था। मुग़ल आक्रमणके पहले ही जातीय जीवन नष्ट-भ्रष्ट होगया था। तृष्णोद्धत सगर्व क्षत्रिय देशकी रक्षा करनेमें असमर्थ हुए। शूद्रोंका विशाल वर्ग उच्च वर्गों द्वारा इस तरह रौंद डाला गया था जिस तरह लहलहाते पौधोंको फौजी घोड़े रौंद डालते हैं।

इस परिस्थितिमें तुलसीदासका जन्म होता है। उसके अनुकूल और विरोधमें भी उनके व्यक्तित्वका विकास होता है। विलासिताका वातावरण उन्हे भी मोहित कर लेता है। रत्नावलीमें उनकी आसक्ति व्यक्तिगत कामुकता न होकर सामाजिक ह्रासका प्रतीक बन जाती है। चित्रकूटमें जा कर जब वह प्रकृतिका नया संदेश सुनते हैं तब मानो सामाजिक कष्टों से द्रवित होकर भारतीय सन्तोंके ज्ञान-नेत्र खुलते हैं। रत्नावलीके शब्दों में तुलसीदासको नहीं, वरन् साहित्य और संस्कृतिकी समस्त रीतिकालीन परम्पराको धिक्कारा गया है। उसके योगिनी रूपमें मध्यकालीन नारीका नायिका भेद वाला रूप जलकर भस्म होगया है। तुलसीदास सन्त और भक्त होते हुये भी बहुत बड़े समाज सुधारक थे, इसमें आज किसीको संदेह नहीं रह गया। लेकिन उनके हृदयमें मनुष्योंके दलित वर्गके लिये कितनी सहानुभूति थी इसे हम अपने वर्तमान संस्कारोंके कारण बहुधा भूल जाते हैं। यदि किसीको निरालाजीकी कवितामें उनका चरित्र अस्वाभाविक लगे तो उसे रामचरित मानसमें 'बिन अन्न दुखी सब लोग मरैं' आदि कलियुगका वर्णन पढ़ लेना चाहिये। इसलिये कवितामें 'शेष-श्वास, पशु, मूक भाष' आदिका उल्लेख नितान्त सार्थक है। और तुलसीदासने ही लिखा था--

'कत विधि सृजी नारि जग माँहीं।
पराधीन सपनेहु सुख नाहीं।'

किस मध्यकालीन कविने नारीके प्रति ऐसी समवेदना प्रकट की जैसी तुलसीदासने। यह सही है कि वे नारीको सहज अपावन समझते थे लेकिन क्या इसीसे उनकी समवेदनाका मूल्य सौगुना अधिक नहीं बढ़ जाता? और कौन कह सकता है कि—

'मानहु मदन दुदुभी दीन्हीं'
'खंजन मंजु तिरीछे नयनन'

आदि आदि पंक्तियाँ लिखते हुये तुलसीदासके ज्ञान नेत्रोंके सामने प्रेम-मूर्ति रत्नावलीका ही चित्र नहीं था ? इसलिये जब निरालाजी कहते हैं कि तुलसीदास अंतरमें रत्नावलीकी छवि लिए हुए घरसे निकले और उसकी मूर्ति विश्वका आधार बन गई तो वह एक सार्थक कल्पना करते हैं।

कविताके आदि और अन्तमें जैसी सेटिंग है वैसा ही उदात्त चरित्र चित्रण भी। कथोपकथनमें वैसा ही ओजगुण और स्वाभाविकता है। छन्दका प्रवाह लगभग छः सौ पंक्तियोंमें पाठकके मनको कविताके साधारण धरातलसे बराबर ऊँचा उठाये रखता है। भारतीय स्थापत्य कलामें अलङ्करणके लिये सुन्दर मूर्तियोंके समान उपमाओं और रूपकोंकी छटा देखते ही बनती है। वे जितनी ही सुन्दर हैं, उतनी ही सार्थक भी। रत्नावलीके केशजालको मेघमाला बनाकर तुलसीदासके मनको मयूर बनाना निरालाजीका ही काम था। आरम्भके बन्दमें सांस्कृतिक सूर्यास्त के चित्रणसे अन्तिम बन्दमें पुष्कल रवि रेखाकी झाँकी तक सम्पूर्ण कविता एक विशाल रूपकके सूत्रमें बँधी हुई है। ऐसा निर्माण-सौंदर्य नई हिन्दी कविताके लिए अद्भुत था। शब्दावली कठिन है, भावोंमें जहाँ-तहाँ दुरूहता है, लेकिन कविका प्रयास यह रहा है कि मध्यकालीन समाजके सत्य तक हमें पहुँचाये। निस्सन्देह छायावादी कलाको उसने यहाँपर अत्यन्त पुष्ट और विकसित रूपमें दिखाया है।

'तुलसीदास' से मिलती-जुलती कविता 'रामकी शक्ति-पूजा' है। पहली रचनामें रामचरित्रके निर्माता कवि तुलसीदासका चित्रण था; इस कविता मे राम ही नायक रूपमें प्रधान हैं। पहली कवितामे उन्होंने मध्यकालीन समाजका सत्य दिया था; इस कवितामें पृष्ठभूमि पौराणिक है परन्तु उसका सत्य कविके इसी जीवनका है।

'धिक जीवनको जो पाता ही आया विरोध', यह पंक्ति पूरी कविताका

सूत्र है। कहना न होगा कि यह पंक्ति स्वयं कविके जीवनपर कितना घटित होती है। राक्षस, वानर, लंका, समुद्रतट ये सब एक विशाल सेटिंग मात्र हैं; वास्तविक संघर्ष रामके हृदयमें है। वह शक्तिकी साधना कर रहे हैं और प्रश्न है कि वे विजयी होंगे या नहीं। 'तुलसीदास' में तटस्थता अधिक है; 'रामकी शक्ति-पूजा' में कविके अपने व्यक्तित्वकी छाप है।

रवि अस्त होगया लेकिन ज्योतिके पत्रमें राम-रावणके अपराजेय समरका इतिहास सदाके लिए अङ्कित होगया। इस युद्धमें प्रति पल व्यूह परिवर्तित किये गये हैं; वानर गण भयानक 'हूह' शब्द करते हुए राक्षसों पर टूट पड़े हैं; रामचन्द्र रावणपर बाणोंके व्यर्थ होनेसे अग्नि-नयन हो उठे हैं। लङ्कापति उद्धत होकर वानर दलका मानमर्दन कर चुका है; सुग्रीव अंगद, गवाक्ष, नल आदि मूर्छित हो चुके हैं; युद्धके समुद्र गर्जनमें केवल हनुमानकी चेतना स्थिर रही है; वही जानकीके हृदयको आशा बँधाये रहे हैं।

सन्ध्या होनेपर दोनों दल अपने अपने शिविरोंको लौटे। 'तुलसीदास' में असुरों द्वारा संस्कारोंकी पृथ्वी मली गई थी; यहाँ भी राक्षसोंकी पद-चापसे पृथ्वी हिल उठती है। तमोगुणका प्रतीक आकाश—जो रावणके इष्टदेव शङ्करका निवास है—दानवी विजयसे उल्लसित और विह्वल हो उठता है। वानरोंकी सेना वैसे ही खिन्न होरही है। रामके धनुषकी प्रत्यंचा ढीली पड़ गई। जटा-मुकुट खुल कर पृष्ठपर, बाहुओं और वक्षपर इस तरह फैल गया है जैसे दुर्गम पर्वतपर रात्रिका अंधकार फैल गया हो। इस निराशाकी तामसीमें दूर भभकती हुई तारिकाओंकी तरह उनके दो नेत्र दीप्त होरहे हैं।

समुद्रके किनारे पर्वत है; वहींपर वानरी सेना एकत्र हुई है। अमा-वस्याकी रात्रिमें आकाश जैसे अँधेरा उगल रहा था। हनूमानके पिता पवनदेव स्तब्ध थे। विशाल समुद्र अप्रतिहत स्वरमें गरज कर शान्ति भंग

कर रहा था। पर्वत ऐसे निश्चल था मानो ध्यानमग्न हो। प्रकाशके लिए केवल एक मशाल जल रही थी। रामचन्द्रके मनमें संशय होरहा था कि रावणको जीत पायेंगे या नहीं। जो मन आज तक अशान्त न हुआ था वही असमर्थ होकर अपनी हार मान रहा था। तुलसीदासने मनोदेशमें ऊपर उठते हुए जैसे रत्नावलीकी छवि देखी थी वैसे ही रामको अचानक स्वयंवरके दिनोंकी जानकीका स्मरण हो आता है। उपवनका वह मिलन, नयनोंका नयनोंसे सम्भाषण, जानकीका वह प्रथम कम्पन,—वह सब याद आते ही क्षण-भर को वह अपनी परिस्थिति भूल गये और शिवका धनुष भंग करनेके लिये उनका हाथ फिर अपने आप उठ गया। फिर उन्हे अपने दिव्य शर याद आये जो देवदूतोंके समान उड़ते हुए ताड़का सुबाहु आदि राक्षसोंको भस्म कर चुके हैं। फिर उन्हें वह शक्तिकी मूर्ति याद आई जो आज युद्धमें समस्त आकाशको छाये हुए थी। रामके सभी अस्त्र उस महानिलयमें बुझ कर लीन होगये। उनके नेत्रोंमें भीताके राममय नेत्रोंकी छवि अंकित होगई। तभी उनके दैन्यको तिक्त करनेके लिए रावण भयानक स्वरमें अट्टहास कर उठा, पराजित रामके नेत्रोंसे मुक्ता जैसे दो अश्रु विन्दु गिर पड़े।

महावीर हनूमान अस्ति और नास्तिके रूप रामके चरणोंको देख रहे थे। अश्रु-विन्दु देखते ही उनका मन अस्थिर हो उठा। पिता पक्षसे उन्चासों पवन डोल उठे। समुद्रमें पहाड़-जैसी तरंगे उठकर गिरने लगी। हनूमान अट्टहास करते हुए महाकाशमें पहुंच गये। रावणकी महिमा अमावसके अंधकारके समान थी और हनूमान रामभक्तिके तेजके समान उसे छिन्न कर रहे थे। रावणके इष्टदेव शङ्करके निवास महाकाशको समेट लेनेके लिए महावीर पहुँच गये। इस महानाशको देख कर एक क्षणको शिव भी चंचल होगये। उनके वेगको सम्हालनेके लिए उन्होंने शक्तिका स्मरण किया। जिसका मन कभी शृंगारगत नहीं हुआ वह रामकी मूर्ति-

मान अर्चना शिवके सामने आ पहुँची। उन्होंने शक्तिको सावधान किया कि इस ब्रह्मचारीपर प्रहार करनेसे तुम्हारी ही हार होगी। उसे विद्यासे ही प्रबोध देना चाहिये। सहसा आकाशमें अंजना-रूपमें शक्तिका उदय हुआ। उन्होंने हनूमानको मीठी फटकार बताई, बचपनमें सूर्यको निगल लिया था, वही भाव तुम्हें आज भी विकल कर रहा है। यह महाकाश शिवका निवास स्थान है जिन्हें रामचन्द्र भी पूजते हैं। उसे नष्ट करनेके लिए क्या रामचन्द्रने आज्ञा दी है? फिर सेवक होकर यह अनधिकार चेष्टा कैसी? यह फटकार सुन कर कपिका मन नम्र होगया और उनपर फिर वही सेवा भाव छा गया।

इधर विभीषणको चिन्ता हो रही थी कि रामचन्द्रकी यही दशा रही तो लंकाका राज मिल चुका! उन्हे उत्साहित करनेके लिए विभीषणने अनेक वीर वचन कहे लेकिन रामके मनपर उनका कुछ भी प्रभाव न पड़ा। उन्होंने शान्त मनसे उत्तर दिया, 'मित्रवर, यह लड़ाई मुझसे न जीती जायगी। स्वयं महाशक्ति रावणका समर्थन कर रही हैं। उन्हे कौन परास्त कर सकता है।' एक बार लक्ष्मणको सहज क्रोध हो आया, जाम्बवान स्थिर रहे, सुग्रीव व्याकुल हुए और विभीषण आगेका कार्यक्रम सोचने लगे। रामचन्द्र सोचने लगे कि मैं बार-बार मंत्र पढ़कर जिन दिव्य शरोंको छोड़ता था, वही आज श्रीहत खण्ड खण्ड होगये। महाशक्ति रावणको अपने अङ्कमें वैसे ही लिये थी जैसे चन्द्रमा कलक धारण करता है। वानरदल को विचलित होते देखकर मैं जब जब शर संधान करता था, महाशक्तिके नेत्रोंसे वैसे ही अग्नि दीप्त हो उठती थी। फिर उन्होने रामको इस दृष्टिसे देखा कि हाथ बँध गये और धनुष खींचते ही न बना।

निरालाजीने स्वामी सारदानन्दजी महाराजवाले लेखके अन्तमें अपने स्वप्नका उल्लेख किया था,—'ज्योतिर्मय समुद्र है, श्यामाकी बाँहपर मेरा मस्तक, मैं लहरोंमें हिल रहा हूँ।' इस स्वप्नके साथ उनके जीवनका

एक सत्य यह भी था—

'पश्चात् देखने लगीं मुझे बँध गये हस्त,
फिर खिंचा न धनु, मुक्त ज्यों बँधा मैं हुआ त्रस्त।'

'रामकी शक्ति-पूजा' में असमर्थताका अद्वितीय चित्रण हुआ है।

जाम्बवानने सलाह दी कि शक्तिकी आराधना करनेसे ही रावणको पराजित करना सम्भव होगा। यह प्रस्ताव सभीको पसन्द आया। हनूमान एक सौ आठ कमल लेने चला। रात्रि बीत गई और नभके ललाटपर प्रथम किरण फूटी। समरभूमिमें फिर कोलाहल होने लगा, लेकिन रामचन्द्र मनको एकाग्र किये दुर्गाका जप कर रहे थे। इसी प्रकार पाँच दिन पार हुए। छठवें दिन उनका मन योगियोंके आज्ञा नामक चक्र तक पहुँचा। जपके महाकर्षणसे अम्बर थर-थर काँपने लगा। देवीको कमल अर्पित करते हुए राम एक ही आसनपर स्थिर बैठे रहे। आठवें दिवस एक इन्दीवर रह गया और मन सहस्रारको पार करनेकी बाट जोहने लगा। दो पहर रात बीतनेपर साक्षात दुर्गा आकर पूजाका अन्तिम फूल उठा ले गईं। हाथ बढ़ानेपर फूल न मिला तो रामका मन चंचल हो उठा। ध्यान छोड़कर पलकें खोली और यह विचार आते ही कि आसन छोड़नेसे असिद्धि होगी वे अपने जीवनको धिक्कारने लगे। विरोध और निरन्तर विरोध, साधनोंका अभाव और सदा ही अभाव! जानकीका उद्धार वह कैसे करते? तभी उनके अविनीत मनने कहा, माता मुझे राजीव-नयन कहती थीं। दो नील कमल तो अभी शेष हैं। इसलिए,

'पूरा करता हूँ देकर मातः एक नयन।'

यह कह कर उन्होंने महाफलक वाला प्रदीप्त ब्रह्मशर हाथमें ले लिया। ज्योंही अपना दक्षिण नेत्र अर्पित करनेको हुए तभी देवीने साधुवाद देते हुए आकर उनका हाथ पकड़ लिया।

'साधु, साधु, साधक धीर, धर्म-धन धन्य राम
कह, लिया भगवती ने राघव का हस्त थाम।'

रामचन्द्रने शक्तिको प्रणाम किया और वे जयकी भविष्यवाणी करके रामके वदनमें लीन होगईं।

'रामकी शक्ति-पूजा' जैसी नाटकीयता निरालाजीकी और किसी भी कवितामें नहीं। इसका कारण यह है कि उन्होंने जीवनकी अनुभूति निराशा और पराजयको नाटकीय रूप दिया है। आकाश और समुद्रके सम्मिलित गर्जनमें रामका व्यक्तित्व जैसे खो जाता है। यह क्रियाशील तमोगुण जीवनकी परिस्थितियाँ हैं जिन्हें परास्त करनेके लिए राम सदा साधनोंकी खोज करते रहे हैं। लेकिन कविताका अन्त पराजयकी भावनामें नहीं होता। राम शक्तिकी साधना करते हैं। यह साधना और भी महत्वपूर्ण हो उठती है जब हम उस चित्रका स्मरण करते हैं जहाँ राम समुद्रके किनारे अँधेरेमें अकेले बैठे हैं, सिरपर एक मशाल जल रही है और समुद्रके गरजनेके साथ रावणका उन्मत्त अट्टहास सुनाई देता है। यह राम तुलसीदासके मर्यादा-पुरुषोत्तम नहीं हैं। इनमें ब्रह्मकी पूर्णताके बदले मनुष्यकी अपूर्णता है। वह अधीर होजाते हैं, सीताकी स्मृतिसे मोहित होजाते हैं, आँखोंसे आँसू भी गिरने लगते हैं, इसीलिए शक्तिकी साधना इतनी महत्वपूर्ण है। रामके रूपमें कविने जीवनकी परिस्थितियोंको एक बार फिर चुनौती दी है। वह युद्धके लिए फिर तैयार होते हैं। लेकिन यह महाशक्ति एक दैवी शक्ति है। उनका रामका हाथ पकड़ना एक मनोमुग्धकारी चमत्कार मात्र है। इसीलिए रामके संघर्षका चित्र जितना प्रभावशाली है उतना उनकी विजयका नहीं। कविके जीवनमें संघर्ष ही सत्य रूपमें आया है। विजयकी कल्पना मात्र रही है।

फिर भी तुलसीदासकी अपेक्षा चरित्र-चित्रणमें विविधता है। विभीषण, हनूमान आदिके चित्र महाकवि वाल्मीकि और मिल्टनकी याद

दिलाते हैं। थोड़ेसे शब्दोंमें रेखाचित्र बनानेमें कविने नई क्षमताका परिचय दिया है। योगदर्शनसे काव्यके लिए जो सुलभ उपकरण मिले उन्हे कविने मूर्त रूप दिया है। आज्ञा, सहस्रार आदि चक्रोंपर रामचन्द्रके मनके चढ़नेकी क्रियाके अतिरिक्त हनूमानका समुद्रको विलोड़ित करते हुए महाकाशमें चढ़ना ओजपूर्ण वर्णनमें अनूठा है। प्रकाश और अन्धकार का ऐसा चित्रमय सम्मिश्रण उन्होंने पहले कभी न किया था। इसकी प्रतीक व्यंजना अद्भुत है। रावण समस्त तमोगुणी विघ्न-बाधाओंका प्रतिनिधि मात्र दिखाई पड़ता है। उसके साथ शिव, आकाश और महाशक्ति सभी क्रियाशील जान पड़ते हैं। इस अनन्त तमोगुणमें रामके दिव्य शर श्रीहत होकर कहीं खो जाते है। फिर भी मनुष्यका मन पराजित होने पर भी पराजय स्वीकार नहीं करता। युद्धके लिए, विजयके लिए वह पुनः चेष्टा करता है। 'रामकी शक्ति-पूजा' का यही महान् आशावादी संदेश है।

इस कविताके पीछे जीवनकी कौनसी अनुभूति छिपी थी इसे हम तब अच्छी तरह समझेंगे जब इसके साथ 'सरोज-स्मृति', 'वनवेला', और 'गीतिका' के कवि-जीवन सम्बन्धी अन्य गीतोंपर दृष्टि डालेंगे। इन रचनाओंका उत्कट आत्म-निवेदन नाटकीय रूपमें यहाँ प्रस्तुत किया गया है। कवि अपने प्रति इतना तटस्थ होगया है कि सहसा मुख्य पात्रसे उसके तादात्म्यको हम समझ नहीं पाते।

'सरोज–स्मृति' में एक दूसरा नायक है जो 'रामकी शक्ति-पूजा' के रामकी तरह अपनेसे प्रबल शत्रुका युद्ध-कौशल देखता है। यहाँ भी एक समरका वर्णन है जिसमें

'एक साथ जब शत घात घूर्ण
आते थे मुझ पर तुले तूर्ण
देखता रहा मैं खड़ा अपल
वह शर-क्षेप वह रण कौशल।'

'रामकी शक्ति-पूजा' में पहले दो बंदोंके बाद जैसे युद्धके बादकी स्तब्धता छा जाती है वैसे ही यहाँ भी,—

'व्यक्त हो चुका चीत्कारोत्कल
क्रुद्ध युद्ध का रुद्ध कण्ठ फल।'

'रामकी शक्ति-पूजा' मे श्यामा अवतरित होकर रामके वदनमें लीन होगई, लेकिन यहाँ उनकी छवि उस व्यक्तिपर पड़ती है जो लाञ्छित है। 'सरोज-स्मृति' में

'वाञ्छित उस किस लांछित छबि पर
फेरती स्नेह की कूची भर,—'

पढ़ते ही बरबस 'रामकी शक्ति-पूजा' में

'लांछनको ले जैसे शशाङ्क नभमें अशङ्क'

की याद आजाती है।

'सरोज-स्मृति' हिंदीकी एकमात्र प्रसिद्ध 'एलेजी' या शोकगीत है। इसे कविने अपनी कन्याके निधनपर लिखा था। सरोज सवा सालकी ही थी कि वह मातृविहीन होगई। उस बाल्यावस्थासे नानीने उसे पाल-पोस कर बड़ा किया था। कविके साथ साथ वह भी जीवनकी थपेड़े सहती रही। कान्यकुब्ज समाजकी रूढ़ियोंकी परवाह न करते हुए निरालाजीने पण्डित शिवशेखर द्विवेदीसे उसका विवाह किया। इसके बाद भयानक बीमारीमें उसका देहान्त हुआ। उस समय निरालाजी 'सुधा' की प्रूफ़-रीडरीसे लेकर सम्पादक तकके सभी कार्य करते थे। मासिक वेतन ५०) रु० मिलता था। कवितायें छापना सञ्चालकजी कविपर अपार अनुग्रह करना समझते थे। 'मैंने निरालाको बनाया' सभा-समाजमें यह उनका दावा था। पारिश्रमिक देना दूरकी बात थी। 'तुलसीदास' कविता छपने पर उन्होंने यह शिकायत भी की कि 'सुधा'की बिक्री कम होगई। मुझे

याद है 'वनवेला' पर निरालाजीको पारिश्रमिक मिला था लेकिन तब तक सरोजका दुःखान्त नाटक समाप्त हो चुका था। 'सरोज-स्मृति' की हर पंक्ति में यह भाव बोलता है कि मैं पुत्रीके लिये कुछ न कर सका।

निरालाजी सरोजको गाँव भेज चुके थे। जीवनके और सब कार्य करते हुए भी उनका चित्त उद्विग्न बना रहता था। एक दिन नीचेसे पोस्टकार्ड उठाकर ऊपर आये और इतना ही कहा, 'सरोज नहीं रही।' दुःखसे उनका चेहरा स्याह पड़ गया था। उसे सहन करनेके प्रयासमें वे कुछ देर तक कमरेमें टहलते रहे; उसके बाद अचानक घरसे निकल घूमने चले गये। दो दिन तक सरोजकी कोई चर्चा न हुई। इस बीचमें उनका चित्त स्थिर होगया। कवितामें उस समयका दुःख ही नहीं, एक अवलम्बन पाकर सोलह सालसे बादकी जीवनकी समस्त वेदना उमड़ आई। इस कवितामें निरालाजीने चार पंक्तियाँ ऐसी सच्ची लिखी हैं जिनमें उनका सारा जीवन केन्द्रित होगया है। उनका एक रूप उद्धत और उत्साही वीरका है जो करुण मार्गमें नियतिको भी चुनौती देता है।

'खण्डित करने को भाग्य अङ्क
देखा भविष्य के प्रति अशङ्क'

यह पक्तियाँ हिन्दीमे निराला ही लिख सकता था और भविष्यके प्रति अशङ्क होकर देखना उसीको शोभा देता है। परन्तु वह भाग्य-अङ्क खण्डित नहीं कर पाया। इसलिये कविताके अंतमें इस उदात्त गर्जनाके बदले उसका दुःख-जर्जर हृदय बोल उठता है।

'दुख ही जीवन की कथा रही
क्या कहूँ आज, जो न कही।'

सन् '२४ से '३८ तक उन्होंने अनेक रचनायें ऐसी की हैं जिनमें एक ओर भाग्यके अङ्क खण्डित करनेका प्रण है तो दूसरी ओर जीवनकी

अनकही कथा अपने आप फूट निकलती है।

'सरोज-स्मृति' का अंत 'रामकी शक्ति-पूजा' के आशावादसे नहीं होता। रहस्यवादका वह प्रकाश जिसमें चराचर डूबा हुआ दिखाई देता था, पहले ही छूट चुका है। निराला मस्तक झुका कर अपने कर्मपर वज्रपात सहनेके लिए तत्पर होता है। शीतसे भ्रष्ट होते हुए शतदलके समान वह अपने विफल कार्योंसे कन्याका तर्पण करता है। यथार्थ जीवनकी यह एक नई और कटु अनुभूति थी जो निराला हिन्दीको दे रहा था। वह वेदनाका कवि बन रहा था लेकिन उसकी पराजय भावुकताका खिलवाड़ नहीं। वह एक ऐसा महानाटक था जो पाठकके हृदयमें करुणा और सहानुभूतिकी सृष्टि करता है।

उन्नीस वर्ष पार करनेपर कन्या पितासे विदा लेकर जीवनका सिन्धु पार कर गई। पिता अक्षम था, मानो यही सोच कर उसे मार्ग दिखानेके लिये उसने पहले ही प्रयाण किया था। शुक्लपक्षकी प्रथमा श्रावणका स्तब्ध अंधकार पार कर गई। पिताको बारम्बार यह स्मृति कचोटती है, 'कुछ भी तेरे हित न कर सका।' धन कमानेका उपाय तो समझा लेकिन दीनके मुँहसे कौर न छीन सकनेके कारण स्वार्थकी लड़ाईमें हमेशा परास्त हुआ। इस पराजयको हिंदीका रत्नहार समझ कर उसने गर्वसे धारण किया। साहित्यिक जीवनके आरम्भमें उसकी व्यस्तता व्यर्थ जान पड़ती थी। पत्रिकाओंसे लौटी हुई रचनायें लेकर वह एकान्तमें सम्पादकोंके गुण गाया करता था। कुण्डलीमें दो शुभ विवाह लिखे थे लेकिन कन्याकी ओर देख कर उसने ग्रहोंको असिद्ध करनेका निश्चय किया। उसने कुण्डलीके टुकड़े-टुकड़े कर दिये और कन्या उनसे खेलने लगी। वयस्क होनेपर विवाहके लिये प्रस्ताव आने लगे परन्तु कान्य-कुब्ज शिवसे गिरिजा विवाह न करनेका उसने निश्चय किया था। बिना बरात बुलाये साहित्यिकोंके समाजमें सरोजपर कलशका शुभ जल पड़ा।

सरोजने स्वर्गीया माताका रूप ग्रहण किया। मातृहीन बालिकाको माँकी कुल शिक्षा पिताने दी और स्वयम् उसकी पुष्प सेज रची। जिस नानीकी स्नेह-गोदमें वह सवा सालसे पली और बढ़ी थी उसीकी गोदमें उसे अंतिम शरण मिली।

इस प्रकार सरोजकी जीवन-गाथा स्वयम् कविकी दुःख-गाथा बन जाती है। साहित्यिक जीवनमें वापस की हुई रचनाओंसे निराशा, आगे चल कर अर्थोपार्जन न कर पानेसे निराशा, और अंतमें रुग्ण कन्याकी परिचर्या न कर पानेसे निराशा, यह इस कविताकी सेटिंग है। इसमें निरालाका व्यक्तित्व उद्धत, व्यङ्गयपूर्ण, पराजित दिखाई पड़ता है। अंत में कविने स्पष्ट शब्दोंमें यह नहीं कहा कि कन्याकी परिचर्याके लिए अर्थाभाव रहा। वहाँ तक पहुँचते-पहुँचते लेखनी मानों जवाब दे जाती है। वह सहसा कविताको समाप्त कर देता है। जो कहा और जो अनकहा रहा गया, दोनोंसे इस कवितामें ऐसा तिक्त और यथार्थ सत्य अंकित किया गया है कि व्यक्तिगत जीवन-संबन्धी रचनाओंमें यह रचना सहज ही ऊँचे-से-ऊँचा स्थान प्राप्त कर लेती है।

आत्मनिवेदनके लिये निरालाजीने मातृ रूपकी कल्पना की। जीवनमें मातृ वियोगने कविता द्वारा भव्य रूप धारण किया। इस कल्पित मातासे वे शक्तिके लिए प्रार्थना करते और उससे अपने दुःख भी निवेदन करते। अपने मनुष्य जीवनके समस्त स्वार्थ वे उसके चरणोंपर बलि करते हैं। वे उससे प्रार्थना करते हैं कि वे जीवनके रथपर चढ़ कर मृत्यु पथपर बढ़ें और महाकालके तीक्ष्ण शरोंको सह सकें, वह उन्हें इसकी क्षमता दे। माताकी अश्रु-सिक्त मूर्ति हृदयमें विराजती रहे। भले ही बाधायें आयें लेकिन यह शरीर क्लेद-युक्त है। उसे देकर ही वे वन्दिनी माँको मुक्त करेंगे।

जीर्ण शीर्ण प्राचीनको वह भस्म कर देंगी। निर्जीव शरीरका धारण

करना व्यर्थ है। भारतका कल्याण तभी होगा जब यह महाशक्ति यहाँ के निवासियोंके रूपमें अवितरित होगी। कभी कवि सोचता है : जीवनमें कुछ न हुआ, न हो। अगर संसार धोखा है तो इसमें रोना क्या। छाया की तरह नीला आसमान दिखलाई देता है। मनुष्य घटता-बढ़ता आता जाता रहता है। वह चलता है, थकता है, रुक कर बकवास करता है लेकिन दुनिया ही कमजोरी हो तो वह क्या कर सकता है। यदि कहीं प्रकाश हो उसे दीप्त करनेका प्रयास व्यर्थ होगा। फिर कहता है समर्थ होकर मनुष्य किनारे बैठा हुआ लहरें क्यों गिन रहा है। जिस जलके भीतर वाड़व वह्नि जल रही है, उसे पार करके न जाने कितने लोगोंने अर्थ प्राप्त किया, तब कवि ही क्यों असफल होगा ? महाशक्तिसे प्रार्थना करता है, संसारमें तृष्णाकी विषाग्नि बुझे और भाषामें अमृतके निर्झर फूटे। कविके स्वर पृथ्वीसे उठें और आकाशपर छा जायें। परस्पर कर्षण से जो द्वन्द मचा हुआ है वह मिट जाय और क्षुद्रता छोड़ कर लोग अपना विश्व परिचय पहचाने।

महाशक्तिकी वन्दनाका अर्थ है मृत्युको वरण-करना। वही जीवनके दुःख दूर कर सकती है। महाशक्तिके चरणोंसे रंजित मृत्युको वरण करने की वह प्रार्थना करता है। उसके हृदयमें अपमानकी अग्नि प्रज्ज्वलित रहे और इसी प्रेरणासे वह जीवनके प्रलोभनोंको ठुकरादे। शक्तिके सिंधु में लहरें उठ रहीं हैं। वह प्रतिज्ञा करता है कि समीरकी भाँति वह उन्हें पार करेगा। कभी उसे मालूम होता है कि लांछना और अपमानका अन्त होगया है और विघ्न-बाधाओंको पार करके वह सफलता प्राप्त कर चुका है। वह मातृमूर्तिसे कहता, 'मैं रातमें अँधेरा पथ पार करके तुम्हारे द्वारपर आ पहुँचा हूँ। रास्तेमें पत्थर लगे। लेकिन वह फूल जैसे जान पड़े। उपल खिल कर मानो उत्पल बन गये। शरीर अवसन्न होगया, फिर भी वरकी प्राप्तिसे कवि प्रसन्न होगया है। शत्रुओंका स्मरण करके

वह उनका उपहास करता है, यह तेज-हत निशाचर, वन्य, भीरु और मलिन मन क्या समझेंगे कि कविने कौनसा वर प्राप्त किया है। वह अमर पदोंको गह कर प्रभात धन पागया है।

प्रातःकाल किरण नीले आसमानपर सहस्त्रों रूप धारण करती है और संसारमें आकर उसे रंगीन बनाती है। रात्रिके समय वही शरच्चन्द्रकी किरण बन जाती है। कविका हृदय उस मुँदे हुए कमलके समान है जिसपर आँसू जैसी ओसकी बूँदे ढुलक रही हैं। कवि चाहता है कि उसकी दुःखरात्रिमें वही किरण स्वप्नकी जागृति बन कर उसके नेत्रोंमें शयन करे। अन्य गीतोंमें इस दुःखकी रात्रिकी बार एक गीतमें वह प्रश्न कहते हैं 'कौन तमके पार रे कह।' इसका उत्तर भी यही है कि अन्धकारके आगे कुछ नहीं। जो जड़ है वही प्रवाह पूर्ण जलका रूप धारण करता है। आकाश तत्व ही घनकी धारा बन कर गतिशील संसार बनता है। इसी तत्वसे गन्धगुणकी सृष्टि होती है, आनन्दका भँवरा लहर-रूपी बालों और कमल-रूपी मुखपर गूँजता है। यह परिवर्तनशील प्रकृतिका रूपक है जो जल होने पर भी आनन्दसे सम्बद्ध है। फिर कवि पूछता है कि अन्धकारको भेदकर जो सूर्य रूपी नेत्र खुलता है वह निशा-प्रेयसीके हृदयपर जब मुँद जाता है तब वह सार तत्व पाता है या असार बन जाता है। संसारमें आतप ही जल बनकर बरसता है; कलुषसे ही कोमल सुहृत बनते हैं; जो अशिव और उपलाकार है, वही निहारके रूपमें मंगलमय होकर द्रवित होता है। तब इस जड़ प्रकृतिके परे क्या है? इस गीतमें निरालाजीने ज्ञानजन्य सृष्टिके सिद्धान्तको अस्वीकार किया है। मनुष्यका ज्ञान, उसकी चेतना, उसका आनन्द जड़ प्रकृतिके विकाससे ही सम्भव हुए हैं। प्रकृतिमें गुणात्मक परिवर्तन होते हैं, आतप जल बन जाता है, उपल द्रवित नीहार बनता है; इसी प्रकार एक गुणात्मक परिवर्तनसे चेतना और आनन्दकी भी सृष्टि हुई है। इसका कारण बतानेके लिए

भूत प्रकृतिसे परे किसी दैवी सत्ताकी कल्पना करना आवश्यक नहीं है।

दिन-पर-दिन निरालाकी रचनाओंमें यह भावना दृढ़ होती जाती है कि पृथ्वीका यथार्थ सत्य ही नहीं है, वह आकाशकी कल्पनासे सुन्दर भी है। इस-भावको उन्होंने 'बनवेला' और 'नरगिस' में बड़ी अच्छी तरह व्यक्त किया है। 'बनवेला' के आरम्भमें पृथ्वी और सूर्यके प्रणय व्यापारका वर्णन किया है। ग्रीष्मके ताप पृथ्वीने सर्वस्व दान कर दिया है। प्रस्वेद, कम्प, निश्वास, इनकी परिणति लूमें हुई है। सन्ध्याके समय पीताभ, अग्निमय, निर्धूम दिगन्तका प्रसार प्रलय कालका दृश्य उपस्थित करता है, ऐसा लगता है कि समस्त विश्व जल गया है; धूलमें देश अदृश्य हो गया है। कवि विरक्त और घामसे पीड़ित होकर नदीके किनारे विचार करता चला जारहा है।

'होगया व्यर्थ जीवन
मैं रण में गया हार'

पराजयके भावको लेकर वह एक जगह आकर चुपचाप बैठ जाता है। वह राजपुत्रोंकी बात सोचता है जो बड़े-बड़े विद्वानोंको अपना अनुचर बना लेते हैं। वह उन धनी युवकोंकी बात सोचता है जो समुद्र पारसे शिक्षा पाकर देशमें राष्ट्रपति चुने जाते हैं और जिनकी प्रशंसामें पैसे मे दस गीत रच कर लोग गर्दभ-मर्दन स्वरमे उन्हे गाकर बेचते फिरते हैं। साहित्य-सम्मेलनमें भी तब धाक जम जाती है। उधर सांध्यनभका मस्तक तप कर रक्ताभ होगया था; इधर कविके मस्तककी भी कुछ ऐसी ही दशा थी। तभी आँखे खोलकर उसने देखा कि प्रेयसीके अलकोंसे आती हुई गन्धकी तरह वेलाकी खुशबू उसे तृप्त कर रही है। जीवनका समस्त ताप और त्रास अपने मस्तकपर लेकर मानो अतलकी साँस ऊपर उठी थी, मानो कर्म जीवनके दुस्तर क्लेश भेद करके सुन्दर सिद्धि ऊपर उठी हो, अथवा क्षीर सागरपार करके सिक्त तन केश अप्सरा हो लहरोंपर खड़ी हुई बहु जन

दर्शनसे चकित होकर खड़ी हो। वह बनके गीतकी तरह खिली हुई है। ताप प्रखर होनेपर वह अपने लघु प्यालेमें अतलकी शीतलता भर कर कविको सुगन्ध की सुरा पान कराती है। कवि उसके समीप पहुँचा और

'झुक झुक, तन तन, फिर झूम झूम हँस हँस, झकोर,
चिर परिचित चितवन डाल, सहज मुखड़ा मरोर,'

वेला उनके पराजय और ईर्ष्याके भावोंकी ओर संकेत करके उनसे दूर ही रहनेको कहती है। कवि अपने स्पर्शको अपवित्र समझ कर दूरपर ही रुक जाता है। उस अग्नि शिखाको देख कर वह सोचता है, कहीं कवितामें भी ऐसे दुग्ध जैसे धवल दल खुलते। वेला उसे सुझाती है, आपा खो कर उसने जीवनका खेल खेला है। जीवनका मेला दिखाऊ वस्तुओंसे ही चमकता है। इस तड़क भड़कमें आत्माकी निधि पत्थर बन जाती है। इसीलिए नगरमें एक बड़ा है तो उसके बड़प्पनकी रक्षा करने के लिए शेष सभी छोटे हैं। कवि सामाजिक विषमतासे उत्पन्न होनेवाली अपनी ग्लानि भूल जाता है। वह दो पंक्तियोंमें वेलाके जीवनकी सार्थकता व्यक्त कर देता है :

'नाचती वृन्त पर तुम, ऊपर
होता जब उपल प्रहार प्रखर!'

वेलाकी यही सार्थकता कविके जीवनमें उसकी कविता बन जाती है।

'नरगिस' में यह ईर्ष्या भाव तिरोहित होगया है। नरगिसके पार्थिव सौन्दर्यने उसे अभिभूत कर लिया है। छोटे-बड़ेके भाव उठते ही नहीं, हृदयमें गंगातटकी निर्जन शान्ति और नरगिसका सौन्दर्य छा गया। शीत-काल बीत चुका था और पश्चिममें वैभवका दीर्घ दिन अस्त हो चुका था। तारक प्रदीप लिए हुए संध्या प्रियकी समाधिकी ओर चली गई है। नीड़ोंमें पक्षियोंका स्वर भी बन्द हो गया है। केवल बीते हुए गौरवके समान गंगाका शब्द निरन्तर सुनाई पड़ता रहता है। चैतका कृष्ण पक्ष

है; तृतीयाकी ज्योत्सना पृथ्वीपर ऐसी उतरी है जैसे नन्दनवनकी अप्सरा पृथ्वीको निर्जन समझ कर रात्रिमें सभय गंगा-स्नान करने आई है। तटपर बैठा हुआ कवि विश्वकास घन तारतम्य देख रहा था। वह सोचता है कि तत्व सूक्ष्मतम होता हुआ ऊपरको चला गया है और लोगोंने मान लिया है कि पृथ्वीसे स्वर्ग बड़ा है। ज्योत्सना स्वर्गकी श्रेष्ठ सृष्टिके समान सामने सशरीर खड़ी हुई थी।

युवती धराका यह वसन्तकाल था; हरे भरे स्तनोंपर कलियोंकी माला पड़ी थी। पवन पृथ्वीकी सुरभिसे दिक्कुमारियोंको प्रसन्न कर रहा था। ऐसा लगता था कि पृथ्वी और स्वर्गमें होड़ होरही है तभी कविने देखा कि प्रलयके एकटक नयन जैसी नरगिस खिली हुई है। वह कहती है, स्वर्ग से आनेसे ही क्या ज्योत्सना अधिक सुन्दर होगई? वह स्वयं अंधकारको पार कर प्रकाशमें आई है; क्या उसने स्वर्ग नहीं प्राप्त कर लिया? पृथ्वी स्वर्गपर चढ़े तो उसकी अधिक शोभा है या उस स्वर्गकी जो नीचे पृथ्वी पर उतर आये? हवा वही और नरगिसकी सुगंध कविके प्राणोंमें छा गई। यही स्वर्ग है, यह कहकर उसने आनन्दसे नेत्र बंद कर लिये। भौतिक रूप को लेकर इससे अच्छा और किसी छायावादी कविने नहीं कहा :

'स्वर्ग झुक आये यदि धरा पर तो सुन्दर
या कि यदि धरा चढ़े स्वर्ग पर तो सुघर?
बही हवा नरगिस की, मंद छागई सुगंध,
धन्य, स्वर्ग यही, कह किये मैंने दृग बंद।'

इन कविताओंमें महाकाव्यके गुण हैं। इनमें वह उदात्त भावना है जिसे अंगरेजीमें 'एपिक् कालिटी' कहते हैं। इनका नायक वास्तवमें धीरोदात्त है परंतु उसके नायकत्वकी परिणति रसराजमें नहीं होती। वह दुःखकी कालिमासे घिरा हुआ है जलती-बुझती प्रकाशकी लौ बीचमें अपराजित रहती है। ग्रीक नाटकोंके हीरोकी तरह वह हमारे हृदयमें समवे-

दनाका सञ्चार करता है; संघर्षकी भयानकता दिखाकर वह विषाद, भय, कुतूहलके भावोंको जाग्रत करता है। भावोंके अनुरूप कविकी ओज गुण पूर्ण शैली है जिसके लिए मैथ्यू आरनाल्डने 'ग्रैण्ड स्टाइल' शब्दोंका प्रयोग किया है। भाषा और छन्दपर ऐसा अधिकार निरालामें भी पहले नहीं मिलता। छायावादने हिंदी कविताको गीतात्मक बनाया था; रीतिकाल की रूढ़िगत तटस्थतासे हट कर उसने एक परिचितकी भाँति अपने व्यक्तित्व के स्वर लगाये थे। गीतिकाव्यमें नई भावुकता, नया अपनपौ, पाठकसे नया परिचय स्थापित किया गया। निरालाके गीतों और मुक्तकोंमें आत्म-निवेदनके साथ नाटकीयता भी है। वह अपने प्रति तटस्थ होकर अपनी अनुभूतियोंका चित्रण कर सकता है। आत्मीयता और नाटकीयताका यह सम्मिश्रण अद्भुत है। 'सरोज-स्मृति' 'रामकी शक्तिपूजा' 'वनवेला' आदि रचनाये संक्रमण कालकी हैं। इनके चित्र और अलङ्कार पुराने छायावादके ही हैं परंतु उनकी व्यञ्जना नवीन है। उदाहरणके लिये प्रभात और कमलको लेकर छायावादियोंने ही नहीं, भारतकी पूरी कवि परम्पराने उनका उपयोग किया है। लेकिन तुलसीदासमें सांस्कृतिक सूर्य के अस्तसे आरम्भ करके जिस प्रकार 'प्राची दिगन्त उरमें पुष्कल रवि-रेखा' से कविताका अंत किया गया है, यह निबाह अनूठा है। छायावाद के प्रतीकोंको यह अनुभूति पहले न मिली थी जो उन्हे ऐसा प्रभावशाली बनाती। निरालाने उन्हें अपनी अनुभूतिसे नया जीवन दिया और इसी-लिये सक्रमणकालकी रचना होनेपर भी उनमे ऐसी पूर्णता है। एक ओर उनमें छायावादी अलङ्करण सौंदर्य अपने चरम विकासको प्राप्त हुआ है तो दूसरी ओर उनमें एक दूसरे युगके अविर्भावकी झलक है, 'सरोज-स्मृति' में कविने संकेत किया था कि दीन दुखियोंका अन्न छीनकर वह स्वार्थ समरमें विजयी नहीं होना चाहता था। उसके लिए स्वाभा-विक था कि अपनी वेदनाके चित्रणके बाद इस स्वार्थ-समरका भी वर्णन करे जिसके कारण इन दुखियोंकी दशा सुधारनेके बदले दिन-पर-दिन

और गिरती जाती है। उसने ग़ालिबकी मस्ती और उसके दर्दका परिचय दिया था; उसने दानोंकी तरह नाटकीय सेटिंगमें वीर नायकोंका चित्रण किया था; अब उसके लिये आवश्यक था कि मैक्सिम गोर्कीकी तरह जन साधारणका भी चित्रण करे। सन् '३३'३४ में हिन्दीमें एक नये आन्दोलनका सूत्रपात हो रहा था। छायावादकी परिणति जिस निराशा-वादमें हो चुकी थी; उसके बाद यह अवश्यम्भावी था। चोटीके कलाकारों में प्रेमचन्द्रके बाद निरालाका ध्यान सबसे पहले इस ओर गया। निराला जीने गोर्कीका अध्ययन किया और उन्होंने अपनी कलाको एक नया रूप दिया। 'कुल्लीभाट' में गोर्कीका उल्लेख भी है। उनके हृदयमें समाजके निम्नवर्गके प्रति पहले से ही जो सहानुभूति थी वह गोर्कीसे एक नया सकेत पाकर उनकी कलाको एक नया रूप देने लगी। हिन्दी साहित्यमें 'देवी' और 'चतुरी चमार' का यह महत्व कि जब सुधारवादका भरम बना हुआ था तब निरालाने यथार्थ जीवनके चित्र देकर हिन्दी पाठकों को झकझोर दिया। सन् '३३ में इन रचनाओंकी सृष्टि यह सिद्ध करती है कि हिन्दी साहित्यको एक नई दिशा की ओर गति देना ऐतिहासिक आवश्यकता थी। एक युगकी भूमि पार करके निराला उसकी सीमातक पहुँच गया था, अब दूसरे युगकी भूमिपर क़दम उठाना ज़रूरी था। निरालाने यह क़दम उठाया।

९

कथा-साहित्यमें नयी प्रवृत्तियाँ

कोई भी जागरूक कलाकार साहित्यकी जागीर बनाकर संतोषकी साँस नहीं ले सकता। निरालाजीने यथेष्ट यश उपार्जित किया था लेकिन कलाकारका उत्तरदायित्व समाजके प्रति भी है। प्रसिद्धि पाकर वह अपनी सतर्कता छोड़ दे, समाजके परिवर्तन न देखे, मनमें बनी हुई रूढ़ियोंके बाहर चलनेका कष्ट न करे तो वह समाज-हितैषी साहित्यका सृजन नहीं कर सकता। छोटी पूंजीके साहूकारकी तरह साहित्यकारोंको भी नई दिशामें बड़ा क़दम उठानेसे डर लगता है। वे सोचते हैं, इस ढर्रे पर चलते-चलते ही तो हम साहित्यिक बने हैं, समाजमें यश और गौरव मिला है; इसे छोड़नेपर नये अपरिचित क्षेत्रमें एक-बारगी सफलता मिल भी नहीं सकती। इसलिए जिस राहपर चलते आये हैं उस राहपर ही अन्त तक चलते जायेंगे। अपने उत्तरदायित्वको पहचाननेवाला कलाकार इस तरह एक ही लीकमें बँध कर कभी नहीं रह सकता। उसकी परिचित लीक जब प्रतिक्रियाकी रूढ़ि बन जाती है तो वह उसे छोड़ कर अपने लिए नया मार्ग बनाता है। ऐसे उत्तरदायी कलाकारोंकी भाँति निराला, पन्त आदिने भी यही कार्य किया।

'भक्त और भगवान' में हम देख चुके हैं कि इष्टदेवमें पूर्ण श्रद्धा होते हुए भी प्रजाकी समस्या हल नहीं होती। उस कहानीमें उस रियासतका जिक्र है जहाँ स्वामी प्रेमानन्द पधारे थे। एक दूसरे रेखाचित्रमें रियासती जीवनका एक दूसरा पहलू दिखाया गया है। राजधानीका

नाम पद्मदल है। यहाँपर एक चौड़ी नहर है जिसपर छोटे स्टीमर, बोट और बजरे चलते हैं। राजा साहब नावको सैरके लिये निकलते हैं। पहली ड्योढ़ीमें आनेपर राजा साहबके मुसाहिब क़तार बाँध कर प्रणाम करते हैं। सिपाही किर्चें निकाल कर उन्हें सलामी देते हैं। तीसरी ड्योढ़ीके बाद पुलके ऊपरसे वे खाई पार करते हैं। घाटपर पहुँचते ही मुसलमान नौकर और माँझी सलाम करते हैं। राजा साहब एक नावपर पतवार पकड़ कर बैठते हैं। पहलवान मुसाहब डाँड़ सम्भालते हैं, सिपाही और अर्दली लॉग समेट कर बोटके साथ साथ नहरके किनारे दौड़ चलते हैं। आगे शक्तिपुर नामका एक गाँव है। यहाँपर विश्वम्भर भट्टाचार्य राजा साहबकी प्रतीक्षामें खड़ा है। नावके नज़दीक आते ही राजा साहबका ध्यान आकर्षित करनेके लिये वह विचित्र प्रकारका शब्द करता है। राजा साहबके मुखातिब होनेपर 'उसने हवामें उँगलीसे लिख कर राजा साहबकी ओर कोंचा, फिर पेट खला कर दोनों हाथों मरोड़ा, फिर दाहिने हाथसे मुँह थपथपाया, फिर दोनों हाथोंके ठेंगे हिला कर राजा साहबको दिखाया।' सिपाही पीछे रह गये थे। पास आनेपर राजा साहबका इशारा पाकर उसे पीटने लगे। उसकी दोनों हथेली और उँगलियाँ कुचल डालीं। गाँव भरके लोग आकर विश्वम्भरको उठा लेगये और हल्दी-चूना करने लगे। विश्वम्भर भी भक्त है। विशालाक्षी देवीके मन्दिरमें तीन पाव चावल और चार केले प्रति-दिन और तीन रुपया मासिकपर पुजारीगिरी करता है। घरमें पाँच आदमी खानेवाले हैं और बीस महीनेसे वेतन नहीं मिला। तनख्वाहके लिये दर्जनों दरख़ास्तें लगाईं लेकिन सुनवाई न हुई। अब उसने हवा में लिख कर बताया, अर्जी भेज चुका हूँ। पेट मल कर बताया कि भूखों मर रहा हूँ और ठेंगे हिला कर समझाया कि खानेको कुछ नहीं है। जासूसोंने राजासाहबको समझाया कि इस गाँवके बाग़ी विश्वम्भरसे मिले हैं और उन्होंने जान-बूझ कर राजा साहबका अपमान कराया है। अभी उसके घाव पूर रहे थे कि उसे आज्ञापत्र मिला, तुम नौकरीसे बरखास्त

कर दिये गये।

यह एक छोटी-सी घटना है। रियासतोंके पाशविक अत्याचारकी बड़ी तेज झलक दिखाई देती है। असंगठित जनतामें जो भी रोटीके लिये फरियाद करता है उसे फौरन कुचल दिया जाता है। अधिक देना तो दूर, जो आधी रोटी उसे मिलती है वह भी छीन ली जाती है। इस रेखा-चित्रके शुरूमें निरालाजीने उस आलोचनाका जिक्र किया है जिसमें सरल और सुबोध साहित्यकी माँग की गई थी। उसके पहिले वाक्यसे ही मालूम होता है कि उस अलोचनाका उनपर असर पड़ रहा है। उन्होंने यह भी बता दिया है कि यह घटना किताबोंसे नहीं ली गई वरन् उनकी आँखों देखी हुई है। उन्होंने लिखा है, 'लोग कहते हैं, ऐसा लिखा जाय कि एक मतलब हो, उसी वक्त समझमें आ जाय, अपढ़ लोग भी समझें। बात बहुत सीधी हो। मुझे एक उदाहरण याद आया। लिखता हूँ। यह लिखा हुआ उद्धृत नहीं, देखा हुआ है।' लेखकने प्रयास किया कि उसकी भाषा सरल हो और बात ऐसी हो कि सबकी समझमें आ जाय। आँखों देखी घटनाओंको लेकर उसने और भी कहानियाँ और रेखाचित्र लिखे थे।

'देवी' कहानीमें उन्होंने अपने ऊपर ही व्यंग्य किया है। श्रीमतीजी को लेकर बङ्गला और हिन्दीके बहुतसे लेखकोंने अपने ऊपर मजाक किया है। लेकिन 'देवी' का व्यंग्य एक पूरे आन्दोलनपर है, यह व्यंग्य छायावादी कविके बड़प्पनपर है जो विराटकी पुकार करता हुआ साधारण जनोंकी महत्ताको भूल जाता है। 'देवी' एक अति साधारण पगली स्त्री है। उसमें मातृत्वकी भावना अभी जाग्रत है। इसके आगे कविका अहङ्कार क्षुद्र मालूम होता है। पगलीका जीवन कवि ही नहीं, समाजके नेताओं, उसके संचालकों, उसकी संस्कृति, कला और साहित्यपर एक तीखा व्यंग्य बन जाता है।

उपनिषद्में कहा गया है ब्रह्मा नाभिके समान संसारको बनाता है और फिर अपनेमें समेट लेता है, निरालाजीने मानो उसीकी पैरोडी करते हुए लिखा है, 'बारह साल तक मकड़ेकी तरह शब्दोंका जाल बुनता हुआ मैं मक्खियाँ मारता रहा।' इस चक्रव्यूहसे साहित्यकी रक्षा तो न हुई, उलटे फँसनेके डरसे लोग दूर होते गये। फ़ाक़ेमस्तीमें कविने परियोंके ख्वाब देखे। उसकी समझमें परियोंके ख्वाब देखना ही साहित्य को ऊँचा उठाना था। दूसरे मित्र सांसारिक उन्नति करते गये और कवि की सनकपर राह चलते हँसते रहे। लोगोंने कविताको खुराफ़ात बताया लेकिन उसने उसे न छोड़ा। तब क्या वह रतिशास्त्र और वनिता-विनोद या सीता, सावित्री और दमयन्तीकी कहानियाँ लिखता? भारतीय संस्कृति तो यही है कि चौरासी आसन बग़लमें दबा कर पत्नीको सीता और सावित्री भेंट की जाँय। बिना बड़प्पनके तारीफ नहीं होती। राजा या ब्राह्मण होनेपर भी राजर्षि और ब्रह्मर्षि होनेकी गुन्जाइश है। वैश्यों और शूद्रोंमें कोई ऋषि नहीं हुआ। बड़े लोगोंने बड़प्पनका जो चक्र-व्यूह बनाया है वह मकड़ेके जालसे कहीं अधिक भयङ्कर है। परियोंके ख्वाब देखने और रतिशास्त्र लिखनेके अलावा इस चक्रव्यूहपर भी साहित्य रचा जा सकता है। निरालाने एक ओर इस सामाजिक बड़प्पन की तस्वीर दी है तो अग्रभागमें पगलीका छुटपन दिखाया है। इस तुलना से सामाजिक विषमताकी खरी परख हो जाती है।

•

वह कहते हैं, 'बात यह कि बड़प्पन चाहिये। बड़ा राज्य, बड़ा ऐश्वर्य, बड़े पोथे, तोप-तलवार, गोले-बारूद, बन्दूक-किर्च, रेल-तार, जंगी जहाज, टार्पेडो, माइन्स, सबमॅरीन, गैस, पलटन, पुलिस, अट्टालिका उपवन आदि आदि सब बड़े-बड़े--इतने कि वहाँ तक आँख नहीं फैलती, इसलिये कि छोटे समझें वे कितने छोटे हैं।' इस वाक्यके साथ पन्तजी के पूर्वी पश्चिमी गोलार्द्धों वाले वाक्यका स्मरण कीजिये जिसमें कविने

वामनकी तरह सारी पृथ्वी नाप लेनेकी आकांक्षा प्रकट की है। निरालाजी ने भी अनेक निबन्धोंमें विराट चित्रोंकी माँग की थी। यह वाक्य मानो उन विराट चित्रोंकी पैरोडी है।

कविने जितना ही संसारके बड़प्पनके बारेमें सोचा उतना ही उसके अपने बड़प्पनका भाव भी बढ़ता गया। सुरसाकी तरह संसारका बड़प्पन अगर उसे लील जाना चाहता था तो महावीरकी तरह उसका अहंकार भी बढ़ता गया। 'बड़े होनेके ख्यालसे ही मेरी नसें तन गईं. और नाममात्रके अद्-भुत प्रभावसे मैं उठ कर रीढ़ सीधी कर बैठ गया।' लेकिन तभी उनकी नजर रास्तेके किनारे बैठी हुई पगलीपर पड़ी। तुरन्त ही अहंकारने मसक-रूप धारण कर लिया।

पगलीके बाल कटे हुए थे। ताज्जुबकी निगाहसे वह आने-जानेवालो को देखती थी। उमर पच्चीस सालसे भी कम होगी। दोनों स्तन खुले हुए थे। प्रकृतिकी मारोंसे लड़ती हुई मुरझा गई थी। पासमें डेढ़ सालका बच्चा था। संसारकी स्त्रियो जैसी एक भी भावना उसमें नहीं थी। 'उसे देखते ही मेरे बड़प्पन वाले भाव उसीमें समा गये और फिर वही छुटपन सवार होगया।'

होटलके नौकर संगमलालने बताया कि पगली होटलकी बची हुई रोटियोंसे पेट पालती है। पगलीके बारेमें पूछताछको मज़ाक समझकर वह चलता हुआ। लेकिन कवि सोचने लगा, मानलो मैं बड़ा हो भी गया तो इस स्त्रीका क्या होगा? साहित्यकारका बड़प्पन समाजके इन अभागोंकी क़िस्मत नहीं पलट सकता। पेड़की छाँह या खुले बरामदेमें वह लूके थपेड़े सहती है। 'मुमकिन है इसके बच्चेकी हँसी उस समय इसे ठंडक पहुँचाती हो।' हाँ, उसे अभी इतना ज्ञान है कि प्रकृतिके कठोर ताप और बच्चेकी मुसकानकी कोमलताको वह समझ सके। कविको नेपोलियनकी याद आती है। वह सोचता है क्या वह इससे भी बड़ा वीर था? क्या

उसने भी इसी तरह निराश्रित और निस्सहाय होकर प्रकृतिकी मारें सहीं थीं ?

कवि फिर कवियोंके ख्वाब देखता है लेकिन इस बार ये परियाँ स्वर्ग की नहीं। वह जिन्दगी और मौतकी लड़ाईमें देखता है कि पगलीके भीतरकी परी इस दुनियासे दूर उड़ जानेकी तैयारी कर रही है। उसकी भावभङ्गी देखकर रवीन्द्रनाथका अभिनय भी फीका लगता था। उस गूँगीके भावोंको व्यक्त करनेके लिये कविकी भाषा ही गूँगी बन जाती है। 'यहाँ माँ-बेटेके मनोभाव कितनी सूक्ष्म व्यंजनासे संचरित होते थे, क्या लिखें ! डेढ़-दो सालके कमजोर बच्चेको माँ मूक भाषा सिखा रही थी—आप जानते हैं, वह गूँगी थी। बच्चा माँको कुछ कह कर न पुकारता था, केवल एक नजर देखता था, जिसके भावमें वह माँको क्या कहता था, आप समझिये; उसकी माँ समझती थी; तो क्या वह पागल और गूँगी थी ?'

नहीं, वह पागल और गूँगी नहीं, देवी थी। पागल और गूँगा वह समाज जिसने इस तरहकी देवियोंको पथकी भिखारिन बना दिया था। पता नहीं, अपने बच्चेकी तरह ये पगली भी रास्तेके किनारे ही पल कर बढ़ी हो। पता नहीं, उसका विवाह हुआ हो और गूँगेपनका पता लगनेपर पतिने उसे निकाल दिया हो। शायद यह बच्चा किसी ख्वाहिशमन्दका सबूत हो। कुछ भी हो, उसकी इस हालतकी जिम्मेदारी समाजपर है, इससे इन्कार नहीं किया जा सकता। परियोंके ख्वाब देख कर यह समाज क्या खाक [illegible] जब [illegible] देवियाँ इस तरह प्रकृतिसे लड़ती हुई लाञ्छित [illegible] देह सभी कु[illegible] कर देंगी।

यह [illegible] याद [illegible] की बाँह पर अपना [illegible] तो

सभ्यता, बड़े-बड़े शिवालय चूर्ण होगये। उसका बच्चा भारतका सच्चा रूप था।

एक रोज़ उसी रास्ते नेताका जुलूस निकलता है। पगली आश्चर्यसे हजारों आदमियोंकी भीड़ देख रही थी। भौंहे सिकोड़े, मुँह फैलाये, आँखों पर जोर देकर वह इस भीड़का मतलब समझनेकी कोशिश कर रही थी। कवि पूछता है, 'क्या समझी, आप समझते हैं?' फिर उत्तर देता है, 'भीड़में उसका बच्चा कुचल गया और रो उठा।' नेता दस हजारकी थैली लेकर जनताका उपकार करने चले गये।

एक दिन रामायणी समाजमें रामायणका पाठ हुआ। मानसमें स्नान करनेके बाद भक्त-मण्डली पगलीके पाससे निकली। किसीने कहा, कर्मका दण्ड है। किसीने कहा, स्वर्ग और नर्क इसी संसारमें हैं। तीसरे ने गोस्वामीजीकी चौपाई पढ़दी,

'सकल पदारथ हैं जगमाही।
कर्महीन नर पावत नाहीं।'

धर्मने राजनीतिसे अधिक उदारता नहीं दिखाई।

पगलीकी जाति क्या थी, उसका धरम क्या था, इसके बारेमें लोगों को अब भी चिन्ता थी। संगमलालने बताया वह हिन्दू थी फिर मुसलमान होगई। लेकिन उस रास्तेसे जितने हिन्दू-मुसलमान निकलते, उन्हें देखने-दिखानेकी ऐसी आदत पड़ गई थी कि वे तस्वीरके अलावा भाव तक पहुँच ही न पाते थे।

एक दिन शहरमें फौजका प्रदर्शन भी हुआ था। कवि बरामदेमें नंगे बदन खड़ा हुआ सिपाहियोंको देख रहा था। बड़े बालोंके कारण लोग पीठ पीछे मिस फैशन कह कर आवाजाकशी करते थे। 'मेरे ग्रीक कट, पाँच-फुट साढ़े ग्यारह इंच लम्बे, जरूरतसे ज्यादा चौड़े और चढ़े

मोढ़ोंके कसरती बदनको देख कर किसीको आतङ्क नहीं हुआ।' खुदसे कुछ बस न चला तो पगलीकी ओर देखने लगे। वह बैठी हुई सिपाहियोंको देख रही थी। 'सिपाही मिलिट्री ढङ्गसे लेफ्ट-राइट, लेफ़्ट-राइट दुरुस्त, दर्पसे जितना ही पृथ्वीको दहलाते हुए चलरहे थे, पगली उतना ही उन्हें देख-देखकर हँस रही थी। गोरे गम्भीर होजाते थे। मैंने सोचा, मेरा बदला इसने चुका लिया।' पगलीने गोरोंसे ही बदला नहीं चुकाया। राजनीतिके नेता जिन्होंने निरालाजीकी कद्र नहीं की, रामायणका पाठ करनेवाली ब्राह्मण मण्डली जो यज्ञोपवीत न होनेपर उसकी भर्त्सना करती, शिक्षाके केन्द्र जो डिग्री न होनेसे उसे अशिक्षित समझते,—इन सभीसे पगलीने बदला ले लिया।

इसी तरह पगलीसे जान-पहिचान हुई। वह इनको अपना शरीर-रक्षक समझती थी और ये उसको अपना सम्मान-रक्षक, लड़के तङ्ग करते थे तो पगली करुण दृष्टिसे इनकी ओर देखने लगती थी। वह खुद भी पैसे देते थे, और मित्रोंसे भी दिला देते थे। कुछ लोगोंने उड़ाया कि उसके पास बहुत बड़ी दौलत है जो उसने मिट्टीमें गाड़ कर रख छोड़ी है। एक मित्र मज़ाकमें उससे दो रुपये माँगने लगे। दौलतकी बात सुन कर पगली खूब हँसी और फिर कमरके तीन पैसे निकाल कर उनके सामने बढ़ा दिये।

पानी बरसनेपर बिस्तर उठाते-उठाते भींग जाता था। इसी तरह लू की मार भी सहनी पड़ती थी। पगली तपस्या तो करती थी लेकिन काम न करती थी। बैठे-बैठे हाथ पैर जकड़ गये। पानी पीनेके लिये सड़क पार करती थी तो उसे आधा घण्टा लग जाता था। एक फर्लाङ्गपर भी इक्का या ताँगा होता तो वह खड़ी रहती। उसकी नजर मानो कहती थी, क्या ये सड़क सिर्फ मोटर और ताँगोंके लिये है। एक दिन उसका बच्चा बरामदेसे नीचे गिर पड़ा। होटलके एक अमीर बोर्डरने सङ्गमसे कहा कि वह पगली

को ढूँढ़कर बुला दे। उसकी बात कविके हृदयपर चाबुक जैसी लगी। उसने दौड कर बच्चेको उठा लिया। मित्रने सावधान भी किया कि बच्चा बहुत गन्दा है। बहुत दिन बाद कवि एक छोटे बच्चेको लेकर गोदमें खिलाने लगा। लिखा है, 'उतनी चोट खाया हुआ बच्चा चुप होगया, क्योंकि इतना आराम उसे कभी नहीं मिला। उसकी माँ इस तरह बच्चे को सुखके झूलेमें झुलाना नही जानती। जानती भी हो तो उसमें शक्ति नहीं... .. इसलिये वह चोटकी पीड़ा भूल गया, और सुखकी गोदमें पलकें मूँदकर बातकी बातमें सो गया।'

आसपासके मित्रोंने इस बातको बड़ा महत्व दिया। जो सो गये थे, उन्होंने दूसरोंको जगा दिया, सिर्फ यह देखनेके लिए कि हिन्दीका इतना बड़ा कलाकार इतने छोटे-से बच्चेको खिला रहा है।

जाड़ेकी रातमें होटलके बाहर कूँ कूँ की आवाज़ सुनाई पड़ी। बाहर एक मामूली कम्बल-सा ओढ़े हुए बच्चेके साथ पगली फुटपाथपर लेटी थी। जब दुनियाका ज्ञान रहता तब हाड़ छेदनेवाली सर्दीसे कराह उठती। कविको अपनी विवशताका ध्यान आया। उसने देखा लेकिन देख कर भी कुछ कर न सका। 'जमीनपर एक फटी पुरानी ओससे भीगी कथरी बिछी है, ऊपर पतला कम्बल। ईश्वरने मुझे देखनेके लिए पैदा किया है। मेरे पास जो ओढ़ना है, वह मेरे लिए भी ऐसा नहीं कि खुली जगह सो सकूँ।' कवि सम्मेलनमे लम्बी रक़म माँगनेका, टोपीसे जूते तक सारी पोशाक बनवाने और दो महीने बाद उसके गायब हो जानेका यही रहस्य है।

सड़े खानेकी शिकायत करते हुए होटलके बहुतसे बोर्डर निकल गये। होटल तोड़नेकी नौबत आगई। सगमने भी दो महीनेकी बकाया तनख्वाहकी शिकायत की और दस रुपए काट कर पहले उसे देनेके लिए कविसे सिफारिश की। आश्वासन पाते ही उसके ओठोंपर नवयुवतियोंकी

आँखोंको मात करने वाली हँसी फैल गई। लेकिन मैनेजर साहबने उसकी यह आशा पूरी न होने दी। पगलीको डबल निमोनिया होगया और बच्चेको अनाथालय भेज दिया गया। पगलीने बच्चेको पास रखनेकी बड़ी ज़िद की। एक दिन सगम फिर आकर खबर देता है कि मैनेजर साहब रुपये लेकर भाग गये। पगलीका मरना और मैनेजरका भागना दोनों बातें एक ही साथ होती हैं। हत्या और लूट दोनोंका जान-बूझ कर एक साथ चित्रण किया गया है। जाड़ेके दिनोंमें किसी स्त्रीको फुटपाथपर सुलाना उसकी हत्या करना नहीं तो और क्या है। नौकरोंके रुपये मार कर खुद बड़े आदमी बनना दुनियाको लूटना नहीं तो और क्या है ? इस प्रकार निरालाजीने अपना यह रेखा-चित्र जिसका नये साहित्यके लिए वही महत्व है जो छायावादी कवितामें 'जुहीकी कली' का, समाप्त किया है।

रोमाटिक कवि हास्य और व्यङ्गयके लिए शायद ही कहीं प्रख्यात हुए हों। सामाजिक अनाचार देख कर उन्हे क्रोध आता है; उनकी कवितामें एक रोषपूर्ण चीत्कार फूट पड़ती है, परन्तु व्यङ्गय और हास्यके लिए तो संयम चाहिये। इन कवियोंमें इतनी तन्मयता होती है कि वे उतनी तटस्थता नही ला पाते जितनी व्यङ्गयके लिए आवश्यक होती है। शेलीने 'मास्क ऑफ़ एनार्की' नामकी कवितामें इंग्लैंडके शासक वर्गपर तीव्र व्यंग्य किया है। ऐसा व्यङ्गय इंग्लैंडके उन कवियोंमें भी नही मिलता जो केवल व्यङ्गयके लिए ही प्रसिद्ध हैं। परन्तु शेलीकी यह रचना एक अपवाद जैसी है। उसे हास्य और व्यङ्गयका कवि नहीं कहा जा सकता। परन्तु निरालाजीने अपनी रचनाओंमें विशेष कर गद्यमें, हास्य और व्यङ्गय के इतने उदाहरण दिये हैं कि कभी कभी यह निश्चय करना मुश्किल हो जाता है कि उनके भीतर कौनसी प्रवृत्ति अधिक तीव्र है। 'मतवाला' कालमें जहाँ उन्होंने छायावादी कविता करते हुए तन्मयताकी पराकाष्ठा करदी थी, वही 'चाबुक' आदि स्तम्भोंमें उन्होंने बौद्धिक तटस्थताका

भी परिचय दिया था। दर्शन, व्याकरण आदि शुष्क विषयोंके आधारपर उन्होंने अपने विरोधियोंपर तीखा व्यङ्गय किया था। लेकिन उस समय उनके साहित्यकी मूलधारा छायावादी भावुकताकी ओर थी। सन् '३३ के बाद यह भावुकता कम होती गई और व्यङ्गयका ताप दिन-पर दिन बढ़ता गया। यह विकास हमें अँगरेज कवियोंमें बायरनकी याद दिलाता है, जिसकी कलाका सबसे अच्छा नमूना उसकी व्यङ्गय-प्रधान रचना 'डॉन जुआन' है। निरालाजीकी रचनाओंमें व्यङ्गय वैसे ही निखरा जैसे वे कवितासे गद्यकी ओर झुके।

व्यङ्गयपूर्ण गद्यमें 'देवी' उनका पहला मास्टरपीस है। इसका व्यङ्गय इतना प्रभावपूर्ण इसलिए है कि इसका लक्ष्य व्यक्ति विशेष नहीं है वरन् वह सामाजिक व्यवस्था है जिसमें मुफ्तखोर पूजे जाते हैं और जिन्हे पुजना चाहिये वे ठोकरें खाते हैं। यहाँपर निरालाजीने भारतीयताके नामपर जो अन्याय लीला होती है, उसकी हकीकत बयान करदी है। धर्म, राजनीति, समाज-सुधार देखनेमें बड़े सुन्दर शब्द हैं लेकिन इनकी आड़में न जाने कितने लोग अपनी स्वार्थ-साधनामें लगे हैं। निरालाने दिखाया है कि राजनीति तभी सफल होगी जब 'देवी' जैसी स्त्रियाँ समाजसे बहिष्कृत होकर होटलकी जूठनकी मुहताज न रहेंगी। वह धर्म नष्ट हो जायगा जो इस तरहकी सामाजिक विषमताको यह कह कर सहन कर लेता है कि अपने-अपने कर्मोंका फल है, किसीके बाँटे घी-शक्कर है और किसीको एक जून नमक और चना भी नसीब नहीं।

निरालाजीने अपने उपन्यासों और कहानियोंमें स्वाभाविक वार्तालाप के उदाहरण दिये हैं। लेकिन छायावादी कहानियोंमें—जिनका आरंभ बहुधा सोलह सालकी अधखुली जुहीकी कलीसे होता है—ऐसा मालूम होता है कि पात्रोंके मुँहसे स्वयं लेखक बातें कर रहा है। पुरुष पात्रोंके मुँहसे ही नहीं, स्त्री पात्रोंकी बातचीत भी वैसी है जैसी निरालाजी चाहते

हैं कि वह हो। 'देवी' में इसके विपरीत पात्र सजीव और उनका वार्तालाप पात्रोंके व्यक्तित्वसे ही फूट कर निकलता है। छायावादी लेखकोंकी कहानी–कलामें यह एक बहुत बड़ा परिवर्तन था। इनके साथ हम उस-मौन सम्भाषणको नहीं भूल सकते जो पगली और उसके बच्चेमें होता है। उनके मनोभावोंको व्यक्त करना बड़े ही कुशल कलाकारका काम था।

'देवी' और 'चतुरी चमार' का अटूट सम्बन्ध है। दोनोंका रचना-काल भी एक ही है और दोनोंकी शैली भी मिलती-जुलती है। दोनों ही रेखाचित्रोंमे लेखक स्वयं पात्रके रूपमें आता है, लेकिन 'चतुरी चमार' में जीवनकी विविधता अधिक है। लेखक बरामदेमें खड़ा होकर धर्म और राजनीतिके ठेकेदारोंपर टीका-टिप्पणी नहीं करता; वह उस समाजमें पैठ जाता है जहाँ इस ठेकेदारीका वीभत्स रूप दिखाई देता है। यहाँ वह टीकाकारसे अधिक चित्रकार है।

चतुरी चमारका जन्म उसी गाँवमें हुआ है जहाँ कविके पूर्वज न जाने कितनी पीढ़ियोंसे रहते चले आए हैं। चतुरीका पुश्तैनी घर उस जगह बना है जहां गाँव-भरके पनाले आकर पड़ते हैं। उमरमें वह कवि के चाचाके बराबर है। चमार होनेके कारण उन्हे काका कहता है। काका के लिए भी एक कठिनाई है, वह उसे आदर देना चाहते हैं क्योंकि वह देखते हैं कि जीवन चरित या ऐसा ही कुछ लिख लेनेवाले भी बड़े-बड़े आचार्योंसे प्रोत्साहन पा जाते हैं। चतुरी भी श्रद्धेय है क्योंकि उसके जूतोंकी बदौलत पासी जंगली जानवर फाँसते हैं, किसान ठूंठो पर ढोर हाँकते हैं और नाई न्योता बाँटते हुए सालमें हजार कोसकी यात्रा करता है। यह ज़रूर है कि बाँदा जिलेके जूते ज्यादा वज़नी होते हैं। इसका कारण यह है कि वहाँके चर्मकारोंपर रामचन्द्रजीकी तपस्याका प्रभाव पड़ा है। नवाबीके नज़दीक होनेके कारण चतुरीके जूते मज़बूत होनेपर भी वजनमें कम बैठते हैं। उसका घर कविके बगलमें ही था इसलिए उन्हें

यह पता लगाते देर न हुई कि चतुरीको हिन्दीके बहुतसे सम्पादकोंसे संत-साहित्यका ज्यादा अच्छा ज्ञान है।

कविके मनमें इच्छा हुई कि वह भी निर्गुण पद सुने। बैठक लगाने के लिए चरसका इन्तजाम कर देना ही काफ़ी था। मजीरेदार डफलियोंके साथ चतुरीने अनेक सन्तोंके पद सुनाये। बैठकका लीडर वही था। लोगोंको बताता जाता था कि कौनसे पद सुनाये जाये और अपने काका-को विद्वान् समझ कर उसने सन्त साहित्यके प्रति विद्वानोंकी उपेक्षाकी शिकायत भी की। कहा ये निर्गुण पद बड़े-बड़े विद्वान् नहीं समझते। फिर एक पदका मतलब समझाने लगा, लेकिन उसके काकाने इसे अपनी विद्वत्ताके प्रति अनुचित स्पर्द्धा समझ कर उसे बीचमें ही रोक दिया और सवेरे आकर मतलब समझानेको कहा। फिर भी 'वे लोग ऊँचे दरजेके उन गीतोंका मतलब समझते थे, उनकी नीचता पर यह एक आश्चर्य मेरे साथ रहा।' रातके एक बजे कविवरको नींदने सताया। चतुरीसे आज्ञा लेकर और दिवंगता काकीकी चर्चा करके वह शयन करने चले गये। चतुरीकी बैठक रातभर जमी रही और जब सवेरा हुआ तो दरवाजा खोलनेपर कविवरने देखा कि चतुरी बाहर बैठा हुआ दरवाजा खुलनेकी ही बाट जोह रहा था। सन्त साहित्यका वह सच्चा भक्त था। रातके वादेके मुताबिक वह अर्थ समझने आया था। कविवरको मानना पड़ा, 'जिनमें शक्ति होती है, अवैतनिक शिक्षक वही हो सकते हैं।' फिर भी मानो उसकी परीक्षा लेनेके लिए उन्होने कबीरकी उल्टबाँसी सीधी करनेको कहा। ये उल्टबाँसियाँ चतुरीके लिए खेल थीं क्योंकि उसे विश्वास था, जहाँ गिरह लगती है, साहब आप खोल देते हैं। उसके अर्थ सुन कर उन्होंने फिर विवाद न किया, सिर्फ यह टिप्पणी कि 'तुम पढ़े लिखे होते तो पाँच सौकी जगह पाते।'

यहाँसे कथाका दूसरा सूत्र आरम्भ होता है। चतुरीको अपने लिये

तो कोई आशा न थी, परन्तु वह चाहता था कि उसका पुत्र शिक्षा पाकर वैसी ही कोई जगह जरूर पा जाय। उसने प्रस्ताव किया कि काका उसे पढ़ादे। आदान-प्रदानमें बुराई भी नहीं। उसने कहा, 'तुम्हारी विद्या ले लेगा, मैं भी अपनी दे दूँगा, तो कहो, भगवानकी इच्छा होजाय तो कुछ होजाय।' सौदा इस शर्तपर पक्का हो गया कि चतुरी बाजारसे गोश्त ला दिया करे और चक्कीसे आटा पिसवा लाया करे। जूतोंकी तारीफ़ करने पर चतुरीने जमींदारकी शिकायत की कि वह मुफ्त दो-दो जोड़े बनवाता है जब उसका काम मजेमें एक जोड़ेसे ही चल जाता है। काकाने क़ानूनी सलाह दी, देखना चाहिये कि जूते देना वाजिब-उल-अर्जमें दर्ज है कि नहीं।

बाजारसे गोश्त आने लगा और उसमें लोध-पासी, धोबी-चमार, सभी शरीक होने लगे। कविका घर साधारण जनोंका अड्डा, बल्कि *House of Commons* होगया। चतुरीके लड़के अर्जुनकी पढ़ाई चलने लगी और इसी समय निरालाजीके चिरजीव श्री रामकृष्ण त्रिपाठी आम खानेके लिये गाँवमें पधारे। चमारोंसे इनका व्यवहार दूसरी तरहका था। उनके टोले में निकलनेपर कविको गोस्वामीजीकी यह पंक्ति याद आजाती थी, 'मनहु मत्त गजगन निरखि सिंह किसोरहिं चोप।' पुराने संस्कार जोर मार रहे थे। चमारने दबना सीखा था और ब्राह्मणने दबाना। कविने समझ लिया कि इनके ब्राह्मणत्व और शूद्रत्वका खात्मा किये बिना समाजका कल्याण न होगा।

अर्जुनमें बहुत-सी कमजोरियाँ थीं जिनके प्रति कविकी सहानुभूति थी तो चिरंजीवके लिये वे मनोरंजनका विषय बन गईं थीं। बाजारमें चतुरीने इशारेसे समझा दिया, गुण, गणेश, वर्णका उच्चारण न होनेपर नव-दस सालके पण्डित रामकृष्ण त्रिपाठी चतुरीके चिरंजीव अर्जुनवा पर धौंस गाँठ रहे थे। पिताने प्रकट होकर उस नाटकको समाप्त किया

परन्तु आपसमें एक दूसरा नाटक शुरू होगया। पण्डित रामकृष्णने अपना कसूर माननेके बदले पिताको ही अयोग्य शिक्षक ठहराया। इसका उत्तर न दे सकनेपर सिर्फ हँसनेके लिये पिताने आज्ञा दी कि अर्जुनसे तुम्हारी बातचीत बन्द। पण्डित रामकृष्णने कहा कि यहाँके आम खट्टे हैं, हमें नानीके यहाँ भेज दो। गाँव छोड़ कर कुछ दिनके लिये निरालाजी लखनऊ, बनारस आदि शहरोंमें रहे। उन दिनो किसान आन्दोलन ज़ोरोंपर था। इस समय सहायताके लिये गाँवके लोगोंने इन्हें भी स्मरण किया। ज़मीदारने किसानोंपर झूठे मुकदमे दायर कर दिये थे। तहकीक़ात करनेके लिये दारोग़ाजी भी आये। महावीरजीके अहातेमें तिरंगा झण्डा धुल कर सफेद होगया था। दारोगाजीकी हिम्मत न पड़ी कि उसे उतारें। फिर वह गाँवकी काँग्रेसके बारेमें पूछताछ करने लगे। कविवरने अंग्रेज़ीमें उन्हें बताया मैं विश्व-सभाका सदस्य हूँ और सदस्योंमें नोबुल पुरस्कार पाये हुए विद्वानोंके नाम गिना दिये। दुर्भाग्यसे थानेदार साहब इन सब नामोंसे अपरिचित थे इसलिए विश्व-सभाकी सदस्यताका उनपर कोई असर न पड़ा। लेकिन गढ़ाकोलाकी काँग्रेस भी ऐसी अण्डरग्राउण्ड हुई कि दारोगाजी पता लगाते ही रह गये। न तो उसका जिलेकी काँग्रेससे ताल्लुक था न किसी रजिस्टरमें वहाँके नेताओं के नाम लिखे थे। काम करनेमें वह जरूर तहसील भरसे आगे थी।

किसानोंपर जमींदारकी डिग्री दे दी गई। इसके बाद चतुरी वगैरहपर दावे दायर किये गये। पहली डिग्रीसे लोग इतने आतंकित होगये कि चतुरीके लिए मददकी कोई आशा न रही। घरकी पूँजी बेच कर वह मुक़दमा लड़नेके लिए तैयार हुआ लेकिन जीतनेकी आशा कम थी। सत्तू बाँध कर उन्नाव तक दस कोस पैदल चलकर चतुरीने अदालत लड़ी और एक दिन बहुत खुश होकर अपने काकाको यह शुभ संवाद सुनाया, 'जूता और पुर वाली बात अब्दुलअर्जमें दर्ज नहीं है।' शान उसे इस बातका

हो गया कि जमींदारको जबर्दस्ती दो जोड़े लेनेका अधिकार नहीं है। इस तरह पराजयमें भी चतुरीकी विजय हुई।

चतुरीमें कोई भी बात असाधारण नहीं। उसके जैसे न जाने कितने निम्नवर्गोंके लोग सन्तोंके पद गाते और जमींदारके लिये मुफ़्त जूते बनाते चले जाते हैं। लेकिन चतुरीमें विद्या प्राप्त करनेकी इच्छा है। वह भी चाहता है कि उसकी सन्तान पढ़-लिख कर सुखसे जीवन बिताये। देशमें राष्ट्रीय आन्दोलन छिड़ता है और उसकी एक हल्की लहर चतुरीके जीवनसे भी टकराती है। पीढ़ियोंसे दबे हुए अरमान कसमसा उठते हैं। किसानोंपर डिग्रियाँ करके जमींदार सारे गाँवको आतंकित कर लेता है लेकिन चतुरी थका होने पर भी हार नहीं मानता है। वह जमींदारसे अकेले लोहा लेनेकी तैयारी करता है। लेखकने उसका साथ ही नहीं दिया है वरन् निम्नवर्गोंकी इस नवीन चेतनासे अपने साहित्यके लिये प्रेरणा भी पाई है। चतुरी दस-दस कोस पैदल-चलता है, जमींदार और उसके साथ जो शोषणका तमाम प्रपञ्च है उसकी परवाह न करके वह लड़ाईके मैदानमें कदम बढ़ाता है। जिस दिन चतुरी जैसे साधारण व्यक्तिको अपने अधिकारका, अपने मनुष्यत्वका ज्ञान होजाता है, उस दिन उसमें असाधारण शक्ति और साहस आजाता है। शूद्रत्वका कैसे अन्त होता है, निरालाजीने यह तत्व चतुरीके जीवनसे समझा दिया। अब्दुलअर्जमें जूतोंके दर्ज न होनेपर चतुरीको जो खुशी होती है वह इसीलिये कि उसकी दास भावना मिट रही है।

नये ढंगके यथार्थवादी रेखाचित्रोंका सिलसिला एक-बारगी ही नहीं चल पड़ा। 'देवी' और 'चतुरी चमार' लिखनेके बाद निरालाजी पद्यमें ही नहीं गद्यमें भी पीछे छोड़े हुए रोमांसकी ओर बारबार झुकते थे। उनके पद्य साहित्यमें जिस तरह 'रामकी शक्ति पूजा' और 'तुलसीदास' संक्रमणकाल की रचनायें हैं उसी तरह उनके कथा-साहित्यमें 'निरुपमा' और 'प्रभावती'

हैं। इनके नायक 'अप्सरा' और 'अलका' से मिलते जुलते हैं लेकिन पार्श्व-भूमिमें पहलेसे चित्रमयता अधिक है। 'प्रभावती' में उन्होंने हिन्दुओंके सामाजिक संगठन और उनके मध्यकालीन इतिहासपर अपने विचार प्रकट किये हैं। 'निरुपमा' के कथोपकथन और ग्रामीण जीवनके चित्रोंमें यथार्थवादका रंग है।

'निरुपमा' का नायक कृष्णकुमार बङ्गालमें पैदा हुआ है। उसकी बङ्गला सुनकर शिक्षित-महिलायें दंग रह जाती हैं। कलकत्तेसे एम० ए० करनेके बाद लन्दन जाकर वह डी० लिट्० की उपाधि लाता है। वह अंग्रेजी साहित्यका ही विद्वान नहीं है, यूरोपकी अनेक भाषाओं और उनके साहित्यसे भी परिचित है। बाल भी उसने लम्बे रखा छोड़े हैं। संगीत में उसकी गति है और टैगोर स्कूलकी गायकी वह अच्छी तरह जानता है। रहनेवाला वह उन्नाव जिलेका है और सम्पत्ति सब रेहन रक्खी जा चुकी है। लन्दनसे लौटनेके बाद लखनऊमें ठहरा। नौकरीके लिए युनीवर्सिटी, क्रिश्चियन कॉलेज सब छान डाले लेकिन बङ्गाली प्रोफेसरोंके अनुचित स्पर्द्धा भावके कारण उसे कहीं जगह नहीं मिलती। उधर गाँवमें वह जाति-च्युत कर दिया गया है और उसके छोटे भाई और माँको अनेक अत्याचार सहने पड़ते हैं।

उसके गाँवकी जमींदार निरुपमा देवी उसीके होटलके सामने एक मकानमें रहती हैं। विचित्र ढङ्गसे दोनोंकी मुलाकात होती है। सड़कपर खाट बिछाये लेटा हुआ वह गाना गा रहा था। बिना जाने ही वही हाल था कि 'बिस्तर बिछा दिया है तेरे दरके सामने।' सामनेके मकानसे हारमोनियमपर गीतसे जवाब मिला 'तोमारे करियाछि जीवनेर ध्रुवतारा।' आवेशमें कुमार भी उन्हीं परदोंपर गीतके स्वरोंकी आवृत्ति करने लगा। उसे चुनौती देनेके लिये अब ग्रामोफोनका रिकॉर्ड लगा दिया गया जिसमें एक रमणी तार सप्तकमें टैगोर स्कूलका गाना गाने लगी। कुमार

ने एक सप्तक घटा कर गीत अदा कर दिया। 'अगर कण्ठके कामिनीत्वको छोड़ कर कमनीयत्वकी ओर जाया जाय तो कुमारने ही बाजी मारी।' हार कर तरुणीने बरामदेकी छतपर आकर यह अन्तिम सन्देश सुनाया, 'छूंचो, गोरू, गाधा।' फुटनोटके अनुसार, छूंचो अर्थात् छछून्दर, आलंकारिक रूपमें औरतोंके पीछे छुछुंआने वाला; गोरू अर्थात् गऊ यानी बुद्धिहीन और गधा तो प्रसिद्ध है ही। कुमार 'भज गोविन्दम्, भज गोविन्दम्' गाता हुआ करवट बदल कर लेट रहा।

नौकरी न मिलनेसे निराश होकर उसने बूट पॉलिश करनेका काम शुरू किया। अपनी प्रोफेसरी पोशाकका पूरा फ़ायदा उठाता था; पैसा चमारोंसे कम लेता था। चमारोंमें ईर्ष्या भाव जागा कि यह तो धन्धा खराब कर रहा है। ग़नीमत यह हुई कि चमारोंको अभी कोई संगठन न बना था नहीं तो वे कुमारका पॉलिश करना मुहाल कर देते। उसके इस कामसे पठित वर्गमें सनसनी फैल जाती है, जितने मुँह उतनी बातें सुनायी पड़तीं। 'सस्ता साहित्य समुद्र' के प्रकाशक ताना मारते हैं, हम चार रुपये फ़ॉर्म दे रहे थे मोपासॉके अनुवादके, वह आपको नहीं मंजूर हुआ; आखिर पालिश और ब्रश लेकर बैठे। ऐसे ही एक दूसरे सज्जन सात रुपये घण्टेकी ट्यूशन दे रहे थे उसे भी कुमारने ठुकरा दिया था।

जमींदारीका इन्तज़ाम निरुपमाके दादा सुरेशबाबू करते हैं। उनका अत्याचार साधारण ज़मींदारोंसे भी बढ़ा हुआ है। एक बार वह खुद जमींदारी देखने गईं। वहाँकी दशा देख कर उसकी आँखें खुल जाती हैं। एक बुढ़िया आकर उसे बताती है, छः रुपयेवाले खेतके अठारह रुपये देने पड़ते हैं, नजराना ऊपरसे। सुरेशबाबू कच्ची रसीद देते थे। 'पन्द्रहके पट्टेपर जबानी पचीस तय कर लेते थे। लोगोंसे बेगार लेकर खर्चका हिसाब जोड़ते थे। बबूलोंकी बिक्रीमें आधी रकम साफ़ कर जाते थे।' कृष्णकुमारके खेत बेदखल हो जानेसे वह अपने ही खुदाये हुए कुएँसे

पानी नहीं ले सकता। समाजमें वहिष्कृत होनेके कारण भोले-भाले बालक रामचन्द्र—कुमारके छोटे भाई—को जगह-जगह अपमानित होना पड़ता है। जाति प्रथाके कारण समाजमें जो ऊँच-नीचका भेदभाव फैल गया है उसकी तस्वीर इस तरहकी है : 'नीमके नीचे बैठक है। गुरुदीन तीन बिस्वे वाले तिवारी हैं; सीतल पाँच बिस्वे वाले पाठक, मन्नी दो बिस्वेके सुकुल; ललई गोद लिये हुये मिसिरः—पहले पाँच बिस्वेके पाँडे, अब दो कट गये हैं; गाँववालोंके हिसाबसे ललई पाँच ही जोड़ते हैं। सब हल जोतते और श्रद्धापूर्वक धर्मकी रक्षा करते हैं।' इनके इस ब्राह्मणत्वको कैसे खत्म किया जाय इसकी युक्ति निरालाजीने नहीं बताई।

तमाम समस्याओंका समाधान निरुपमा और कुमारसे होजाता है। जमींदार और किसानका संघर्ष पीछे पड़ जाता है। चित्रके अग्रभागमें संघर्ष कुमार और उसकी नौकरी छीननेवाले बङ्गाली प्रोफेसरोंका है। यामिनी हरण बाबूने नौकरी ही न छीन ली थी बल्कि अपने नामको सार्थक करते हुए निरुपमापर भी अधिकार जमा रक्खा था। सम्बन्धियोंके दबावसे इच्छा न रहनेपर भी वह यामिनी बाबूसे विवाहकी अनुमति दे देती है। इधर उसकी मित्र कमलाने कुमारको दो सौ रुपयेपर अपना शिक्षक नियुक्त कर लिया है। यामिनी बाबू पहले मिस दुबेका हरण कर चुके थे, इसलिए कमलाने धोखा देकर उनका विवाह मिस दुबेसे ही करा दिया। निरुपमासे विवाह करनेपर कुमारको अपनी ही नहीं, पत्नीकी सम्पत्ति भी मिल गई। इस तरह पार्श्वभूमिमें यथार्थवादी उपन्यासके उपकरण होते हुए भी 'निरुपमा' एक रोमांस ही बन पाया है जिसमें जीवनके अभावोंकी काल्पनिक पूर्ति की गई है।

सन् '३६ के आरम्भमें निरालाजीने अपना पहला ऐतिहासिक उपन्यास 'प्रभावती' समाप्त किया। इसे उन्होंने अपनी सलहज साहबाको समर्पित किया है। इन शिशुकृत कपोलकज्जला बीबोकी तारीफ़में उन्होंने

से दिगन्तके उरमें गूँजने लगीं। प्रभाका हृदय अनेक सार्थक कल्पनाओंसे द्रवीभूत होने लगा। बार-बार पुलकमें पलकों तक डूबती रही। सोपान-सोपानपर सुरंजिता, शिंजित चरण उतरती हुई, प्रति पद-क्षेप झङ्कार, कम्प कमलपर, चापल्यसे लज्जित कमला-सी रुकती रही। उरोजो से गुण चिह्न जैसे आए झीने चित्रित समीर चञ्चल उत्तरीयको दोनों हाथोंसे पकड़े उड़ते अञ्चलोंसे, प्रियके लिये स्वर्गसे उतरती अप्सरा हो रही थी।'

प्रभावती उपन्यास इस अप्सराकी ट्रेजेडी है। उसके प्रेमकी परिणति यौवनके मधुर स्वप्नोंके अनुकूल नहीं होती। पृथ्वीराज और जयचन्दके गृहयुद्धमे यह सारा ऐश्वर्य नष्ट-भ्रष्ट होजाता है। हम इसे छायावादकी भी ट्रेजेडी कह सकते हैं क्योंकि मध्यकालीन समाजमें जो सामाजिक उत्पीड़नकी आग धधक रही थी उससे यह वैभव अपनी रक्षा न कर सका। प्रभावती उपन्यास इतिहासके प्रति एक नया दृष्टिकोण भी है।

प्रत्येक रोमांटिक आन्दोलनमें यह देखा जा सकता है कि कवि पुरातनको स्वर्णयुगके रूपमें चित्रित करते हैं। ऊँच-नीचका भेद-भाव, घरेलू लड़ाई, किसानोंपर अत्याचार यह सब बातें भूलकर वे उस युगपर ऐसा मुलम्मा चढ़ाते हैं कि अपने युगसे असन्तुष्ट पाठकको वह खरा सोना जान पड़ता है। निरालाजीने मध्यकालकी बर्बरता, उत्पीडन और दासता को भावुकताकी रंगीन चादरसे ढँक नहीं दिया। उन्होने स्पष्ट शब्दोंमें हिन्दुस्तानकी पराजयके लिये क्षत्रियोंके उत्पीड़नको दोषी ठहराया है। यमुना कहती है: 'क्षत्रियोमें स्पर्द्धासे दबानेका जो भाव बढ़ा हुआ है, यह उन्हें ही दबा कर नष्ट कर देगा; यह प्राकृतिक सत्य है......वर्णाश्रम धर्म की प्रतिष्ठामें बौद्धोंपर विजय पानेवाले क्षत्रिय कदापि इस धर्मकी रक्षा न कर सकेंगे क्योंकि साधारण जातियाँ इनके तथा ब्राह्मणोंके घृणा भावोंसे पीड़ित हैं। यह आपसमें कट कर क्षीण हो जायँगे।'

ब्राह्मण जनताको शिक्षा देते थे कि राजा भगवानका अंश है, उसकी आज्ञा मानना प्रजाका कर्त्तव्य है। इसे धर्मके अनुसार सभी देशभक्त राजाके सिपाही थे, उन्हें वेतन मिले चाहे न मिले। किसानोंको खेती छोड़कर इस धर्मका पालन करना पड़ता था। निरालाजी कहते हैं: 'वह और ही युग था। एक ओर गाँवोंमे ग़रीब किसान छप्परोंके नीचे, दूसरी ओर दुर्गमें महाराज धन-धान्य और हीरे-मोतियोंसे भरे प्रासादोंमें, फिर भी उन्हींके फैसलेके लिये, न्यायके लिए, जाना और उन्हें भगवानका रूप मानना पड़ता था।'

यह विषमता आज भी चली आती है। लेकिन आज ठाकुरशाहीका ह्रास हो रहा है, उन दिनों सामन्तशाहीका बोलबाला था। कवियोंने पृथ्वीराज और संयोगिताके प्रेमसे भारतीको कृतार्थ किया। लेकिन निरालाकी दृष्टिने देखा कि जामवन्ती, इच्छनकुमारी, शशिव्रता, इन्द्रावती, हंसावती आदि आदि कुमारियोंने पृथ्वीराजसे नहीं उसके ऐश्वर्यसे प्रेम किया था। 'ये वरे हुए वीरको वर कर कीर्तिको वरती हैं, जो स्त्री है।' इसलिए इनका विवाह अस्वाभाविक और समाजके लिये घातक है। वीर वह समझा जाता था जो दम्भका परिचय दे और उसी कुमारीका प्रेम सार्थक समझा जाता था जो ऐसे दम्भीको वरे। यह सामाजिक विषमता 'साधारण जनोंको आत्मासे असह्य थी।' इसलिये अब या तो ऐसे उपन्यास लिखे जायें जिनमें इस असह्य विषमताका चित्रण हो या वर्तमान समाजमें उस तरहके चित्र ढूंढे जायें। जागरूक कलाकार मध्यकालीन समाजके वैभवका चित्र अङ्कित करके सन्तुष्ट न रह सकता था।

ख है कि पन्द्रह वर्षकी वधूके रूपमें उन्होंने मातृविहीन दो शिशुओं की सेवा करना शुरू कर दिया था। इसलिए शृंगारकी साधनाका समय नहीं मिला। ऐसी देवीके हाथ किसी भी चमत्कारसे पुरस्कृत नहीं किये जा सकते। कालिदास भी उन्हे 'वीणा–पुस्तक रंजित हस्ते' नहीं कह सकते। फिर भी निरालाजीने उन्हे 'प्रभावती' उपन्यास समर्पित किया है। इस उदार रमणीके आदर्शको यमुनाके रूपमें उपन्यासमें प्रतिष्ठित किया गया है। इसलिए समर्पण उपयुक्त ही है।

उपन्यासके आरम्भमें ही बैसवाड़ेका वर्णन है। घनी अमराइयोंकी याद करके वह उसे सौ योजन तक फैला हुआ एक सुन्दर उपवन कहते हैं। वहाँके ग्राम गीत किसी भी दर्शकको तुरन्त मुग्ध कर लेते हैं। यहींपर लोना नदी भी बहती है जिसकी उत्पत्तिमें राजा भगीरथके बदले लोना चमारिनकी कथा है। कहते हैं कि लोना खेत काट रही थी। तभी पुत्रों के आ जानेसे अपने वस्त्रहीन अङ्गोंको छिपानेके लिये वह भागी और भागते-भागते गङ्गाके गर्भमें आश्रय लिया। निरालाजीने लिखा है यह नदी वैसी ही आख्या रखती है जैसी भागीरथी। यानी लोनाका सम्बन्ध भले ही एक चमारिनसे हो उसका महत्व गङ्गासे कम नहीं।

इसका यह मतलब नही कि गङ्गासे उन्हे कम स्नेह है। 'प्रभावती' ऐतिहासिकके साथ-साथ प्रादेशिक उपन्यास भी है; उसमें एक जनपदके नदी-नालों, वन उपवन; ऐतिहासिक संस्कृति, रीतिरिवाजोंका बड़े प्रेमसे वर्णन किया गया है। लोना नदी गढ़ाकोलाको घेर कर बहती है, इसलिये उसका ज़िक्र भी आया है। डलमऊकी गङ्गाके पासके अनेक दृश्योंका भी वर्णन किया गया है। कल्पना नेत्रोंसे ईशाके किनारे उन्होंने अप्सरा के समान स्वर्गसे उतरते हुए कुमारी प्रभावतीको देखा था। मध्यकालमें डलमऊकी कुमारियाँ घीके दीपक जला कर गङ्गामें प्रवाहित करती थीं।

प्रभावतीके कथानकके सूत्र कुछ उलझे हुए हैं, फिर भी मूल कथा

सीधी-सी है। प्रभावती और राजकुमार देवमें शिकार खेलते हुये प्रेम हो जाता है। दोनोंके पिता एक दूसरेके कट्टर शत्रु हैं। यमुना जो वास्तवमें एक राजकुमारी है, परन्तु दासीके रूपमें प्रभावतीके यहाँ रहती है, गुप्त रूपसे विवाहका प्रबन्ध करती है। नौका-विहार करते समय विरोधी दलसे मुठभेड़ होजाती है। राजकुमार देव घायल होजाते हैं और शेष उपन्यासमें उनकी कोई उल्लेखनीय भूमिका नहीं होती। यह युग पृथ्वीराज और जयचन्दकी परस्पर स्पर्द्धाका था। मूल कथाके चारों ओर सरदारों की साज़िशे, वन्दीगृहमें षडयन्त्र, वनमें साधुवेश धारण किये वीर सिंहके राजनीतिक और सामरिक दाँव घात, विद्याका गुप्त जीवन, पहले नर्तकी फिर डाकुओंमें राजराजेश्वरी आदि आदि अनेक चमत्कारी वृतान्त गुंथे हुये हैं। संयोगिता और पृथ्वीराजकी रक्षा करते हुये प्रभावती खेत रहती है। कथामें घटनाओंका ऐसा ऊहापोह न रहता तो उपन्यास अधिक रोचक रहता।

पुरुष पात्र कुछ धुँधलेसे हैं परन्तु महाराज शिवस्वरूप एक अपवाद हैं। वह अपनी दण्ड-बैठक और मोटी बुद्धिके कारण इतने स्पष्ट हैं कि वहाँ धुँधलेपनकी गुँजायश ही नहीं। लेखकका आदर्श यमुनाके रूपमें प्रतिष्ठित हुआ है। दासी होनेपर भी वह प्रभावतीकी शिष्या है और उसे वे तमाम रहस्य समझाती हैं जिनसे क्षत्रियोंको पग-पगपर हार खानी पड़ रही है। प्रभावती अप्सराकी तरह छायावादी कविताका एक उपकरण है। यमुनाकी तुलनामें उसका व्यक्तित्व विकसित नहीं हो पाया। लेकिन छायावादी सौंदर्य ऐसे भव्यरूपमें पहले कम प्रकट हो पाया है। गङ्गाके किनारे किलेकी ऊँची सीढ़ियोंसे चाँदनी रातमें उतरती हुई, आभूषणोंसे सजी हुई राजकुमारी साक्षात् अप्सरा-सी जान पड़ती है। उसके आगे कनकका वैभव फीका लगता है। लिखा है 'अनुकूल ज्योत्सना के शुभ्र समुद्रमें आकुल पदोंकी नूपुर ध्वनि तरगें कितने प्रिय अर्थों

से दिगन्तके उरमें गूँजने लगी। प्रभाका हृदय अनेक सार्थक कल्पनाओंसे द्रवीभूत होने लगा। बार-बार पुलकमें पलको तक डूबती रही। सोपान-सोपानपर सुरंजिता, शिंजित चरण उतरती हुई, प्रति पद-क्षेप झङ्कार, कम्प कमलपर, चापल्यसे लज्जित कमला-सी रुकती रही। उरोजो से गुण चिह्न जैसे आए झीने चित्रित समीर चञ्चल उत्तरीयको दोनों हाथोंसे पकड़े उड़ते अञ्चलोंसे, प्रियके लिये स्वर्गसे उतरती अप्सरा हो रही थी।'

प्रभावती उपन्यास इस अप्सराकी ट्रेजेडी है। उसके प्रेमकी परिणति यौवनके मधुर स्वप्नोंके अनुकूल नही होती। पृथ्वीराज और जयचन्दके गृहयुद्धमें यह सारा ऐश्वर्य नष्ट-भ्रष्ट होजाता है। हम इसे छायावादकी भी ट्रेजेडी कह सकते हैं क्योंकि मध्यकालीन समाजमें जो सामाजिक उत्पीड़नकी आग धधक रही थी उससे यह वैभव अपनी रक्षा न कर सका। प्रभावती उपन्यास इतिहासके प्रति एक नया दृष्टिकोण भी है।

प्रत्येक रोमांटिक आन्दोलनमें यह देखा जा सकता है कि कवि पुरातनको स्वर्णयुगके रूपमें चित्रित करते हैं। ऊँच-नीचका भेद-भाव, घरेलू लड़ाई, किसानोंपर अत्याचार यह सब बातें भूलकर वे उस युगपर ऐसा मुलम्मा चढ़ाते हैं कि अपने युगसे असन्तुष्ट पाठकको वह खरा सोना जान पड़ता है। निरालाजीने मध्यकालकी बर्बरता, उत्पीडन और दासता को भावुकताकी रंगीन चादरसे ढँक नही दिया। उन्होंने स्पष्ट शब्दोंमें हिन्दुस्तानकी पराजयके लिये क्षत्रियोंके उत्पीड़नको दोषी ठहराया है। यमुना कहती है: 'क्षत्रियोंमें स्पर्द्धासे दबानेका जो भाव बढ़ा हुआ है, यह उन्हे ही दबा कर नष्ट कर देगा; यह प्राकृतिक सत्य है......वर्णाश्रम धर्म की प्रतिष्ठामें बौद्धोंपर विजय पानेवाले क्षत्रिय कदापि इस धर्मकी रक्षा न कर सकेंगे क्योंकि साधारण जातियाँ इनके तथा ब्राह्मणोंके घृणा भावोंसे पीड़ित हैं। यह आपसमें कट कर क्षीण हो जायँगे।'

ब्राह्मण जनताको शिक्षा देते थे कि राजा भगवानका अंश है, उसकी आज्ञा मानना प्रजाका कर्त्तव्य है। इसे धर्मके अनुसार सभी देशभक्त राजाके सिपाही थे, उन्हे वेतन मिले चाहे न मिले। किसानोंको खेती छोड़कर इस धर्मका पालन करना पड़ता था। निरालाजी कहते हैं: 'वह और ही युग था। एक ओर गाँवोंमें ग़रीब किसान छप्परोंके नीचे, दूसरी ओर दुर्गमें महाराज धन-धान्य और हीरे-मोतियोंसे भरे प्रासादोंमें, फिर भी उन्हींके फैसलेके लिये, न्यायके लिए, जाना और उन्हे भगवानका रूप मानना पड़ता था।'

यह विषमता आज भी चली आती है। लेकिन आज ठाकुरशाहीका ह्रास हो रहा है, उन दिनो सामन्तशाहीका बोलबाला था। कवियोंने पृथ्वीराज और संयोगिताके प्रेमसे भारतीको कृतार्थ किया। लेकिन निरालाकी दृष्टिने देखा कि जामवन्ती, इच्छनकुमारी, शशिव्रता, इन्द्रावती, हंसावती आदि आदि कुमारियोंने पृथ्वीराजसे नहीं उसके ऐश्वर्यसे प्रेम किया था। 'ये वरे हुए वीरको वर कर कीर्तिको वरती हैं, जो स्त्री है।' इसलिए इनका विवाह अस्वाभाविक और समाजके लिये घातक है। वीर वह समझा जाता था जो दम्भका परिचय दे और उसी कुमारीका प्रेम सार्थक समझा जाता था जो ऐसे दम्भीको वरे। यह सामाजिक विषमता 'साधारण जनोंको आत्मासे असह्य थी।' इसलिये अब या तो ऐसे उपन्यास लिखे जायँ जिनमें इस असह्य विषमताका चित्रण हो या वर्तमान समाजमें उस तरहके चित्र ढूंढ़े जायँ। जागरूक कलाकार मध्यकालीन समाजके वैभवका चित्र अङ्कित करके सन्तुष्ट न रह सकता था।

१०

प्रगति और प्रयोग

सन् '३८ '३६ के जाड़ेमें निरालाजी अपनी मित्रमण्डलीमें वह कथा बड़े नाटकीय ढगसे सुनाया करते थे जो पहले धारावाहिक रूपमें 'माधुरी' में और फिर पुस्तक रूपमें 'कुल्ली भाट' के नामसे प्रकाशित हुई। ससु-रालके दोस्त कुल्लीका इसी समय देहान्त हुआ था। उनके जीवनमें निरालाजीने कुछ बातें ऐसी देखी जिनपर लिखना ज़रूरी समझा। प्रगतिशील साहित्यकी भी इधर काफ़ी चर्चा रहती थी। निरालाजीने इस स्केचमें यह दिखाया कि साधारण मनुष्य भी अनेक कमजोरियाँ होते हुए समाजका बहुत बड़ा उपकार कर सकते हैं और महापुरुष कहलाने वाले लोग चरित्रपर नकली सफ़ेदी किये हुए समाजका उपकार करना तो दूर, सच्चे सेवकोंका साथ भी नहीं दे सकते। समर्पणमें लिखा है कि इसके योग्य कोई व्यक्ति हिन्दी-साहित्यमें नहीं मिला, इसलिए यह कार्य स्थगित रक्खा गया है। पुस्तकमें स्वयं लेखकके जीवनपर यथेष्ट प्रकाश डाला गया है लेकिन वर्णनमें विशेषता है तो यह भी एक गुण माना जायगा, यह कहकर निरालाजीने इसका समर्थन किया है। बहुतसे लोगोंपर जहाँ तहाँ व्यंग्य किया गया है। जो नाराज होगा वह अपनी ही कमज़ोरी साबित करेगा, यह कहकर निरालाजीने इन विरोधियोंका मुँह पहलेसे ही बन्द कर दिया है।

पहले उन्होंने जीवन चरित लिखनेवालों पर ही व्यंग्य किया। यह लोग जीवनसे चरित ज़्यादा देते हैं। चरित शब्दका प्रयोग चरित्तरके

अर्थमें हुआ है। महापुरुषोंने अपने हाथसे अपनी जीवनियाँ लिखी हैं; उनके लिखनेसे मालूम होता है कि वे पराधीन देशके रहनेवाले हैं। इनके महान कृत्योंको देखकर बम्बईके सिनेमा स्टारोंकी याद आती है जो दीवाल चढ़नेकी करामात दिखाया करते हैं। ऐसी स्थितिमें वह कुल्लीका चरित लिखकर एक आदर्श उपस्थित करना चाहते हैं। इनके जीवनके महत्व-को समझनेवाला ऐसा अब तक एक ही पुरुष संसारमें आया, पर दुर्भाग्य से अब वह संसारमें रहा नहीं—गोर्की, लेकिन गोर्की भी जीवनसे जीवन की मुद्राको ज्यादा देखता था, इसलिये कुल्लीका जीवन चरित्र लिखनेकी योग्यता निरालाजीमें ही सिद्ध हुई। लेकिन पहलेसे ही आशंका है कि हिन्दी पाठकोंको संतुष्ट करनेमें सफलता न मिलेगी, यही बीस सालका अनुभव है।

निरालाजी उन दिनोंकी याद करते हैं जब सोलहवाँ साल पार किया था और लोग कहते थे अब बबुआ नहीं हैं, गौना करा दो। प्लेगके दिनोंमें गौना हुआ, और गाँवके बाहर एक झोपड़ेमें प्रथम मिलन हुआ। पाँच दिन बाद विदा होनेपर गवहींका बुलावा आया। पिताजीने तिगुना खाने और रोज़ रूहकी मालिश करानेका उपदेश देकर पुत्रको विदा किया।

आगे चल कर कुल्लीकी पाठशालामें अछूत लड़कोंका वर्णन है; मानो उसीकी तुलना करनेके लिये आरम्भमें शान्तापुरी धोती और बंगाली ठाठका वर्णन किया गया है। ठीक दोपहरीको स्टेशनकी तरफ चले तो लूका ऐसा झोंका आया कि सारे परदे एक साथ ही हट गए। रहस्य-वादियोंकी तरह ज्ञान होगया। 'वह प्रकाश देखा कि मोह दूर होगया। लेकिन व्यक्ति भेद है; रविबाबूको आराम कुर्सीपर दिखा, हजरत मूसाको पहाड़पर, मुझे गलियारेमें।' बंगालकी वीरता और प्रेमके कारण लूके विरोधमें भी पैर बढ़ते गए। बैलगाड़ियोंके ढरेंमे पैर फिसल जानेसे अस्त-

श्रीमतीजीकी तुलना मछुआइनसे की और वह रुष्ट होकर चली आईं। कुल्ली फिर अपने घर ले गये और मिठाई पान खिलाकर सुन्दर गालीचे बिछे पलँगपर बिठाया। इत्रकी शीशी दिखानेपर 'मैं अज्ञात यौवन युवक की तरह कुल्लीको देखने लगा। फिर काफी हिचकिचाहटके बाद कुल्लीने कहा मैं तुम्हें प्यार करता हूँ। परन्तु कुल्ली अपना अर्थ न समझा सके और अज्ञात यौवन युवक उन्हें नमस्कार करके बाहर चला आया।'

कुल्लीसे जोड़ बराबर छूटे लेकिन खड़ी बोलीके मैदानमें श्रीमतीजी ने परास्त कर दिया। जिस समय उन्होंने स्त्रियोंकी भीड़में 'श्रीरामचन्द्र कृपालु भज मन हरण भवभय दारुणम्' गाया तो मालूम हुआ कि गलेमें मृदंग बज रहे हैं। संगीत और साहित्यपर उनका यह अधिकार देखकर 'मेरा दम उखड़ गया।' इस पराजयसे लज्जित हो करके बिस्तरा बाँधकर कलकत्ते जानेकी तैयारी की।

उसके बाद इन्फ्लुएंज़ाका प्रकोप हुआ जिसमें दोनों ओरके परिवार नष्ट होगये। फिर रियासतमें नौकरी की और उसे भी छोड़कर साहित्य सेवामें लग गए। लेख वापस आनेपर कोरियोंके यहाँ बुनाई सीखने जाने लगे। लेकिन उन्होंने भी कहा, महराज होकर यह काम क्या करोगे, ज़ाकर कहीं भागवत बाँचो। चारों तरफ़ निराशाकी अग्नि जल रही थी इसलिए जब कुल्लीने कुछ उपदेश देनेके लिए कहा तो इन्होंने संक्षिप्त उत्तर दिया, 'गंगामें डूब जाइये।'

कुल्ली एक मुसलमान महिलासे प्रेम करने लगे, लेकिन समाजमें कोई सहारा न था। कविवरने उसे ले आनेकी सलाह दी। समाजसे बहिष्कार हुआ; कुल्ली अछूतोंके लड़कोंको पढ़ाने लगे। अपनी पाठशाला में एक दिन कविवरको भी आमंत्रित किया। गढ़हेके किनारे कुटीनुमा बँगलेके सामने टाट बिछाये, श्रद्धाकी मूर्ति बने अछूत लड़के बैठे थे।

'कुल्ली आनन्दकी मूर्ति, साक्षात् आचार्य।' निराला जी इस अछूत वर्गके पीढ़ी दर पीढ़ी उत्पीड़नका ध्यान करके लिखते हैं, 'इनकी ओर कभी किसीने नहीं देखा है। ये पुश्त दर पुश्तसे सम्मान देकर नतमस्तक ही संसारसे चले गए हैं। संसारकी सभ्यताके इतिहासमें इनका स्थान नहीं। ये नहीं कह सकते, हमारे पूर्वज कश्यप, भरद्वाज, कपिल, कणाद थे। रामायण, महाभारत, इनकी कृतियाँ हैं; अर्थ शास्त्र, कामसूत्र इन्होंने लिखे हैं, अशोक, विक्रमादित्य, हर्षवर्धन, पृथ्वीराज इनके वंशके हैं। फिर भी ये थे और हैं।'

एक बार 'देवी' को देखकर छायावादी अहङ्कार नष्ट होगया था, इस बार फिर वही छुटपन सवार होगया। सदियोंके इस उत्पीड़नके सामने संस्कृति, कला, साहित्य सब खोखला जान पड़ा। उन्हे कुल्लीके महत्वका ज्ञान हुआ जो इनको उठाकर अपनी मनुष्यताके धरातल तक लाया। अपनी पुरानी कविता वैभव और विलासकी चेरी मालूम हुई; युग-प्रवर्तक और क्रान्तिकारी होनेका दावा दम्भ मालूम हुआ। उन्होंने लिखा है :—

'अधिक न सोच सका। मालूम दिया, जो कुछ पढ़ा है, कुछ नहीं; जो कुछ किया है, व्यर्थ है; जो कुछ सोचा है, स्वप्न। कुल्ली धन्य है। वह मनुष्य है। इतने जम्बुकोंमें वह सिंह है......ये इतने दीन दूसरेके द्वारपर नहीं देख पड़ते ? मैं बार-बार आँसू रोक रहा था। इसी समय बिना स्तवके, बिना मन्त्रके, बिना वाद्य, बिना गीतके, बिना बनाव, बिना सिंगार वाले, पासी, धोबी और कोरी दोनेमें फूल लिये हुए मेरे सामने आ आकर रखने लगे। मारे डरके हाथपर नहीं देरहे थे कि कहीं छू जानेपर मुझे नहाना होगा। इतना नत, इतना अधम बनाया है मेरे समाजने उन्हे..... लज्जासे मैं वहीं गड़ गया। वह दृष्टि इतनी साफ है कि सब कुछ देखती समझती है। वहाँ चालाकी नहीं चलती। ओफ ! कितना

मोह है! मैं ईश्वर, सौंदर्य, वैभव और विलासका कवि हूँ!—फिर क्रान्तिकारी !!!'

सत्यसे यह प्रेम, कटु सत्य कहनेका यह साहस निराला ही में है। यही उनके व्यक्तित्वको महान् बनाता है जब काल्पनिक साहित्यको वैभव और विलासकी वन्दना कह कर उसका तिरस्कार करते हैं। एक नए युग, एक नई साहित्यिक धाराका स्पष्ट स्वर इन वाक्योंमें हमें सुनाई पड़ता है।

समाजसे बहिष्कृत, किसी भी बड़े नेतासे सहारा न पाकर कुल्ली जैसे तैसे पाठशालाका कार्य चलाते रहे। उनके जीवनका करुण अन्त हुआ। मृत्युके उपरान्त कोई अन्तिम क्रिया करानेके लिये तैयार न हुआ। निरालाजीने स्वयम् जनेऊ धारण करके मन्त्र पढ़कर सब कार्य कराये।

कुल्लीभाटका व्यङ्ग्य एक पूरे युगपर है। एक ओर बङ्गालकी मध्यवर्गीय संस्कृति है, रहस्यवादकी बातें हैं, साहित्य और सङ्गीतकी चर्चा है; दूसरी ओर समाजके अछूत हैं, उच्च वर्गोंकी असहनशीलता है, हिन्दू मुसलमानका तीव्र भेद भाव है, बड़े-बड़े नेताओंमें सच्ची समाज सेवाके प्रति उपेक्षा है, कल्पनाकी उड़ान भरने वाले कवियोंमें क्रान्तिका दम्भ है। कुल्लीकी पाठ-शालाकी ठोस ज़मीनपर मनोहर कल्पनाये चूर होजाती हैं। यहाँ वह सत्य दिखाई देता है जिससे साहित्य और समाजके नेता आँखें चुराते हैं। जलके ऊपर सन्तोपकी स्थिरता जान पड़ती है लेकिन नीचे जीवन को नाश करनेवाला कर्दम छिपा हुआ है। निरालाजीने व्यङ्गयकी लाठी से इस शान्त जलको एकाएक खभो दिया है। उन्होंने लोगोंको विवश किया है कि वे मनुष्य द्वारा मनुष्यके इस उत्पीड़नको देखें। चन्द्रिका, कुल्ली, सासुजी, अपने पिताका और स्वयम् अपना चित्रण बड़े कौशलसे किया है। पात्रोंमें वैसी ही सजीवता है जैसी बैसवाड़ेके वर्णनमें चित्र-मयता। भाषा सरल और सधी हुई है। यथार्थवादी रचनाओंमें अपने

व्यङ्ग्य और हास्यसे निरालाजीने एक नई परम्पराका श्री गणेश किया है।

'बिल्लेसुर बकरिहा' ग्रामीण जीवनका एक दूसरा चित्र है। इसमें लेखक स्वयम् पात्रके रूपमें नहीं आया। तटस्थ रह कर उसने अवधके किसानोंकी एक भरीपूरी तस्वीर खींची है।

बिल्लेसुर 'निरुपमा' के कृष्णकुमारकी तरह उन्नाव जिलेके रहनेवाले हैं, लेकिन उसकी तरह लन्दनसे डी० लिट० न पानेपर भी जीवनमें अधिक सफलता पाते हैं। बकरी पालनेके कारण उनका नाम बकरिहा पड़ा। उनके तीन भाई और थे: मन्नी, ललई और दुलारे। इन सबके रेखाचित्र भी काफ़ी मनोरंजक हैं। तरीके सुकुल होनेके कारण मन्नीका ब्याह न होता था। एक विधवा माँकी दूध पीती लड़कीसे ब्याह करनेका विचार किया। जमींदारका खलिहान और गाँवके बाग़ अपने बता कर उसे फुसलाया। फिर दूधमें भँग छनवाई और पूरी-तरकारी खिलाकर सासुजीको सुला दिया। आधी रातको 'भावी पत्नीको गले लगाया' और भगवान बुद्धकी तरह घर त्याग कर चल दिये। दस बारह साल सेवा की। बीस सालकी उम्रमें उसे एक कन्यारत्न देकर स्वर्गवासी हुए। दूसरे भाई ललईने रतलामके एक गुजराती ब्राह्मणके यहाँ नौकरी की। उनके मरनेपर उनके घरका कुल भार, उनकी पत्नी और बेटों बेटियोंके समेत ललईने सम्भाला। यह गृहस्थी और माल असबाब लेकर घर आये लेकिन लोगोंने स्वागत करने के बदले उनका पानी बन्द कर दिया। आन्दोलन चलनेपर देशके उद्धार में हिस्सा लिया और जब बड़ा लड़का गुजरातसे रुपये भेजने लगा तो गाँवका असहयोग टूट गया। दुलारे आर्यसमाजी थे। एक सुकुलजी पचास सालकी उमरमें एक विधवा लाये थे, दुलारेने उससे अपना घर आबाद किया। उसे गर्भिणी छोड़कर वह भी परलोक सिधारे। बिल्लेसुरका वृत्तान्त अपने भाइयोंमें सबसे ज्यादा रोचक था।

बिल्लेसुरने सुना था कि बङ्गालका पैसा टिकता है। पासके गाँवके

बकरियोंकी नाती-नातिनें हुईं; कुछ पट्टे बेंचे और आमदनी हुई। लोग जल कर इन्हें बकरिहा कहने लगे। इसके जवाबमें बिल्लेसुर बकरियों के बच्चोंको अपने विरोधी गाँववालोंके नामसे पुकारने लगे। एक दिन जामुन खाते हुए बकरियाँ लिए चले जा रहे थे कि 'दीनानाथ' कहीं पीछे रह गये। होश आनेपर बिल्लेसुरने 'उर्र, उर्र! अले! अले! कहकर बहुत पुकारा लेकिन दीनानाथका कहीं पता न लगा। झाड़ीके पास खूनसे तर जमीन देखकर आँखोंमें शामकी उदासी छागई। झुटपुटेमें मन्दिरके पास आकर उल्टी प्रदक्षिणा की और फिर ललकाराः 'क्या तूने रखवाली की, बता; लिये थूथन-सा मुँह खड़ा है।' उत्तर न मिलनेपर महावीरजीके मुँहपर भरपूर डण्डा जमाया, जिससे मुँह टूट कर गिल्लीकी तरह दूर जा गिरा।

अब तक बिल्लेसुर जीवनसंग्राममें जूझ कर खरे सिपाही बन गए थे। ..र मानना सीखा ही न था; 'दुखका मुँह देखते-देखते उसकी डरावनी ...को बार-बार चुनौती दे चुके थे। खोया बनाकर बेचनेकी कोशिश की ...कामयाब रहे। फिर भैंसके घीमें बकरीका घी मिलाकर व्यौपार ... खेत गोड़ कर शकरकंदकी बौंड़ी लगाई। कभी लपसी, ...सत्तू सानकर खाते रहे। त्रिलोचन ब्याहका प्रस्ताव ...नया रोमांस शुरू हुआ। छायावादी कवि ... दिखाई देने लगा। रातको उसीके रूप ...चते रामरतनकी स्त्री ही याद ...रन मुकुलकी बिटियाकी सूरत ...सी पुखराजबाईकी लड़की ...ने वाले कल्पनावादी कवि ...के बकरीकी लेंड़ियोंकी बदबू ...ी।' नई पोशाक तैयार

लिए। सत्तीदीनके पैर पकड़ कर गायत्रीका मन्त्र लिया। सत्तीदीनकी पत्नी तीर्थयात्राके बाद सालभर तक देवताकी शक्तिकी परीक्षा करती रहीं। जब कोई फल न हुआ तो मनुष्यकी शक्तिकी पक्षपातिनी बन गईं। उनका यह यथार्थवाद बिल्लेसुरको यहाँ तक खला कि एक दिन उनके सामने कण्ठीमाला पटक दी और गायत्रीका मन्त्र सुना कर बिना पैर छुए ही गाँव चल दिये।

गाँवके सम्मानित लोग इनकी उन्नतिसे डाह करने लगे। त्रिलोचन ज्ञानवाली आँखसे ताड़ने लगे। बैल बेचनेकी बात चलाई लेकिन दूसरे दिन बिल्लेसुर तीन बड़ी-बड़ी गाभिन बकरियाँ ले आये। पण्डित रामदीनने लोभी निगाहसे बकरियोंको देखकर कहा : 'ब्राह्मण होकर बकरी पालोगे?' ललई कुमारने उत्साह बढ़ाया। मन्दिरके पास पहुँच कर बिल्लेसुरने महावीरजीसे बकरियोंकी रक्षा करनेकी प्रार्थना की। चरवाहे लड़के बकरियाँ उड़ानेके फेरमें खेलनेके लिए बुलाने लगे। बिल्लेसुरने संक्षिप्त उत्तर दिया, 'अपने बापको बुला लाओ, तुम क्या हमारे साथ खेलोगे?' दीनानाथने बकरियोंके दाम पूछे और एकाधको उड़ानेकी प्रतिज्ञा की।

बिल्लेसुर गाँवमें रहते थे जैसे दुश्मनोंके गढ़में। भाई भी साथ नहीं देते थे। बकरियोंके गन्धसे नफ़रत होनेके कारण उन्होंने बिल्लेसुरको मजबूर किया कि वे अलग मकानमें रहे। 'बिल्लेसुर सोचते थे, क्यों एक दूसरे के लिए नहीं खड़ा होता? जवाब कभी कुछ नहीं मिला। मुमकिन दुनियाँ का असली मतलब उन्होंने लगाया हो ......हमारे सुकरातके ज़बान न थी, पर इसकी फ़िलासफ़ी लचर न थी; सिर्फ कोई इसकी सुनता न था; इसे भी भूलभुलैयासे बाहर निकलनेका रास्ता नहीं दिखा, इसलिये यह भटकता रहा।' ज़िन्दगीकी लड़ाईसे बिल्लेसुरने सीखा कि आदमी अब भी अज़ान है।' जो ज्ञानी कहलाते थे, उनके अज्ञानका पता उन्हें लग गया।

बकरियोंकी नाती-नातिनें हुईं; कुछ पट्ठे बेंचे और आमदनी हुई। लोग जल कर इन्हे बकरिहा कहने लगे। इसके जवाबमें बिल्लेसुर बकरियो के बच्चोंको अपने विरोधी गाँववालोंके नामसे पुकारने लगे। एक दिन जामुन खाते हुए बकरियाँ-लिए चले जा रहे थे कि 'दीनानाथ' कहीं पीछे रह गये। होश आनेपर बिल्लेसुरने 'उर्र, उर्र! अले! अले! कहकर बहुत पुकारा लेकिन दीनानाथका कहीं पता न लगा। झाड़ीके पास खूनसे तर जमीन देखकर आँखोंमें शामकी उदासी छागई। झुटपुटेमें मन्दिरके पास आकर उल्टी प्रदक्षिणा की और फिर ललकारा: 'क्या तूने रखवाली की, बता; लिये थूथन-सा मुँह खड़ा है।' उत्तर न मिलनेपर महावीरजीके मुँहपर भरपूर डण्डा जमाया, जिससे मुँह टूट कर गिल्लीकी तरह दूर जा गिरा।

अब तक बिल्लेसुर जीवन संग्राममें जूझ कर खरे सिपाही बन गए थे। हार मानना सीखा ही न था; 'दुखका मुँह देखते-देखते उसकी डरावनी सूरतको बार-बार चुनौती दे चुके थे। खोया बनाकर बेचनेकी कोशिश की लेकिन नाकामयाब रहे। फिर भैंसके घीमें बकरीका घी मिलाकर ब्योपार किया। अकेले खेत गोड़ कर शकरकंदकी बौंड़ी लगाई। कभी लपसी, कभी बकरीके दूधमें सत्तू सानकर खाते रहे। त्रिलोचन ब्याहका प्रस्ताव लेकर आये। जीवनमें एक नया रोमांस शुरू हुआ। छायावादी कवि की तरह इन्हे भी संसार अबलामय दिखाई देने लगा। रातको उसीके रूप का स्वप्न देखते थे। 'बहुत गोरी है, सोचते रामरतनकी स्त्री ही याद आई। सोलह सालकी है, सोचा तो रामचरन सुकुलकी बिटियाकी सूरत सामने आगई। बड़ी-बड़ी आँखें होंगी, जैसी पुखराजबाईकी लड़की हसीनाकी हैं।' झोपड़ेमें परियोंका ख्वाब देखने वाले कल्पनावादी कवि की तरह 'एक दफ़ा भी बिल्लेसुरने नहीं सोचा कि बकरीकी लेंडियोंकी बदबू में ऐसी औरत एक दिन भी उस मकानमें रह सकेगी।' नई पोशाक तैयार

कराकर बिल्लेसुरने त्रिलोचनका पीछा किया और उसकी जालसाजीका तुरंतही पता लगा लिया। हताश न होकर मन्नीकी ससुराल चले गए।

कातिकमें मन्नीकी सास आई और मन्नीकी ही तरह बिल्लेसुरने उनका सत्कार किया। चने भिगो कर तरकारी बनानेके बदले काछीसे बैंगन लाये। बंगालकी रंगीन दरी बिछाई और सत्तीदीनकी श्रीमतीकी धोतियों का तकिया रक्खा। सासजीने प्रसन्न होकर विवाहका वर दिया। बिल्लेसुरने सत्तर रुपयेकी शकरकन्दे बेची और ब्याहकी तैयारी की।

शकरकंदके बाद चने और मटरकी भी खेती थी। कुछ अग्रिम रुपये लेकर ब्याह पक्का हुआ। गाँवके परजा नेग चारके लिए घेरने लगे। अब ज़मींदारने भी अपनी चरणरजसे उनके घरको पवित्र किया। लोगोंमें अफवाह फैल गई कि बिल्लेसुर सोनेकी ईंटे उठा लाए हैं। बिल्लेसुरने ब्याह किया और बहुत बार पूछनेपर भी अपने धनी होनेका भेद किसी को न बताया।

बिल्लेसुर ब्राह्मण कुलमें पैदा हुआ लेकिन जाति-प्रथाने मनुष्यताके इतने टुकड़े कर दिये हैं कि वह ब्राह्मणोंमें भी अछूत समझा जाता है। यह जाति-प्रथा पैसेका मुँह देखती है, यह बिल्लेसुरके एक भाईके बहिष्कार और फिर समाजमे ग्रहण करनेसे सिद्ध है। गाँवके सम्मानित वर्ग यह नहीं चाहते कि इतर जन किसी तरह भी उन्नति करे। ब्राह्मणत्वके खेतमें थोड़ेसे ही बिस्वे पानेसे बिल्लेसुर उन्नतिकी फसल नहीं काट सकते थे। लाचार होकर और बहुतसे लोगोंकी तरह परदेस गए। घोर तपस्या करनेके बाद गाँठमें कुछ रुपये लेकर गाँव लौटे। यहाँ खेतिहर मजदूर की तरह जीवन संग्राममें फिर जूझना पड़ा। ऊँची जातिके ग्रामीणोंकी तरह बिल्लेसुरकी बुद्धिका ह्रास न हुआ था। उनके चरित्रमें एक बहुत बड़ी दृढ़ता थी। निरालाजीने दिखाया है कि साधन न होनेपर भी अवध का एक साधारण किसान किस तरह अपनी रोटीके लिए लड़ाई लड़ता

है। गाँवके लोग चिढ़ाते ही नहीं हैं, उसका घर लूट लेनेपर भी उतारू हैं। बिल्लेसुर यह सब विरोध सहन करता है। एक देवताका सहारा था, कुछ दिनमें वह भी छूट गया। फिर भी वह हार नहीं माना। उसके भीतर हिन्दुस्तानी किसानकी अपराजिता शक्ति है, इसीने उसे एक वास्तविक हीरो बनाया है जिसका वीरत्व 'अप्सरा' या 'निरुपमा' के नायकोंमें नहीं। 'बिल्लेसुर बकरिहा' हिन्दीके यथार्थवादी साहित्यको एक बहुत बड़ी देन है।

निरालाजीकी युद्धकालीन कवितायें

दूसरे महायुद्धका समय निरालाजीके प्रयोगोंका समय रहा है। इस कालमें हमारे देशने क्या-क्या महान घटनाएँ नहीं देखीं। बङ्गालमें ऐसा अकाल पड़ा जैसा संसारके इतिहासमें पहले देखा सुना न गया था। सन् '४२ में नौकरशाहीने कॉग्रेसके नेताओंको जेलोंमें ठूंस दिया। काफ़ी दिन तक हमारा राजनीतिक-जीवन दिशाहीन-सा रहा। युद्धके संकटका सभी हिन्दी लेखकोंपर प्रभाव पड़ा है। कुछने तो इन दिनों लिखना ही बन्द कर दिया था; कुछमें पुराने निराशावादने फिर सिर उभारा। कुछ लोग नए-नए प्रयोग करने लगे। ऐसे संकटके समयमें जनतामें विश्वास रख कर सही मार्ग पहचानना बड़े जीवटका काम था। युद्ध-कालका यह प्रभाव अनेक रूपोंमें निरालाजीकी रचनाओंमें भी दिखाई देता है।

युद्धके पहले वर्षोंमें उन्होंने कुछ व्यंग्यात्मक कविताएँ लिखी थीं। इनमें 'कुकुरमुत्ता' की विशेष चर्चा हुई। अभी तक किसीने नामसे ही नगण्य कुकुरमुत्ता जैसी वस्तुपर लिखनेका विचार न किया था। लोगोंमें इस बातपर मतभेद रहा कि निरालाजी इस कवितामें किसपर व्यंग्य करना चाहते हैं। इस मतभेदका कारण कविताकी अस्पष्टता है जो युद्धकालमें उनके विश्वासोंके डिग जानेसे पैदा हुई है। कुकुरमुत्ता उनके अद्वैतवाद की नकल हो सकता है। क्योंकि ब्रह्मकी तरह वह बलरामके हलसे लेकर आधुनिक पैराशूट तक सभीमें व्याप्त है। इसके साथ कुकुरमुत्ता निम्न हीन वर्ग

का भी प्रतीक है और खादका खून चूसनेवाले गुलाबको वह कैपिटलिस्ट कहकर उसकी निन्दा भी करता है। लेकिन दुनियासे गुलाब मिटा दिये जाएँ और उनकी जगह कबाब बनानेके लिये कुकुरमुत्ते ही रह जाएँ, यह रूपक भी चुस्त नहीं बैठता। उपयोगितावादके विकृत रूपको स्वीकार करनेपर ही ऐसी कल्पना सार्थक लगेगी। शायद निरालाजीने प्रगतिवाद को इसी तरहका उपयोगितावाद समझा था। इसलिये कुकुरमुत्ताका व्यंग्य जहाँ गुलाबको मारता है, वहाँ खुद उसे भी हास्यास्पद बना देता है।

कहानी संक्षेपमें यों है। एक नवाब साहबने फारससे गुलाब मँगा कर अपने बाग़में लगाए थे। वहीं एक गंदी जगहमें कुकुरमुत्ता भी फूला हुआ था। फारसके मेहमानको इतराते हुए देखकर देसी कुकुरमुत्तेने उसे लताड़ना शुरू किया। अपनी खातिर वह मालीको जाड़ाघाम सहनेपर मजबूर करता है। जो उसे हाथमें लेकर सूंघते रहते हैं वह मैदाने जंग छोड़ कर औरतकी जानिब भाग चलते हैं। अमीरों और बादशाहोंसे सम्मान पानेके कारण साधारण लोगोंसे वह दूर रहा है। संक्षेपमें—

'रोज पड़ता रहा पानी
तू हरामी खानदानी।'

वह उस छायावादी कविताका प्रतीक है जो मनुष्यको ऐसी मँझधारमें छोड़ देता है जहाँ कोई सहारा नहीं होता। वह ऐसे ख्वाब दिखलाता है कि लोग मुँहसे रसकी बातें करते हैं और पेटमें चूहे डंड पेलते हैं।

इसके बदले कुकुरमुत्ता अपने आप उगा है और गुलाबसे डेढ़ बालिश्त ऊँचा बढ़ गया है। वह एक तरफ भारतका छत्र है तो दूसरी तरफ महायुद्धका पैराशूट है। वह क्या क्या है इसकी कोई गिनती नहीं। हाफिज और रवीन्द्रनाथ भी उसके आगे मात हैं। टी. एस. इलियट और 'वर्तमानधर्म' के लेखककी शैलीमें काफी समानता है; इलियटपर उनकी पंक्तियाँ देखने लायक हैं—

'कहींका रोड़ा, कहींका पत्थर,
टी. एस. इलियट ने जैसे दे मारा,
पढ़नेवालों ने जिगर पर रख कर
हाथ कहा, लिख दिया जहाँ सारा।'

नवाबका बाग-बाग़ीचा जितना सुन्दर है, उसके खादिमोंके झोपड़े वैसे ही घिनौने हैं। मोरियोंमें रुका पानी सड़ता रहता था। कहीं हड्डियाँ बिखरी थीं और कहीं परोंकी गड्डियाँ पड़ी थीं। हवामें बदबू छाई रहती थी। यहींपर किस्मतकी एक ही रस्सीसे बँधा हुआ 'एक खासा हिन्दू-मुस्लिम खानदान' रहा करता था। यहींपर मालिनकी गोली रहती थी जिसका नवाबकी लड़की बहारसे बड़ा हेलमेल था। एक दिन बाग़में जब बहार गुलाब देख रही थी, तभी गोलीकी नज़र कुकुरमुत्तेपर पड़ी। उसने कुकुरमुत्ते के कबाबकी वह तारीफ़ की कि बहारके मुँहमें पानी आगया। गोलीकी माँने कुकुरमुत्तेका कलिया-कबाब बनाकर तैयार किया। बहारके मुँहसे तारीफ़ सुनकर नवाबने मालीसे कुकुरमुत्ता ले आनेको कहा। लेकिन अब बाग़में एक भी कुकुरमुत्ता न था, सिर्फ़ गुलाब बच रहे थे। नवाबने खफ़ा होकर हुक्म दिया, जहाँ गुलाब लगे हैं वहाँ कुकुरमुत्ता लगाया जाय, लेकिन दुर्भाग्यसे कुकुरमुत्ता गुलाबकी तरह लगाया नहीं जाता इसलिए नवाबको कुछ दिन तक निराश रहना पड़ा।

'देवी' या 'चतुरी चमार' के साथ 'कुकुरमुत्ता' पढ़े तो साफ़ मालूम होगा कि निरालाजीका व्यंग्य पहलेसे निखरा नहीं है बल्कि फीका पड़ गया है, नई उलझनोंमें उनका लक्ष्य अस्पष्ट होगया है।

'खजोहरा' एक हास्यकी कविता है जिसमें व्यंग्य बिलकुल दबा हुआ है। सावनके दिनोंमें ग्रामीण जीवनका चित्र ही इसमें सबसे महत्वपूर्ण है। हाईकोर्टके मतवाले वकीलोंकी तरह बादल भी ज़रूरतकी जगह न बरस कर जहाँ पानी भरा है वहीं 'क़हक़हे लगाते हुए टूट पड़े'। लोग

ढोलक पर आल्हा गाते हैं और लड़कियाँ झूलोंमें सावन गाती हैं। सावन में भतीजा हुआ है इसलिए बुआ भी गाँवमें आई हैं। ससुरालसे फिर स्वच्छन्दता पाकर वह तालमें नहाने चलीं। टैगोरकी विजयिनीकी तरह वह पानीमें उतरीं, लेकिन कामदेवके बाणोंके बदले खजोहराने उनका सत्कार किया। निस्सन्देह निरालाजीके दिमाग़में विश्वकविकी वह भव्य कल्पना थी जिसमें नग्न तरुणी सरोवरकी सीढ़ियोंपर गीले चरण चिह्न अङ्कित करती हुई अपने सौंदर्यसे कामदेवको परास्त करती है। लेकिन यह कविता उसपर पूर्ण व्यंग्य नहीं बन पाई; संकेत मात्र ही मिलता है।

'स्फटिक शिला' 'स्वामी प्रेमानन्दजी महाराज और मैं' की तरह वर्णनात्मक कविता है जिसका मुक्त छन्द अधिकतर उखड़ा हुआ है। लेकिन इसका अन्त बड़े मार्केका हुआ है। निरालाजीने अपनी दृष्टिकी तुलना जयन्तकी चोंचसे की है। स्नान करके आई हुई युवती पर निगाह पड़ते ही जीवनकी और चाहें जैसे नष्ट होगई। जानकीका स्मरण करके निरालाजीने यह समझ कर सन्तोष किया कि इस बहाने उन्हे दर्शन दिये गये। मानवीय भावनाओंने उनके आध्यात्मवादको फिर झकझोर दिया है।

'अणिमा' के गीतोंमें रहस्यवादकी झलक फिर दिखाई देती है। जीवनमें विषाद बढ़ता गया है; उसे दूर करनेके लिये ज्ञानमय प्रकाशकी कल्पना की गई है। चरण स्वच्छन्द न रहनेपर नूपुरके स्वर मन्द होगये हैं। स्नेहके निर्झर बह चुके हैं और जीवन रेत-मात्र रह गया है। 'परिमल' के आँसू पोंछनेवाले इष्टदेवकी तरह फिर कोई रहस्य-शक्ति सर झुकने पर कविको धरतीसे उठा लेती है। कभी वह सोचते हैं कि जिसने मृत्यु को वरण किया है उसीको जीवन मिला है। कभी मनको समझाते हैं:

'गया अन्धेरा
देख, हृदय, हुआ है सवेरा।'

परन्तु वास्तवमें सवेरा नहीं हुआ; उन्हें रह-रह कर वार्धक्य वाला भाव सताता है। उन्हें अपने पके हुए बालोंकी याद आती है और उनका हृदय जैसे चीत्कार कर उठता है,

'मैं अकेला, मैं अकेला
आ रही मेरे गमन की सांध्यवेला।'

अपनी वेदनाका यह यथार्थवादी चित्रण भी उनकी नई कविताओंकी विशेषता है।

'अणिमा' में अंग्रेजी के 'ओड' जैसी चीजें भी हैं, जो विशेष व्यक्तियोंके प्रति लिखी गई हैं। संत कवि रैदासको ज्ञान-गंगामें नहाने वाला चर्मकार कह कर उन्होंने प्रणाम किया है। शुक्लजीने अनेक वर्षों तक विरोध पानेपर भी समालोचनाकी अमावस्यामें उदित होनेवाला हिन्दीका दिव्य कलाधर कहा है। प्रसादजीको अग्रज कहकर उनको श्रद्धाञ्जलि अर्पित की है। इसके साथ कुछ ऐसी कवितायें हैं जिनमें किसी दृश्यका वर्णन करके अस्तु लिख दिया गया है। जलाशयके किनारे कुहरी, सड़कके किनारेकी दूकानवाली कविताएँ ऐसी ही हैं। कहीं-कहीं जनसाधारणके साथ जीवनके कष्ट सहनेकी इच्छा प्रकट की है।

नए प्रयोगोंमें निरालाजीकी ग़ज़लें भी शामिल हैं। इनका संग्रह 'बेला' नामसे प्रकाशित हुआ है। ग़ज़लोंकी परम्परा उर्दूमें ही खत्म हो रही है, नए कवि नए ढङ्गके मुक्तक और गीत लिख रहे हैं। निराला जीने 'गीतिका' में भी एक ग़ज़ल लिखी थी,—'गई निशा वह, रंगी दिशायें, उड़ा तुम्हारा प्रकाश केतन।' इस तरफ ग़ज़लें लिखनेका विशेष कारण रघुपति सहाय 'फ़िराक़' की हिन्दी कवियोंसे वह बातचीत है जो 'तरुण' में प्रकाशित हुई थी। इस बातचीतमें उन्होंने हिन्दी कवियोंको नसीहत दी थी कि पुरानी ग़ज़लें घोलकर पी जानेसे हिन्दीवालोंकी भाषा चमक उठेगी। निरालाजीने भी दावा किया है कि 'पाठकोंकी हिन्दी

मार्जित हो जायगी अगर उन्होंने आधे गीत भी कण्ठाग्र कर लिए।' इन गीतों और ग़ज़लोंमें, जिनके छन्दोंका हिन्दी और उर्दूमें अक्सर रूपान्तर हो सकता है, उन्होंने शमा-परवाना क़िस्मके पुराने प्रतीकोंका उपयोग नहीं किया। ग़ज़लोंकी परिपाटीसे उन्होंने वाक् चातुरी लेनेकी कोशिश की है, लेकिन इधर-उधर पंक्तियाँ खिलनेपर भी वे बहुधा इस चातुरीका निवाह नहीं कर पाते। इसका एक कारण यह है कि उर्दू कवि सूक्तियोंका ध्यान रखते हैं और निरालाजी भावनाके संगठनका। उनकी ग़जलोंमें वह सम्बद्धता है जो पुरानी ग़जलोंमें नहीं मिलती। अनेक ग़जलोंमें उन्होंने रहस्यवादका ही रूपक बाँधा है लेकिन कई ग़जलोंमें देश और समाजके बारेमें भी बातें कही गई हैं। नाथके हाथ पकड़नेपर वीणा का बजना, किरण पड़नेपर कमलका खिलना, प्रभुके नयनोंसे ज्योतिके सहस्रों शरोंका निकलना, पुरानी कल्पनाये हैं। कहीं-कहीं भौतिक सौन्दर्यके वर्णन हैं। 'गीतिका' के अनेक छन्दों-जैसी मासलता है। देहकी सुर बहारपर स्नेहकी रागिनी बजना ऐसी ही कल्पना है। 'कहाँको मित्रता वे हँसके बोले,' इस तरहकी पंक्तियोंमें उन्होंने उर्दूकी बोलचालका रङ्ग अपनाया है। इन ग़जलोंको पढ़नेसे ऐसा लगता है जैसे कविकी नई चेतना प्रकाशमें आनेके लिए रूढ़ियोंसे टकरा रही है। ये बन्धन तोड़ कर वह चेतना अनेक बार जनगीतोंके रूपमें फूट निकली है। जिस समय नेता जेलोंमें थे निरालाजीने कजली लिखी थी :

'काले-काले बादल छाये, न आये वीर जवाहर लाल।'

इसी तरह इलाहाबादमें विद्यार्थियोंपर पुलिसका आक्रमण होनेपर कजली लिखी थी :

'युवक जनोंकी है जान खून की होली जो खेली।'

इन गीतोंमें उन्होंने संकेत किया है कि वह एक सफल जन गीतकार हो सकते हैं।

ग़जलोंमें अनेकों पक्तियाँ ऐसी हैं जिनमें उन्होंने नए ढंगसे नई बातें क़ही हैं और चित्तपर चढ़कर फिर उतरती नहीं। यहाँपर कुछ उदाहरण दिये जाते है। संसारमें जो लोग विजयी कहलाते हैं वह वास्तवमें दूसरोंका लहू पीकर ही बड़े बनते हैं :

‘ खुला भेद विजयी कहाये हुए जो
लहू दूसरे का पिये जा रहे हैं। ’

एक गज़लमें गजलवालोंको ही चुनौती देकर कहते हैं:—

‘ बिगड़ कर बनते और बन कर बिगड़ते एक युग बीता
परी और शाम रहने दे, शराब और जाम रहने दे। ’

पूँजीपतियोंको ललकार कर कहते हैं:—

‘ भेद कुल खुल जाय वह सूरत हमारे दिल में है।
देश को मिल जाय जो पूँजी तुम्हारी मिल में है ॥ ’

आर्थिक सकटसे पीड़ित जनता और आजादी दिलाने वाले नेताओंको लक्ष्य करके कहा है:—

‘ आया मज़ा कि लाखों आँखोंसे दम घुटा है,
पटली है बैठने को गोरे की साँवले से। ’

‘नये पत्ते’ में कुकुरमुत्ता वगैरह पुरानी कविताओंके साथ ‘मँहगू मँहगा रहा’ जैसे कुछ नये व्यग्य चित्र भी हैं। इस रचनामें हिन्दुस्तानकी राजनीतिमें जो नया अध्याय शुरू हुआ है उसीकी कुछ पंक्तियाँ आई है। गाँवमें किसानोंका उद्धार करनेके लिए ऐसे नेता पहुँचते हैं जिन्हे ज़मीदार और मुनाफाखोर अपना हितू समझते हैं। राष्ट्रीयताके नए उम्मीदवार ज़मीदारकी बातें सुनकर लुकुआकी समझमें नहीं आता कि यह सब क्या होरहा है। कानपुरको लकड़ी, कोयला लादनेवाला महँगू उसे समझाता है कि कानपुरमें मजदूर ‘किरिया’ के जो गोली लगी थी वह

मिल मालिकके कारण और आजकल उन्हींकी चांदीसे राजनीति चमक रही है। लेकिन हमारे लिए लड़नेवाले लोग भी हैं जिनके नाम अभी नहीं सुनाई देते क्योंकि 'अखबार व्यापारियोंकी ही सम्पत्ति हैं।' मँहगूको विश्वास है कि जब बड़े आदमी अपनी धन-सम्पत्ति छोड़ेंगे तभी देश मुक्त होगा।

यद्यपि इन नई रचनाओंमे पहलेके स्केचो और कहानियो जैसी स्पष्टता नहीं है, फिर भी राजनीतिक उलझनमें कविकी चेतना किसका साथ देरही है और किस लक्ष्यको अपने जीवनका लक्ष्य बना रही है, यह स्पष्ट है। समाज और देशको लेकर आम बातें कहनेके बदले इधर उन्होंने विशेष घटनाओंपर कवितायें लिखी हैं। शाश्वत सत्य और ब्रह्मानन्द सहोदरकी कल्पनासे विचलित न होकर उन्होने बताया है कि लेखकका स्थान जनताके साथ है। उसीके सुख-दुख, आशा-निराशा, विद्रोह और विजयका चित्रण करके वह अपनी वाणी सार्थक कर सकता है। देशके जीवनमे एक ओर भाई-भाईकी मारकाट और गृह-युद्धकी लपटें फैल रही हैं तो दूसरी ओर मज़दूर वर्गके नेतृत्वमें एक महान् क्रान्तिकारी ज्वार आया है। निरालाजीके विकासकी समूची परम्परा हमें सिखाती है कि इस ज्वारके साथ बढ़ कर परिवर्तनकी शुभ घड़ी लानेके लिए हिन्दी लेखकों और कवियोंको आगे बढ़ना है। उनके अदम्य जीवन और अनवरत साहित्य-साधनाका यही संदेश है कि हम देशको आजके घोर सङ्कटसे मुक्त करें और वह स्वाधीनताके वातावरणमें फिर खुलकर साँस ले सके।
